# भारतीय कहानियाँ 1984

संपादक
बालस्वरूप राही



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 448

भारतीय कहानियाँ : 1984

प्रथम संस्करण : 1986

मूल्य : 55.00

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003



मुद्रक
सविता प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032



आवरण-शिल्पी : हरिपाल त्यागी

BHARATIYA KAHANIYAN : 1984 (Short Story), Edited by Balswaroop Rahi. Published by Bharatiya Jnanpith, 18, Institutional Area, Lodhi Road, New Delhi-110003. Printed at Savita printers, Navin Shahdara, Delhi-110032.
First Edition : 1986. Price : Rs. 55.00

# भारतीयकहानियाँ : 1984

(भारतीय भाषाओ मे वर्ष 1984 में प्रकाशित कथा-साहित्य मे से
अग्रणी साहित्य-मर्मज्ञो द्वारा चुनी गयी 28 विशिष्ट कहानियां)

# अनुक्रम

# चयन-मण्डल

| | |
|---|---|
| असमी | वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य |
| उड़िया | डॉ सीताकांत महापात्र |
| उर्दू | राज नारायण 'राज़' |
| कन्नड़ | वी० आर० नारायण |
| कश्मीरी | हरिकृष्ण कौल |
| गुजराती | गुलाबदास ब्रोकर |
| तमिल | ना० पार्थसारथी |
| तेलुगु | ववती पांडुरंग राव |
| पंजाबी | कर्तारसिंह दुग्गल |
| बांग्ला | डॉ० नवनीता देव सेन |
| मराठी | चंद्रकात महादेव बांदिवडेकर |
| सिन्धी | डॉ० मोतीलाल जोतवाणी |
| मलयालम | वी० डी० कृष्णन् नम्पियार |
| हिन्दी | बटरोही |

# प्रस्तुत प्रयास

## परिकल्पना

(प्रथम चयनिका से उद्धृत प्रासंगिक अंश)

अपनी स्थापना से ही भारतीय ज्ञानपीठ का लक्ष्य भारतीय साहित्य के संवर्द्धन में योगदान रहा है। अपने इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए वह प्रारम्भ से ही त्रि-आयामी प्रयास करता आ रहा है। एक ओर तो वह जटिल किन्तु विश्वसनीय मूल्यांकन-प्रणाली द्वारा भारतीय साहित्य की शिखर उपलब्धियों को रेखांकित-पुरस्कृत करता है, ताकि साहित्य को समर्पित अग्रणी भारतीय रचनाकारों को अधिकतम मान-सम्मान एवं राष्ट्रव्यापी प्रतिष्ठा प्राप्त हो और उनकी शीर्ष कृतियाँ अन्य रचनाकारों के लिए प्रकाश-स्तंभ का कार्य करें। दूसरी ओर वह समग्र समकालीन भारतीय साहित्य में से कालजयी रचनाओं का चयन कर उन्हें, प्रायः हिन्दी के माध्यम से, वृहत्तर प्रबुद्ध पाठक समुदाय तक ले जाता है, ताकि एक भाषा का सर्वोत्कृष्ट साहित्य दूसरी भाषा तक पहुँचे और इस प्रकार विभिन्न भाषाओं के रचनाकारों एवं सजग पाठकों के मध्य तादात्म्य स्थापित हो और परस्पर-प्रतिक्रिया हो। तीसरी ओर वह संवेदनशील, सम्भावनावान उदीयमान रचनाकारों की सशक्त कृतियाँ प्रकाशित कर उन्हें उनका दाय प्राप्त कराने में सक्रिय सहयोग करता है।

साहित्य राष्ट्रीय चेतना का सर्वप्रमुख संवाहक है। यदि किसी देश की सांस्कृतिक धड़कनों को समझना हो तो उसकी नब्ज—साहित्य पर हाथ रखना आवश्यक होता है। अन्य राष्ट्रों को ही नहीं, अपने राष्ट्र को भी हम प्रमुखतः अपने साहित्य के माध्यम से ही सही-सही पहचानते हैं। स्वराष्ट्र की आत्मा से साक्षात्कार करना कौन नहीं चाहता! राष्ट्र की आत्मा साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होती है और साहित्य भाषा के माध्यम से मुखरित होता है। किन्तु हमारे लिए कठिनाई यह है कि भारतीय साहित्य एक या दो भाषाओं के माध्यम से तो मुखरित होता नहीं। अतः भाषा जो एक पथ है, सेतु है, वही व्यवधान बन जाती है। इस व्यवधान के अतिक्रमण में भारतीय ज्ञानपीठ निरंतर सुधी पाठकों का सहायक रहा है। इस बार सोचा गया कि एक और नयी राह निकाली जाए,

एक और नयी दिशा का संधान हो। कालजयी शाश्वत रचनाओं तक ही सीमित क्यों रहा जाए? जिन रचनाओं को अभी काल की कसौटी पर कसा जाना है, उन तक भी पहुँच क्यों न हो? आज की धड़कनें पहचानने के लिए आज का आमना-सामना आवश्यक है। जो सबसे ताज़ी है, आज की रचना है, वही तो वर्तमान को समझने में सबसे बड़ी सहायक बन सकती है। वही कल कालजयी सिद्ध होकर धरोहर भी बन सकती है।

प्रति वर्ष स्फुट रूप से स्थायी महत्त्व की कई रचनायें प्रकाशित होती हैं और सामान्य रचनाओं की भीड़ में खो जाती हैं। यदा-कदा चर्चित होती हैं, रेखांकित भी होती हैं, किन्तु एक स्थान पर सहेजी नहीं जाती। अन्य भाषाओं की उपलब्धियों से साक्षात्कार तो दुर्लभ ही है, हम अपनी ही भाषा की सर्वोत्तम कृतियों से अपरिचित रह जाते हैं। परिचय होता भी है, तो बस क्षण मात्र के लिए। यों हम सभी न्यूनाधिक यह अनुभव और स्वीकार करते हैं कि भारतीय साहित्य विभिन्न भाषाओं में रचे जाने पर भी कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में एक मुख्य धारा से सम्पृक्त है। भाषा विशेष के साहित्य के सही मूल्यांकन एवं सच्चे आस्वाद के लिए उसे समग्र भारतीय साहित्य के परिदृश्य में रखकर देखा जाना नितान्त आवश्यक एवं वांछनीय है।

इसी भावना से प्रेरित होकर हमने यह निर्णय किया कि भारतीय ज्ञानपीठ प्रति वर्ष समस्त भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाली विधा विशेष की श्रेष्ठ रचनाओं को एक संकलन में एक साथ सजोने का क्रम प्रारम्भ करे। निर्णय हुआ कि वार्षिक चयनिकाओं की इस शृंखला का प्रारम्भ 1983 में प्रकाशित कविताओं और कहानियों की चयनिकाओं से हो। तय हुआ कि कथा-संकलन के लिए हर भाषा से दो कहानियाँ चुनी जाएं और इस प्रकार चयनिका में सभी भाषाओं की लगभग 28 कहानियों का समावेश हो। इससे 1983 की विशिष्ट कहानियाँ एक ही स्थान पर उपलब्ध एवं सुरक्षित हो सकेंगी और समकालीन भारतीय कथा-धारा के प्रति जिज्ञासु कहानी-प्रेमियों को इधर-उधर भटकना नहीं पड़ेगा।

सबसे बड़ी समस्या थी रचनाओं का चयन। कोई एक तो सभी भाषाओं का जानकार होता नहीं। अतः इस योजना के क्रियान्वयन के लिए सोचा यह गया कि हर भाषा से रचना-चयन का दायित्व भाषा विशेष के ही किसी कथा-मर्मज्ञ को सौंपा जाए जो कहानियों का चयन भी करे और चुनी हुई कहानियों के हिन्दी रूपान्तरों की प्रामाणिकता भी परख ले।

यहाँ हम यह स्पष्ट कर दें कि कथा-चयन में चयन मंडल के हर सदस्य को हमने पूरी-पूरी स्वतन्त्रता दी है और अपनी पसन्द को कहीं भी आरोपित नहीं किया। चुनाव के लिए पूरी-पूरी ज़िम्मेदारी, पूरी की पूरी जवाबदेही चयनकर्ता

की ही है। हाँ, चयनकर्ता का चुनाव हमारा है और हमने यह पूरी सावधानी एवं दायित्व के साथ किया है। हर चयनकर्ता अपनी भाषा के साहित्य का विश्वसनीय मर्मज्ञ एवं अधिकारी विद्वान है। अनेक तो मूर्द्धन्य भारतीय साहित्यकारों अथवा साहित्य-मनीषियों में गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं। चयनिका को और अधिक परिपूर्ण एवं सार्थक बनाने एव उसे संदर्भ ग्रंथ के रूप मे और भी अधिक उपयोगी बनाने के लिए हमने सहयोगी साहित्यकारो के सचित्र परिचय का समावेश भी इसमे कर दिया है।

स्पष्ट ही है कि इस प्रकार का कोई भी चयन-निर्णय निर्विवाद नही हो सकता। इस कथा-चयन के सामने भी प्रश्नचिन्ह लगाये जा सकते है और सम्भव है लगें भी। दो-चार नही, दर्जनो कहानियाँ ऐसी होंगी जो अपनी भाषा मे 1983 की उपलब्धि मानी जायें। अपनी भाषा मे ही क्यो, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में एक उपलब्धि मानी जाएँ। किन्तु प्रतिनिधि रचनाओ की सख्या सीमित एवं सुनिश्चित रखना व्यावहारिक समझा गया — सकलन के आकार-नियंत्रण के लिए भी और सभी भाषाओ के प्रति समभाव की दृष्टि से भी। हमारे लिए सभी भाषाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। प्रतिनिधि रचनायें और भी हो सकती हैं या यह भी हो सकता है कि इनमे से किसी रचना को प्रतिनिधि माना ही न जाए। तब भी इतना तो है ही कि ये सर्वोत्कृष्ट हो या नही, इस सकलन के माध्यम से हम आज के भारतीय कथा-साहित्य का चेहरा काफ़ी कुछ पहचान सकते है। पूर्ण तो कुछ नही होता वृत्त के अतिरिक्त। पूर्ण सतोष भी दुर्लभ ही है। हमे पूरा विश्वास है कि यह संकलन एक झरोखे का काम करेगा और हम झाँक कर देख सकेंगे कि पड़ोसी आँगन मे किस-किस तरह के फूल खिल रहे हैं और उनकी महक भी हम तक आ सकेगी।

दरकती राष्ट्रीय चेतना और चटखते एकात्मता भाव के इस संकटपूर्ण समय में इस प्रकार के प्रयासों की विशिष्ट भूमिका हो सकती है। परिचय सौहार्द की पहली सीढी है। अपनी भाषा से इतर साहित्य के साक्षात्कार से न केवल भारतीय साहित्य की समझ अधिक परिपक्व होती है, बल्कि हम अपनी भाषा के साहित्य की प्रासंगिकताओं को भी और बेहतर ढंग से समझते हैं। हमें प्रसन्नता है कि हमारे इस विनम्र प्रयास को प्रारम्भ से ही सभी दिशाओ से सहयोग एवं सराहना प्राप्त होती रही है। एक पत्रकार बन्धु ने तो इसे 'राष्ट्र मे स्वाधीनता के उपरान्त किया जाने वाला सर्वाधिक उल्लेखनीय साहित्यिक एकता आयोजन' माना है। हमारा प्रयत्न होगा कि हम यह क्रम बनाए रख सकें। यदि प्रति वर्ष की साहित्य-उपलब्धियाँ इस प्रकार सुरक्षित की जा सकी तो इस दशक की समाप्ति पर दशक के भारतीय साहित्य पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए ये ग्रन्थ आधार-सामग्री के रूप में अपनी उपयोगिता सिद्ध करेंगे।

भारतीय साहित्य मूल रूप से एक है अथवा एक मुख्य धारा से जुड़ा है—यह एक सत्य है या मात्र एक आह्लादकारी मिथक, इस आशय के विवादास्पद प्रश्नों का उत्तर खोजने मे इस प्रकार के ग्रन्थों की सार्थकता विवादातीत मानी जा सकती है।

## पुनश्च : (सन्दर्भ—चयनिका 1984)

हमारे लिए यह विषय गर्व से भी अधिक संतोष का है कि भारतीय साहित्य की वर्ष विशेष मे प्रकाशित कविताओ और कहानियों की वार्षिक चयनिकाओं के नियमित प्रकाशन की हमारी इस जोखिम भरी और महत्वाकांक्षी योजना को साहित्य-मर्मज्ञो ने महत्त्वपूर्ण, उपयोगी, मौलिक, सामयिक और सार्थक माना है। वॉयस ऑफ अमेरिका सहित देशी-विदेशी प्रसार-माध्यमों ने भी इसकी व्यापक चर्चा की है और इस पर साक्षात्कार तथा प्रतिक्रियाएँ प्रसारित की है। भारतीय भाषाओ के मध्य सेतुबंध के रूप में इसे स्वीकृति मिली और इसे राष्ट्रीय एकत्व को कलात्मकता पूर्वक परिपक्व एवं परिपुष्ट करने वाली कहा गया है। हमें सबसे अधिक प्रसन्नता तो इसी बात की है कि हमने भाषा और भाषा के बीच की नक़ली दीवारें तोड़ने की जो कोशिश की, या कह लीजिये कि इन दीवारों के बीच झरोखे बनाने का जो विनम्र प्रयास किया, वह काफ़ी हद तक कारगर साबित हुआ और एक भाषा की चुनी हुई कृतियाँ दूसरी भाषाओं तक पहुँची। सभी भारतीय भाषाओं के अनेक जागरूक रचनाकारो ने इस चयनिका मे रुचि ली, सक्रिय सहयोग का आश्वासन दिया और हमारी भरपूर हौसला-अफ़जाई की। अनेक विद्वानो और साहित्य-पारखियो ने यह आशा व्यक्त की कि यदि यह चयनिका-क्रम इसी प्रकार जारी रखा जाये तो कालान्तर में ये पुस्तकें भारतीय साहित्य के विश्वसनीय संदर्भ ग्रन्थ प्रमाणित होंगी और इनके माध्यम से काल विशेष के भारतीय साहित्य की उपलब्धियो को एक साथ जानने-पहचानने और परखने में शोधार्थियों और साहित्य-मनीषियो को अपार सुविधा होगी। हम इस प्रोत्साहन और मूल्यांकन के लिए कृतज्ञ हैं और साभार कुछ प्रतिक्रियाएँ उद्धृत कर रहे हैं :

### समीक्षकों के विचार :

'भारतीय कहानियाँ : 1983' का प्रकाशन हिन्दी कथा-साहित्य में एक घटना है। आधुनिक भारतीय भाषाओं की अट्ठाइस कहानियों का यह चयन एक सुरुचिपूर्ण जिज्ञासा उत्पन्न करने का प्रयत्न है। वस्तुतः भारतीय भाषाओं के कथा-साहित्य में वस्तु और शिल्प के स्तर पर जो चिंतन चल रहा है, ये

कहानियां उसे प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल हैं।

—डॉ० रामजन्म शर्मा (सारिका)

इधर एक नयी योजना के अन्तर्गत भारतीय ज्ञानपीठ ने प्रत्येक वर्ष में प्रकाशित विभिन्न भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कविताओं और कहानियों का पुस्तक रूप में हिन्दी-अनुवाद निकालने का निर्णय लिया है। प्रत्येक भाषा से दो-दो कहानियां ली गई हैं। इस पुस्तक का संपादन भी बालस्वरूप राही ने किया है। आरम्भ में अपनी समीक्षात्मक भूमिका जोड़कर उन्होंने समकालीन भारतीय कहानी की पहचान में प्रशंसनीय योग दिया है।

—डॉ० रणवीर रांग्रा (आकाशवाणी)

विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य को सही-सही प्रतिनिधित्व देकर उसे समुचित अनुवाद में प्रस्तुत करना निश्चित ही एक चुनौती है, जिसे इस बार भारतीय ज्ञानपीठ ने स्वीकार किया है।

—डॉ० शेरजंग गर्ग (समाज कल्याण)

असमी, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, बांग्ला, मराठी, मलयालम, सिंधी और हिन्दी भाषाओं के माध्यम से वर्ष 1983 में प्रकाश में आयी ये कहानियां समकालीन जीवन को प्राय. विचित्र समस्याओं के यंत्रणा तले नहीं देखती हैं, बल्कि जीवन के सभी पक्षों में घुस आयी विभिन्न विसंगतियों को एक लम्बे सच की कसौटी पर कसकर परखती हैं।

—राजकुमार गौतम (दिनमान)

शोधार्थियों तथा साहित्य पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है जिन्हें प्रति-वर्ष के श्रेष्ठ साहित्य को पढ़ने के लिए इधर-उधर नहीं भटकना पड़ेगा।

— सुशील राजेश (आजकल)

'भारतीय कहानियां : 1983' का प्रकाशन करके भारतीय ज्ञानपीठ ने जिस नयी परम्परा की शुरुआत की है उसमें भारतीय कहानी की यात्रा को सिलसिलेवार देखना-परखना सहज ही संभव हो सकेगा। जैसा कि भारतीय ज्ञानपीठ कृतसंकल्प है आने वाले समय में भारत की सभी भाषाओं की इतनी सारी प्रतिनिधि कहानियां एक साथ उपलब्ध होंगी कि हमें भारतीय संस्कृति को देखने और उसके मूल्यांकन में कोई असुविधा नहीं होगी।

—विजयकिशोर मानव (दैनिक हिन्दुस्तान)

## सहयोगियों के उद्‌गार :

क्षेत्रीय भाषाओं में आज क्या हो रहा है, कैसा और क्या लिखा जा रहा है—यह काम बहुत हद तक इस संकलन में हो गया है। बिलाशुब्हा, ज्ञानपीठ

इसके लिए मुबारकबाद का मुस्तहक़ है।

—इक़बाल मजीद (उर्दू), भोपाल

यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयास है। दूसरी भाषाओं में कहानी के माध्यम से क्या हो रहा है, इसका मुझे पता चला और यह भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन की वजह से हो पाया, धन्यवाद।

—भारत सासणे (मराठी), महाराष्ट्र

स्वयं को अपने देश के लेखकों के सान्निध्य में पाकर मुझे सुरक्षा, साहचर्य और तृप्ति—सभी की मिली-जुली प्रतीति हुई। जैसा कि भूमिका में कहा गया है हम विभिन्न भाषाओं में लिखते हैं किन्तु वस्तुतः हम सभी एक ही काल-क्षण में एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया करते हुए समान एकान्वित आंदोलन में सम्मिलित हैं। अब हम सभी को मिलकर चलना है। इस आंदोलन के अग्रणियों में से एक होने से मुझे गर्व की अनुभूति हो रही है।

—रवि पटनायक (उड़िया), भुवनेश्वर

संकलन वास्तव में अति उत्कृष्ट है। एक दिव्य प्रयास। समुद्रित। भारतीय साहित्य का प्रतिनिधि। आपका दृष्टिकोण प्रशंसनीय है। यदि यह प्रयास साल-दर-साल चलता रहा तो क्षेत्रिय साहित्य को समझना सरलतर हो जाएगा।

—संजीव चट्टोपाध्याय (बांग्ला), कलकत्ता

पुस्तक का संपादन और प्रस्तुतीकरण सुविचारित है। मुझे आशा है कि सामान्य पाठक-गण और शिक्षा-जगत दोनों में ही इसकी ज़बर्दस्त माँग होगी।

—अशोक मित्रन (तमिल), मद्रास

'भारतीय कहानियाँ : 1983' एक अत्यधिक परिष्कृत और व्यापक प्रस्तुति है।

—ना० पार्थसारथी (तमिल), मद्रास

चयनिका आह्लादकारी है। आद्योपांत उच्चस्तर का निर्वाह हुआ है। मैं इस भव्य योजना के लिए भारतीय ज्ञानपीठ को बधाई देता हूँ।

—गुलाबदास ब्रोकर (गुजराती), बम्बई

लगभग सभी भाषाओं को एक सशक्त प्रतिपाद्य द्वारा मुख्य धारा से जोड़ देने वाले संकलन के रूप में यह भूरि-भूरि प्रशंसा का अधिकारी है।

—आशा बगे (मराठी), अकोला

इस प्रकार के संकलन प्रकाशित करने की योजना निःसंदेह, विलक्षण और अत्यधिक उपयोगी है। कहानी-लेखन को और अधिक सम्पन्न बनाने में इससे सहायता मिलेगी।

—वी० राजाराम मोहन राय (तेलुगु), हैदराबाद

परन्तु प्रतिक्रियायें मात्र यही नही है। ये चयनिकायें विवादास्पद भी बनीं, इसकी आलोचना भी हुई और इनकी कमियों तथा तथाकथित कमियो की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया। हमारी भूमिका 'प्रस्तुत प्रयास' की कुछ पंक्तियों को हमारे ही विरुद्ध इस्तेमाल किया गया, और उन्हें ईमानदारी से कही गयी साफ़-साफ़ बात न मानकर 'सेल्फ कन्फेशन' (स्वीकारोक्ति) माना गया। हम यहां फिर दुहराना चाहेंगे कि इस प्रकार का कोई भी प्रयास विवाद से परे नही हो सकता। कम से कम हमारा तो यह दावा कदापि नहीं है कि हमने परिपूर्णता को प्राप्त कर लिया है और हमारा प्रयास सर्वथा त्रुटिहीन है। प्रतिनिधि रचना-चयन के सम्मुख प्रश्नचिन्ह लगाये जा सकते है, सम्पादकीय भूलो की ओर संकेत किया जा सकता है और अनुवाद के दोष भी गिनाये जा सकते हैं, प्रस्तुतीकरण मे भी कुछ कमियाँ हो सकती हैं। परन्तु हम इतना तो कहना ही चाहेंगे कि यह कम से कम एक प्रयास तो है और यह प्रयास भरसक सदाशयता के साथ किया गया है। आज साहित्य खेमों, धाराओं, पीढियो, वादों गुटो आदि मे बंट कर टुकड़े-टुकड़े हो चुका है। ऐसे समय में पूर्वाग्रहों और पक्षपातों से यथासंभव बचे रहकर केवल साहित्यिक मूल्यों के प्रति अधिकाधिक निष्ठावान हो काम करने की हमारी विनम्र प्रवृत्ति थोडी-बहुत प्रोत्साहनीय तो है ही।

कुछ आलोचनायें ऐसी हैं जो वास्तव में आलोचना न होकर सुझाव और प्रेरणा-स्रोत के समान हैं और जिन्हे स्वीकार करने मे हमारे झिझकने का कोई प्रश्न ही नही उठता। तथापि कुछ आलोचनाएं ऐसी भी हुई है जिनके बारे मे कुछ कहना आवश्यक है। एक समीक्षक महोदय ने प्रश्न उठाया है—'यह 'आज' और यह 'वर्तमान' क्या है? क्या वह जीवन का घृणित अंधेरा और दुर्गंध पक्ष है जिसका चित्रण इस संकलन की अधिकांश कहानियों में मिलता है?··· लगता नहीं भारतीय कथा साहित्य का चेहरा काफ़ी-कुछ पहचानने में आ सकता है।···लगता है कहानी के प्रति एक विशेष प्रकार का दृष्टिकोण रखने वाले चयनकर्ता को ही चुना गया है और उन्होंने एक दृष्टिकोण से कहानियों का चयन किया है।"

इस आलोचना के दो पक्ष है। एक ओर तो यह आलोचना मूल्य-विघटन और आधुनिक जीवन की विसंगतियो-विद्रूपताओ को चित्रित करने वाली रचनाओं के स्थायी मूल्य के सम्मुख प्रश्नचिन्ह लगाती है। यह एक बहुत ही विवादास्पद प्रश्न है कि अतियथार्थवादी साहित्य को श्रेष्ठ माना जाए कि नही, किन्तु इस बहस को यहां उठाना व्यावहारिक तथा वांछनीय नही होगा। दूसरी ओर इस आलोचना मे हमारी और चयनकर्ता दोनो की ही नीयत पर शक किया गया है। इस विषय मे हम क्या कहे! केवल यही कह सकते हैं कि यह मत इतनी दृढ़तापूर्वक व्यक्त करने से पहले समीक्षक महोदय कुछ साहित्यिक बन्धुओं से परामर्श कर

लेते, तो बेहतर होता।

एक अन्य समीक्षक महोदय ने यह आपत्ति की है कि सम्पादक ने रचना-चयन की सारी जिम्मेदारी चयनकर्ताओ पर डाल दी है—"यदि सारी जिम्मेदारी और रचनाओ के प्रतिनिधि होने के धर्मकांटे चयनकर्त्ता ही हैं तब तो सम्पादक का इस सग्रह में कोई काम हो नहीं है।" यह समझ पाना कठिन है कि लगभग सभी भारतीय भाषाओं की रचनाएं सहेजने वाले इस प्रकार के संकलन में समीक्षक महोदय संपादक की भूमिका के बारे में क्या सोचते हैं। क्या वह यह अपेक्षा करते हैं कि वह सर्वभाषाविद् होगा और स्वयं सभी भाषाओं में प्रकाशित वर्ष विशेष की सभी महत्त्वपूर्ण रचनायें पढ़कर उनमें से प्रतिनिधि रचनाओं का चयन करेगा ? या यह यह उम्मीद करते हैं कि वह चयन मण्डल के सदस्यों, जो देश के जाने-माने साहित्यकार एव साहित्य-मर्मज्ञ हैं, के चयन को चुनौती देते हुए अपनी पसन्द-नापसन्द से काम लेगा और कहेगा कि फ़लां कथाकार या फ़लां टाइप की कहानी लाओ। मेरे विचार से न तो यह वांछनीय है और न ही व्यावहारिक। इस प्रकार के सकलन के सम्पादक की भूमिका सामान्य सम्पादन से भिन्न होती है। उसका दायित्व है प्रतिनिधि रचनाओं के माध्यम से भारतीय साहित्य की पहचान और उनमें पायी जाने वाली समानताओं-असमानताओं की ओर इंगित करना। अव्वल तो इस प्रकार की सामग्री जुटाना ही काफ़ी मुश्किल काम है। सभी रचनाकारो के चित्र एव परिचय एकत्र करना और उन्हें एकरूपता के साथ प्रस्तुत करना धैर्य और सावधानी की अपेक्षा करता है। फिर विभिन्न भाषाओं से प्राप्त अनुवादो को सम्पादित कर उन्हें हिन्दी मुहावरे मे ढालना भी अत्यन्त आवश्यक है। संकलन की परिकल्पना और उसकी रूपरेखा तैयार करना भी प्रमुखतः सम्पादक का ही दायित्व है। मेरे विचार से इस प्रकार के सकलन के संपादक के लिए इतने काम काफी हैं। इससे आगे बढने पर वह सम्भवतः अपनी सीमाओ का अतिक्रमण और अपने अहम् का पोषण ही करेगा। इसके बावजूद यदि किसी रचना विशेष के चयन से हम सहमत नही हो पाते या पाते हैं कि वह रचना संकलन की मुख्य धारा से मेल नही खा रही है तो हम अपना मत चयनकर्ता के सामने रखते अवश्य हैं। आवश्यकता पड़ती है तो उसकी सहमति से रचना में थोड़ा-बहुत सम्पादन भी कर लेते है।

कुछ समीक्षक बंधुओ ने, और कुछ रचनाकारो ने भी, कतिपय रचनाओं के चयन को विवादास्पद माना है और यह नितांत स्वाभाविक भी है। किन्तु इसका इलाज भी नही है। जब हजारो कहानियो मे से मात्र दो का चयन होगा तो विवाद तो होगा ही। और यह भी मानना पड़ेगा—पसन्द अपनी-अपनी मिज़ाज अपना-अपना, भिन्न रुचिर्लोकः। इसका एक अच्छा समाधान एक समीक्षक बंधु ने सुझाया है कि भाषा विशेष की प्रतिनिधि रचनायें प्रकाशित करते समय

हम उसी वर्ष प्रकाशित कतिपय अन्य विशिष्ट रचनाओं का भी उल्लेख कर दें। आगामी चयनिका में इस सुझाव की व्यावहारिकता परख कर देखेंगे। एक सुझाव यह भी है कि रचनाओं के साथ ही हर भाषा के सम्बन्धित वर्ष के कथा साहित्य पर एक टिप्पणी भी जोड़ी जाये। हम इस सुझाव पर भी गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे हैं। एक आग्रह यह भी है कि हम यह सकलन अंग्रेज़ी मे भी प्रकाशित करें ताकि अंग्रेज़ीदां हिन्दीतर पाठक—देशी और विदेशी, भी इससे लाभान्वित हो सकें। इस सुझाव को मानने मे कठिनाई यह है कि एक तो वह अनुवाद का अनुवाद होगा, दूसरे इसमें इतना समय लग सकता है कि चयनिका की सामयिकता के सामने ही प्रश्नचिन्ह लग जाये। अपने पूरे प्रयासो के बावजूद केवल हिन्दी मे ही चयनिका प्रकाशित करने में हमें इतना विलम्ब हो जाता है। चयनिका की प्रकृति ही ऐसी है। यदि एक भी भाषा मे कोई सामग्री प्राप्त होने में विलम्ब होता है तो चयनिका-प्रकाशन का काम अटक जाता है। प्रतिनिधि रचनायें, लेखकों की स्वीकृति, चित्र, परिचय, अनुवाद बटोरते-बटोरते मास पर मास बीतते चले जाते हैं। परिणाम यह होता है कि चयनिका-प्रकाशन में देर हो जाती है। फिर भी हम यह अनुभव करते हैं कि ये चयनिकायें सामयिक होते हुए भी इनमें समाविष्ट सामग्री स्थायी महत्व की होती है। अतः इस अपरिहार्य विलम्ब को दरगुज़र किया जा सकता है।

चयनिका में प्रतिनिधि कहानी के रूप मे चयनकर्ता की अपनी ही कहानी देखकर भी कुछ साहित्यकार बधु चौंके, थोड़ा अजीब-सा लगा उन्हें। अपने द्वारा अपनी ही रचना का चयन किंचित विचित्र लग सकता है, किन्तु वह उतना असंगत भी नहीं है। कई बार कोई कहानी वर्ष विशेष मे इतनी चर्चित हो जाती है कि उसको छोड़ना चयनिका में दरार छोड़ने जैसा हो जाता है। भाषा विशेष के जानकारों का तकाजा होता है कि प्रतिनिधित्व की दृष्टि से अमुक रचना का लिया जाना अपरिहार्य है। वह कहानी चयनकर्ता की कहानी भी हो सकती है। फिर भी आप पायेंगे कि 'भारतीय कहानियाँ :1984' मे इस प्रकार की केवल एक कहानी है।

कुछ साहित्य-चेताओं की यह शिकायत रही कि सकलन में महिला-कथाकारों के साथ न्याय नही हुआ और उनका प्रतिनिधित्व बहुत सीमित रहा। इस बार उनकी यह शिकायत एक बड़ी सीमा तक दूर हो सकेगी। इस चयनिका मे संकलित कथाकारो में से चार कहानीकार महिलायें हैं। हिन्दी, सिंधी, मलयालम और पंजाबी भाषाओं का पचास प्रतिशत प्रतिनिधित्व करने का श्रेय इस बार महिलाओ को ही प्राप्त हो रहा है।

'भारतीय कहानियाँ: 1984' के लिए चुनी गयी कहानियाँ पढते समय सबसे पहला प्रभाव तो मन पर यही पड़ता है कि ये कहानियाँ हमें किसी कल्पित संसार

(मेक बिलीव वर्ल्ड) या यूटोपिया में न ले जाकर औसत भारतीय जीवन की आये-दिन की वास्तविकताओं से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। कहीं ये वस्तुस्थितियाँ हल्की-फुल्की और मनोरंजक हैं और कहीं गहरी विडम्बनाओं से युक्त। इस दृष्टि से विशिष्ट ये कहानियाँ 'कहानीपन' को एक नया अर्थ और एक नया आयाम देती है। न इनमें अमूर्तता है न शब्दाडम्बर और न शैली के विचित्र प्रयोग। सीधे-सादे सहज शब्दों में कही गयी ज़िन्दगी की हक़ीकतें हैं। जैसे कोई रिपोर्ताज हो या किसी की डायरी के पन्ने। कथानक का कोई पेचीदा ताना-बाना नहीं, न किस्सागोई की चाशनी। फिर भी पढ़ना शुरू कर दें तो पूरी पढ़े बिना चैन नहीं। सचमुच 'स्लाइस ऑफ लाइफ' जिस पर रहस्यमयता का मक्खन तक नहीं। पूरी तरह विश्वसनीय, स्वाभाविक और प्रामाणिक। इस बात का प्रमाण कि कला को छिपाना ही सच्ची कला है। इस तरह की कहानियों में मुख्य रूप से आती हैं —'मैफिस्टोफ़िलिस की दुनिया और लड़खड़ाते दो पाँव'—जगदीश महान्ती (उड़िया), 'मेजर आपरेशन'—वसन्त कुमार शतपथी (उड़िया), 'प्रतिकृति'—शान्तिनाथ देसाई (गुजराती), 'अननुभूत'—भगवती कुमार शर्मा (गुजराती), 'न्यू ईयर'—अजीत कौर (पंजाबी), 'अनुसूचित'—मु० कृष्णमूर्ति (तमिल), 'यह सचमुच मुसीबत है'—राचमल्लु रामचन्द्रा रेड्डी (तेलुगु)।

जगदीश महान्ती की उड़िया कहानी 'मैफिस्टोफिलिस की दुनिया और लड़खड़ाते दो पाँव' इस संग्रह की एक ऐसी विशिष्ट कहानी है, जिसमें राजनीतिक पैंतरेबाज़ी के दाव-पेंच बड़े मनोरंजक ढंग से दिखाये गये हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्योरों को इस खूबी के साथ उभारा गया है कि सारी कहानी में प्रामाणिकता और विश्वसनीयता रच जाती है। राजनीति के खिलाड़ियों द्वारा विपत्तिग्रस्त लोगों का मोहरे की तरह और उनकी त्रासदियों का राजनीतिक उत्कर्ष के लिए सीढ़ी की तरह इस्तेमाल किये जाने का शर्मनाक खेल इस कहानी के माध्यम से अपनी पूरी कुरूपता के साथ पाठकों के सामने आ जाता है। पत्रकारिता की हल्की-फुल्की शैली में कही गयी यह अविस्मरणीय व्यंग्य कथा 'भारतीय कहानियाँ: 1983' में संकलित कहानी 'विपुल की युद्ध की तैयारी' की याद दिला देती है।

वसन्त कुमार शतपथी की उड़िया कहानी 'मेजर आपरेशन' हल्के-फुल्के अन्दाज़ में कही गयी एक ऐसी दिलचस्प कहानी है जो आप्रेशन की प्रक्रिया से गुज़रने वाले वृद्ध रोगी की मनोदशाओं को बड़ी कुशलता के साथ उभारती है। यह कहानी पढ़ते समय लगता नहीं कि कहानी पढ़ रहे हैं, सिर्फ़ यह महसूस होता है जैसे किसी की डायरी पढ़ रहे हों।

शान्तिनाथ देसाई की गुजराती कहानी 'प्रतिकृति' नैतिक मूल्यों को चुनौती देती स्वच्छन्दता की समस्या गुरु-शिष्या के संदर्भ में उठाती है और विनोदपूर्ण शैली में उसका पक्ष-विपक्ष प्रस्तुत करती है। साथ ही उतावले गुरु की शिष्या के

असमंजस को भी अभिव्यक्ति देती है। यहाँ भी कहानी कहने की अदा वही गैर-कहानी वाली है :

"धत् मुझे कहानी कहनी नहीं आती। मैं रिसर्च पेपर लिख सकता हूँ। शुरू में मैं इतिहास विभाग में अध्यापक था। बाद में छपी मेरी 'उत्तर कर्नाटक में जैन मन्दिर' विषय पर लिखी थीसिस पर डॉक्टरेट मिलने के बाद रीडर बना। इस बात को भी दस साल बीत गए। फिलहाल यू० जी० सी० से एक प्रोजेक्ट की स्वीकृति मिली है।…"

भगवती कुमार शर्मा की गुजराती कहानी 'अननुभूत' एक ऐसे औसत भारतीय की व्यथा-कथा है जो करना तो बहुत कुछ चाहता है पर करते-करते रह जाता है और अन्ततः दिवास्वप्नों में वह सब करता है जो उसे यथार्थ में करना चाहिए। उम्र के उतार पर पहुँचते-पहुँचते अतृप्ति और कुंठा के अंधकार में भटकने लगता है। इस कहानी में कहानी के साथ ही ललित निबन्ध का भी स्वाद है। यह कहानी पढ़कर भारत भूषण अग्रवाल की कविता की एक पंक्ति याद आती है—

'इतनी बड़ी दुनिया में मैं भी कितना छोटा जीवन जिया!'

अजीत कौर की पंजाबी कहानी 'न्यू ईयर' सामान्य सरकारी कर्मचारी के जीवन में उस शुरुआत के बारे में है जहाँ से खुशहाली के दरवाज़े खुलते हैं। एक मामूली क्लर्क जब अचानक मंत्रीजी का निजी सहायक बन जाता हैं, तब उसके दिन फिरने की शुरूआत कितनी बौखला देने वाली होती है, उसका चित्रण इस कहानी में बड़े प्रभावशाली ढंग से हुआ है। प्रसंगवश इसमें पारम्परिक भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर पड़ने वाले पाश्चात्य तौर-तरीकों की परछाइयों का व्यंग्य भी उभर आता है।

राचमल्लु रामचन्द्रा रेड्डी की तेलुगु कहानी 'यह सचमुच मुसीबत है' मध्य वर्गीय मानसिकता पर एक करारा व्यंग्य है। मर्यादा चले जाने पर यदि सम्पन्नता आ जाये तो क्या इसे मुसीबत कहेंगे? यह सवाल इस कहानी में बड़े पैनेपन से उभारा गया है।

सु० कृष्णमूर्ति की तमिल कहानी 'अनुसूचित' जातीय संकीर्णता पर तिलमिला देने वाला व्यंग्य है। व्यवस्था-परिवर्तन के साथ जब लोग सुविधा-भोग के लिए एक वर्ण से हटकर दूसरे वर्ण से जुड़ते हैं तब अपने वर्ण पर अभिमान करने वालों के वंशधर दूसरे वर्ण में सम्मिलित होते झिझकते नहीं, झूठ का सहारा ही क्यों न लेना पड़े। यह कहानी ऊपर-ऊपर से तो विनोदपूर्ण लगती है, परन्तु उसके भीतर करुणा की एक अंतर्धारा भी प्रवहमान है।

ह. मो. मराठे की मराठी कहानी 'छोटी मछलियाँ' भी एक ऐसी विश्वसनीय कहानी है जिसे पत्रकारिता से सम्बन्ध रखने वाले लोग बड़े शौक से पढ़ना

चाहेंगे। कहानी पढ़ते समय निरन्तर महसूस होता है कि कहानीकार ने पात्र जिस क्षेत्र से उठाये है वहाँ की पूरी-पूरी जानकारी उसे है।

तो 1984 में प्रकाशित इन विशिष्ट कहानियों में से गुजरते हुए सबसे पहला प्रभाव तो यही पड़ता है कि ये बनावट से कोसों दूर जीवन की सीधी-सच्ची तस्वीरें है जो अपनी सहजता और सादगी से पाठक को मुग्ध कर लेती हैं। इस बात का अचूक प्रमाण हैं कि कला प्रदर्शन की नहीं, उपयोग की चीज होती है। इनमें जटिल मन:स्थितियों के नाम पर पेश किया जाने वाला बौद्धिक ऊहापोह नहीं है और न ही है अर्द्धबौद्धिकों को रास आने वाली अस्पष्टता और दुरूहता।

प्रस्तुत चयनिका की कहानियाँ पढ़ते समय दूसरी प्रतीति यह होती है कि इनमे से अधिकतर कहानियाँ नायक नहीं नायिका प्रधान हैं। वे महिलाओं के इर्द-गिर्द बुनी गयी हैं। विभिन्न वर्गों, स्तरों और प्रकृतियों की महिलायें, जिनमें शामिल हैं वे जो परिस्थितियों का शिकार हैं और वे भी जो स्वयं शिकारी हैं। आज की भारतीय महिला के जितने चेहरे इस संकलन की कहानियों के माध्यम से उभरते हैं, उतने एक साथ दूसरी जगह देख पाना कठिन है!

कुल 28 कहानियाँ है इस संग्रह में जिनमे से 13 कहानियों में महिलायें प्रमुख है। शैलेन्द्र कुमार भट्टाचार्य की असमी कहानी 'मुखौटे और इन्सान' की अमला फूकन वैसे तो नेता का मुखौटा पहन कर धर्म-निरपेक्षता पर लम्बे-चौड़े भाषण झाड़ती है, किन्तु यह पता चलते ही कि उसके घर मे उसके पति ने एक दूसरे सम्प्रदाय वाले को आश्रय दे रखा है, उसे मारपीट कर घर से निकाल देती है। धार्मिक सहिष्णुता के नारे लगाने वाली अमला फूकन की कट्टरता न जाने कितने धर्मांधो के चेहरों पर से मुखौटे उतार देती है।

मेफ़िस्टोफ़िलिस की दुनिया मे लड़खड़ाते दो पाँव सत्यभामा के हैं। सत्यभामा —गाँव की एक भोली-भाली बेचारी लड़की जो पहले तो गाँव के चेयरमैन के लड़के की हवस का शिकार बनती है और बाद में रजत बाबू की राजनीतिक महत्वाकांक्षा का। नारी की हमारे देश में यही नियति है शायद कि एक बार इज़्ज़त लुटी तो लुटे चली जाती है।

वीर राजा की उर्दू कहानी 'बीच का फ़ासला' की पेंटर से उसका पुरुष मित्र पूछने पर मजबूर हो जाता है—'तुम में इतना आज़ाद रहने की ज़िद कहाँ से आयी ?" वह न केवल स्वयं स्वाधीन जीवन जीने की हठ ठाने है बल्कि उसने अपने साहित्यकार प्रेमी के लिए भी आजाद जिन्दगी बिताने का बन्दोबस्त किया। उसने न केवल उससे मुहब्बत की बल्कि एक हद तक उसकी सरपरस्त भी बनी।

दूसरी तरफ श्रवण कुमार की उर्दू कहानी 'चील' एक नौजवान विधवा मकान-मालकिन के बारे मे है जो मन्दिर के पुजारी के माध्यम से तरुण किराएदार ढूँढ कर लाती है। पहले तो उन पर तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगाती है

फिर खुल कर उनके सामने आ जाती है। 'प्रतिकृति' की रत्ना उन लड़कियों में से है जो समय पर शादी न करके एम० ए०, पी-एच० डी० करने आती हैं और गुरु की विशेष कृपा-दृष्टि के कारण झंझट में पड़ जाती है।

'रूखिया' (बोलुवारु मुहमद कुई : कन्नड) एक मार्मिक कहानी है। रूखिया केवल कुछ दिन दाम्पत्य सुख भोगने के बाद विधवा हो जाती है। भाँति-भाँति के मानसिक-सामाजिक बंधनों में बंधी मन की मार तो सहती ही है, दूसरे के बदले में उसे पिटना भी पड़ता है। उसकी गलती यह है कि उसने वह कुछ चाहा जिसकी इजाज़त समाज एक गरीब विधवा को नहीं देता। एक और मार्मिक कहानी है 'तालाब में तैरता थापा' (ऊजमशी परमार गुजराती) जिसकी नायिका है पूनम। उसके हाथ पर लगी रोली अभी साफ़ भी नहीं हुई थी कि उसके पति के थप्पड़ की छाप उसके गाल पर के कोढ़ के चकत्ते पर सन-सन करती हुई फैल गयी और जीवन प्रतीक्षा-बिन्दु पर आकर ठहर गया।

ऐसा नहीं कि केवल निम्न मध्य वर्ग की अथवा मध्य वर्ग की अबला नारी ही पुरुषसत्तात्मक समाज में स्वयं को अकेली और निरीह अनुभव करती हो। 'क्रोटंस' (ना० पार्थसारथी : तमिल) की सुपर स्टार प्रेमा कुमारी भी समय पर घर न बसा पाने के कारण अपने को उतना ही बेबस और एकाकी पाती है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि 'चाहे कितना ही पानी डाल लें अगर जड़ जमाने के लिए मिट्टी न हो तो पौधे मुरझा ही जायेंगे।'

शरदेश्वर चट्टोपाध्याय की बांग्ला कहानी 'जलदर्पण' की मछली पकड़ने वाली अंगूरी सवाल उठाती है—'पति आखिर चीज क्या है, बाबूजी ? हमें बताओ तो। वही न, जिसके साथ रहा जाता है, खाया जाता है, सोया जाता है।'''वह तो छह महीने साथ रह कर, डेढ़ साल हुए छोड़कर भाग गया।'

सारा तोमस् की मलयालम कहानी 'साझ के एकांत तट पर' की विधवा माँ का जीवन अब बेटों-बहुओं आदि के ओणम के अवसर पर दूर-दूर से घर आने पर उनकी देखभाल को समर्पित है। वह एक स्वप्न में अपने को मरा हुआ देखती है और पाती है कि जिनकी सुख-सुविधाओं के लिए वह जान छिड़कती रही, वे सब उसके न रहने पर राहत महसूस कर रहे हैं। वे उसको याद करते हैं तो एक ऐसे बोझ के रूप में जिसके उतर जाने से उनकी जिन्दगी का स्वाद ही बदल गया।

हिन्दी की दोनों कहानियों 'अंगूठी' और 'नंदनी का पर्स' के केन्द्रबिन्दु में भी नारी ही है। इन दोनों ही कहानियों की सादगी, मार्मिकता और वास्तविकता मन पर गहरी छाप छोड़ती है। ये कहानियाँ भारतीय कथा साहित्य के सन्दर्भ में हिन्दी का प्रतिनिधित्व बड़ी बानगी के साथ करती हैं। रोजमर्रा की जिन्दगी में उठायी गयी नारी-परवशता की परिस्थितियाँ इस तरह प्रस्तुत की गयी हैं कि पात्रों की मनःस्थितियों से पाठक का पूरा तादात्म्य हो जाता है और वह स्वयं

जंमे कहानी मे वर्णित वास्तविकताओं का साक्षी बन जाता है। आज भी मध्य वर्ग की लड़कियों को किन दबावों, प्रतिकूलता, कठोरता और यातनाओ से दो चार होना पडता है और किस तरह उन पर सारे दरवाजे बन्द होकर आत्महत्या का दरवाजा खुल जाता है, इस मर्मांतक कटु सत्य को नमिता सिंह ने बड़ी संवेदना के साथ 'अंगूठी' मे उतारा है।

अशोक शुक्ल एक नया नाम है हिन्दी कथा साहित्य में। हमें प्रसन्नता है कि इस चयनिका के माध्यम से महारथियों की प्रौढ रचनायें तो रेखांकित हो ही रही हैं, कुछ नये कथाकार भी प्रकाश-वृत्त में आ रहे हैं। 'नंदनी का पर्स' एक निम्न-वर्गीय लडकी की कहानी है जो उसके भाई के माध्यम से कही गयी है। बच्ची नंदनी जब धीरे-धीरे बडी होकर विवाह योग्य तरुणी बनती है तब निम्न मध्य-वर्गीय भाई को किन-किन मनोदशाओ मे से गुजरना पड़ता है और कैसे-कैसे परिस्थितियो के दबाव से उसका दृष्टिकोण क्रमश बदलता चलता है, यह इस कहानी में बड़े ही अनूठेपन और विश्वसनीयता के साथ चित्रित किया गया है।

भारतीय कहानी मे एक दौर वह भी गुजरा है जब शिल्प के साथ पश्चिम से उधार ली गयी परिस्थितियों, मन-स्थितियों, विसंगतियो और अस्तित्व-सकट की चेतना को बडी फ़ैशनेबल, वायवा और अमूर्त शैली मे अंकित किया गया था। कहानियो मे अंतरराष्ट्रीयता का रग बडा गहरा होता था और उनकी संरचना अत्याधुनिक होती थी। परन्तु अब रिवाज कुछ बदल चला है और भारतीय कहानी-कार बडे आग्रह और उत्साह के साथ अपने देश की सांस्कृतिक जडो से जुड़ रहे हैं। वे पूरी निष्ठा के साथ यह मानने लगे हैं कि जड से उखड़ कर कोई पौधा हरा-भरा नही रह सकता, चाहे वह अपनी पत्तियाँ किसी भी दिशा मे दूर-दूर तक क्यों न फैलाये। प्राण-शक्ति जितनी परिवेश से मिलती है उससे भी कही अधिक अपनी जमीन से। हवा बदलने पर भी मिट्टी तो बदलती नही। जो लोग मिट्टी से उखड़ कर हवा मे बह जाते हैं, वे बाह्य जगत मे खो जाते है। उन्हे आंतरिकता का ठोस आधार नही मिलता। साहित्य के लिए शिल्प के साथ ही आंतरिकता भी बहुत आवश्यक है।

देश की मिट्टी से उखड़ने का दर्द सोमनाथ चट्टोपाध्याय की बांग्ला कहानी 'जन्मभूमि' मे बड़ी शिद्दत के साथ उभरा है। भारतीय नागरिकता छोड़ते समय पिता को तो यहाँ की मिट्टी, यहाँ के जल से उतना मोह नही होता, किन्तु विदेश मे जन्मे, पले बढ़े, पश्चिमी रंग में रगे बालक के मन को यहाँ की गलियाँ, गंगा नदी सम्मोहित कर लेती हैं। कुछ कहानियो मे अपने यहाँ की मिट्टी का मोह एक प्रकार की सेनिम मानसिकता के रूप मे भी उभरा है। अवतार कृष्ण रहबर की कश्मीरी कहानी 'जड़ें' और इन्दिरा वासवाणी की सिंधी कहानी 'पिस्ते-बादाम' इस वर्ग की दो सशक्त कहानियाँ हैं। 'जड़ें' में कश्मीर की वादियों की खुशबू है

और 'पिस्ते-बादाम' में सिंध के मेवों का यादों में शेष रहा स्वाद। अपने जन्म-स्थान की मिट्टी का यह मोह राष्ट्रीय मुख्य धारा से कटता नही, बल्कि एक नदी की तरह बहता हुआ उसमे जा मिलता है।

कैलाश शर्मा की कहानी 'आश्रय' का नायक बजलुर रहमान जब अपना गांव ना-माटी छोड बेटे की जिद के आगे घुटने टेक कर जोरहाट चला जाता है तो वहाँ की आबो-हवा उसे रास नही आती और आस-पडोस वालों के ताने उसे अपराध-भाव से भर देते है! शहरो की तंग गलियों मे रहने वालों के दिल भी कितने तंग हो गये हैं। उनके मकान सटे रहने के बावजूद दिलो के बीच का फ़ासला कितना बढ़ गया है।

हृदय कौल भारती की कश्मीरी कहानी 'एक लम्बी दास्तान: किस्तों मे', के० एन० वाई० पतंजलि की तेलुगु कहानी 'गीत जिसकी दृष्टि है' और जसवन्त-सिंह विरदी की पंजाबी कहानी 'खुले आकाश मे' अपने-अपने ढग की अलग प्रयोग-शील कहानियां हैं।

'एक लम्बी दास्तान: किस्तों मे' बहुत कम शब्दो मे बहुत कुछ कह देने का एक अनूठा प्रयोग है। इसका पैनापन आज के जीवन की छद्ममयता और विसंगतियों पर एक तीखा प्रहार है।

'गीत जिसकी दृष्टि है' एक प्रतीकात्मक कहानी है जो आज के व्यापारिक वातावरण में यह चुनौती लेकर सामने आती है कि सच्ची कला बिकाऊ नही होती। गीत गाये जाते हैं, गवाये नही जा सकते। किसी को गीत जबरदस्ती सिखाया नही जा सकता। 'सीखने से गीत आता नहीं, गीत अपने आप बजता है।' बांसुरी जब तोडी जाती है, तब उसके छेदों से खून निकलने लगता है।

'खुले आकाश मे' भी इसी प्रकार की एक प्रतीकात्मक कहानी है जो बड़ी खूबसूरती के साथ यह बात सामने लाती है कि सहारा आदमी को कमजोर बना देता है। 'जिसके साथ बुराई होती है वह भी तो बुराई के विरुद्ध डटे।'

आनंद यादव की मराठी कहानी 'दीवार' और श्याम जय सिंघाणी की सिंधी कहानी 'एन अदर डे' अलग तरह की कहानियां हैं। इन कहानियों का अति-यथार्थवादी स्वर कुछ कानो को खटक भी सकता है और उनके संस्कारों को ठेस पहुँचा सकता है। किन्तु सम्भवतः यही इन कहानियो की शक्ति भी है कि ये आज के जीवन की कुरूपता और विषमता को सामने लाकर पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती हैं। इन कहानियों मे कतिपय अल्पप्रचलित बेबाक अभिव्यक्तियों का प्रयोग हुआ है, किन्तु ये अभिव्यक्तियां जीवन में प्रचलित हैं और उनका प्रयोग किए बिना पात्रो की चरित्रो विशेषताओं को उभारा नहीं जा सकता था।

'एन अदर डे' अपनी भाषा की एक बहुचर्चित कहानी है जो रोजमर्रा की एक-रसता, विरसता, ऊब, बासीपन, यान्त्रिकता, घुटन, निस्संगता और कृत्रिमता

को तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करती है। 'दीवार' सामाजिक विषमता से उत्पन्न होने वाली त्रासद परिस्थितियों को अत्यधिक विलक्षण एवं प्रामाणिक शैली में प्रस्तुत करती है और उसके एक-एक ब्यौरे पर यकीन होता चलता है।

यू० के० कुमारन् की कहानी 'वह और मैं' एक रोचक कहानी है और उसे पढ़ने के बाद जिज्ञासु पाठक उसके बारे में काफी देर तक सोचता रह जाता है।

प्रस्तुत संकलन की कहानियाँ पढ़ते समय एक बात खटक भी सकती है। इन्हें पढ़कर लगता है कि भारतीय कहानियों की भाषा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। पात्रों की भाषा-शैली को व्यक्त करने के लिए जहाँ-तहाँ अंग्रेजी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग तो चल सकता है, किन्तु वर्णन में भी अंग्रेजी का बढ़ता प्रयोग कहाँ तक वांछनीय है, इस पर विचार किया जाना आवश्यक है।

हमें खेद है कि चयनिका के प्रकाशन में थोड़ा विलम्ब फिर हुआ। इस संबंध में हम केवल यही कह सकते हैं कि इस प्रकार की योजना को क्रियान्वित करने में जो अड़चनें आती हैं उनसे बच पाना बड़ा कठिन है।

हम कृतज्ञ है चयन-मंडल के सदस्यों के प्रति जिन्होंने वर्ष 1984 में प्रकाशित अपनी भाषा की महत्वपूर्ण कहानियाँ पढ़ी और उनमें से दो का चुनाव किया, सहयोगी कहानीकारों के प्रति जिन्होंने कृपापूर्वक चयनिका में अपनी कहानी के समावेश की अनुमति दी, उन समस्त स्रोतों के प्रति जहाँ से ये कहानियाँ ली गयी है, और अनुवादकों के प्रति जिन्होंने हिन्दी पाठकों के लिए इन कहानियों को सुलभ कराया। साथ ही उन सभी साहित्य-मर्मज्ञों, समीक्षकों और सुधी पाठकों के प्रति भी हम विशेष रूप से आभारी हैं जिन्होंने हमारी इस योजना का स्वागत किया, इसे अपनाया और इसमें सुधार के लिए सुझाव भेजे।

—बालस्वरूप राही

सचिव, भारतीय ज्ञानपीठ

असमी

शैलेन्द्र कुमार भट्टाचार्य

कैलाश शर्मा

## शैलेन्द्र कुमार भट्टाचार्य

जन्म—1915, जोरहाट के समीपस्थ ढेकीया खोवा गांव में। शिक्षा—गुवाहाटी के आर्य विद्यापीठ कालेज से प्राणी-विज्ञान मे बी० एस-सी० और गुवाहाटी विश्वविद्यालय से नृतत्व मे एम० एस-सी०।

पहली कहानी 'जीयाइ थकार सन्धानत' 1972 में प्रकाशित। 'सूर्य-मुखी' पहला उपन्यास। प्रकाशित रचनाएं—26 कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे तथा 3 उपन्यास पुस्तकाकार। 'बोकार पदुम' लघु उपन्यास सन् 1983 मे राष्ट्रीय पुरस्कार से तथा 'सेतु' उपन्यास असम साहित्य सभा द्वारा 1982 में पुरस्कृत। सम्प्रति—असम सरकार के मत्स्य विभाग में अधिकारी।



● मत्स्य विभाग, असम सरकार, गुवाहाटी (असम)

## कैलाश शर्मा

जन्म—1948। 6 उपन्यास, 4 विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में और 2 पुस्तकाकार प्रकाशित। सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'बलुकात बियोली' (बांस-वृक्षों की चोटियों पर सूर्यास्त) लोकप्रिय असमी पाक्षिक पत्रिका 'प्रांतिक' मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित। 40 कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित। साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक विषयों पर अनेक लेख। असम साहित्य सभा और असम नाट्य सम्मिलन से सम्बद्ध। 'नतुन प्रहार' असम साहित्य सभा पत्रिका आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओ से सीधे जुड़े। असम ट्रेड यूनियन आंदोलन में सक्रिय।

सम्प्रति—हिन्दुस्तान फर्टिलाइजर कॉरपोरेशन (नामरूप एकांश) में कर्मचारी।



● नामरूप फर्टिलाइजर, क्वा०-49/3/बी, पो०—पर्वतपुर, डिब्रूगढ़ (असम)

देती हुई प्रचंड गर्जना के साथ रेल निकल गयी। वह फिर अंधेरे की छाती में छिप-सा गया। लखिमी की चिन्ता ने उसके तन-मन में उथल-पुथल मचा दी। वह आगे बढ़ चला।

स्टेशन पहुंचकर उसने देखा, विभिन्न लोग तरह-तरह से व्यस्त हैं। उन अनजाने चेहरों के बीच वह अपना पहचाना चेहरा बड़े आग्रह से ढूंढ़ने लगा।

—चा-य चा-य गरम— चाय···

—चनाचूर गरम— भाजी···

उससे थोड़ी ही दूर से एक चाय वाला आवाज लगाता निकल गया। उसके पास से ही एक चनाचूर वाला भी। आधी रात को भी रोटी-रोजी के चक्कर में पड़े इन्सान। स्टेशन ने वह मौका इन्हें दे दिया है। जरा-सी शरण। और दिया है क्षण-भर जन-समागम का स्पर्श।

उसने एक बीड़ी निकाली। मगर जलाये तो कहाँ? कुछ हटकर खड़े पान वाले की ओर उसने कदम बढ़ाये। अनुरोध के स्वर में कहा—"भैया, जरा दियासलाई तो देना।"

—"अरे, जा, तुरन्त भाग-भाग। मैंने क्या तेरे लिए दियासलाई रख छोड़ी है?" कठोर स्वर ने उसे वहाँ से हट जाने पर लाचार कर दिया। सचमुच इंसान भला इतना यांत्रिक किसलिए बन गया? हो सकता है कि अभाव के कारण विभिन्न दिशाओं में पनपे अभाव के ताप के प्रचंड प्रवाह ने उनके दिलो-दिमाग को बिल्कुल झुलसा डाला हो।

आहिस्ते-आहिस्ते वह रेलवे ओवरब्रिज पर चढ़ गया। वह सावधानीपूर्वक लखिमी का चेहरा ढूंढ़ने लगा। राजमार्ग की वधुएँ यहाँ-वहाँ बिखरी साज-सज्जा में खड़ी थीं। पेट की भूख की मार से इन्सान के यन्त्र बन जाने की कथा इस ओवरब्रिज को मालूम है। उसकी ओर देखकर एक ने इशारा किया। वह उसकी परवाह किये बगैर आगे बढ़ गया। वह लखिमी को ढूंढ़ने लगा। अपनी प्यारी लखिमी को। आहिस्ते-आहिस्ते वह ब्रिज के दूसरे सिरे पर पहुँच सीढ़ियों से नीचे उतर गया। लखिमी कहीं नजर न आयी। ब्रिज के नीचे पहुँचकर रेल मार्ग के पास वह फिर खड़ा हो गया। चारों ओर अँधेरा था। घुप्प अंधेरा। बीड़ी सुलगाने की इच्छा फिर तेज हो गयी। कुछ हटकर बीड़ी पीते एक आदमी की तरफ़ वह बढ़ गया। वह भी उसके जैसा ही अकिंचन था। उस बेचारे ने उसे बीड़ी सुलगाने का मौका दे दिया। फिर वह अन्धेरा और कड़ाके की सर्दी का कुहरा चीरता हुआ पूरब की ओर बढ़ चला।

बैसाखी लेकर चलने में उसे पहले कठिनाई होती थी। मगर अब तो धीरे-धीरे वह आसान होता जा रहा है। इस बैसाखी के सहारे ही मनचाहे पैदल चल सकता है। चलते-चलते वह बीच-बीच में रुक जाता। कभी-कभी लखिमी का

नाम लेकर पुकारा भी। मगर कहाँ, लखिमी का कोई सुराग उसे नहीं मिला। पास खड़ी रेल की सीटियाँ मानो उस पर व्यंग्य कर रही थी। उसे फिर याद हो आया, उस अलाव के पास लखिमी को बाँहों मे भरकर वह सोया था। फुटपाथ की जिन्दगी में ऐसे सोने की सुविधा है। एक-दूसरे को देह की गर्मी मिला करती है। सर्दी को हार माननी पड़ती है। और चारा भी क्या है? रजाई के नीचे की गर्मी फुटपाथ वालों के लिए तो सिर्फ़ मरुस्थल की मरीचिका-भर है।

उसने दूर से ही ध्यान देकर देखा, रेल मार्ग के पास ही कोई आग ताप रहा है। वह पास पहुँचा। कुछ नंगे-अधनंगे-से इंसान उस आग को घेरे बैठे थे। उस आग के प्रकाश से रेल की पटरियाँ और उस ओर की झाड़ियाँ दमक रही थीं। यह देख उसे कुछ अच्छा-सा लगा। जो भी हो, आग तापने को मिल जायेगी। हो सकता है कि लखिमी भी वहाँ हो। उसने एक बार उस पर नजर डाली। जाड़े के दिनों का आसमान काफी साफ़ था। तारे मानो आँखें झपका रहे थे। उसे लगा, तारे बड़े दुखी-से हैं। इंसान के दुख देखकर वे आँसू बहाते हैं या मजाक करते हैं—कौन जाने!

अचानक उसे सुनाई पड़ा—आग के पास बैठे लोगों के झुंड मे जैसे कोई हो-हल्ला मच गया है। कुछ सहमा-सा वह नजदीक आ पहुँचा।

—"छोड़, छोड़ दे री साली। मेरा कम्बल तू कहाँ से उठा लायी?"

—"छोड़, छोड, कहती हूँ, छोड़ दे। यह तेरा कम्बल कैसे है? मैं तो यह रेलवे लाइन के किनारे पड़ा पाकर उठा लायी हूँ।"

"साली, हरामजादी, चोर," कहती हुई दूसरी औरत उससे कम्बल झपट लेना चाहती थी। दो-तीन आदमी उसकी बात का समर्थन कर रहे थे। पास का कुत्ता भौंकने लगा था। वह उनके जितने क़रीब पहुँचता गया, उसकी नाक मे एक अजीब-सी बू घुसती गयी। शायद वे लोग टायर जलाकर आग ताप रहे थे। बिल्कुल पास पहुँचकर उसकी आँखें फैली की फैली रह गयी। अनजाने मे वह अचानक कठोर स्वर मे चीख़ पड़ा—"लखिमी।"

छीना-झपटी अचानक रुक गयी। मानो पूरे जोर से बजते हुए नगाड़े की धुन बन्द हो गयी। हर आदमी उसकी ओर विस्मय से देखने लगा। वह चिल्लाया —"लखिमी, का हुआ रे?"

लखिमी उसकी ओर देखती रुआंसी होकर बोली—"देखो न, मैं जो कम्बल इतनी तकलीफ़ उठाकर ले आयी हूँ, यह बदज़ात कैसे छीन लेना चाहती है।" लखिमी की बात से उसका दिल पिघल-सा गया। उसने गुस्से से उस अपरिचित औरत से कहा—"अरी तू जो कह रही है कि कम्बल तेरा है, कोई प्रमाण है तेरे पास?" उसकी बात पर वहाँ जमे लोग बड़बड़ा उठे। मजाक़ उड़ाने के लहजे में वे बोल उठे—"अरे साले, क्या बकता है वे। भाग यहाँ से। नही तो बात बिगड़

जायेगी ।"

वह क्षण-भर चुप खड़ा रहा। अपने लंगड़े पैर की ओर उसकी नजर गयी। मन बुझ-सा गया। उसने आहिस्ते से पुकारा—"लखिमी।"

रुँआसी होकर वह पास आ गयी।

"आ लखिमी, आ। यहाँ चली आ। मैं तुझे कितनी देर से ढूँढ़ रहा हूँ, लखिमी। चल, हम अपनी जगह चलें। चाहेंगे तो कम्बल बहुत मिलेंगे। झगड़ा करने से कोई फायदा नहीं।"

"मामा," भरे गले से कहती हुई लखिमी ने उसे बाँहों में जकड़ लिया।

घुप्प अँधेरे में वे दोनों फिर वापस आ गये। आते-आते उसने पूछ लिया—"लखिमी, बता तो सही, तू मेरे पास से कहाँ चली गयी थी?"

—"मामा! तुम ऊँघ रहे थे न! पर मुझे तो नींद जरा भी नहीं आ रही थी। बड़ा जाड़ा लग रहा था। तुम्हें जगाये बग़ैर यह सोचकर कहीं कुछ कपड़ा-लत्ता मिल जाये, चुपचाप चली आयी थी। मिल भी गया, मगर···।"

"जाने दे लखिमी, हमारी किस्मत में जो लिखा है, वही बहुत है।"

वे फिर अपनी जगह जा पहुँचे। राह में दो फटे बोरे मिले। भागते भूत की लँगोटी भली, यह सोचकर वे उन दोनों बोरों को उठा लाये और वहाँ बिछा लिया। तभी उन्होंने देखा, कुछ दूर एक पुलिस का सिपाही चला जा रहा है। वह रात के पहरेवाला है। उन दोनों ने आग जलायी। चारों ओर सन्नाटा था। कुछ देर आग तापते हुए बातें करते-करते सो गये।

मगर उसे जरा भी झपकी नहीं आयी। उसने देखा, लखिमी गहरी नींद में है। कुछ देर इधर-उधर करवटें बदलने के बाद वह उठ बैठा। फिर आग तेज की। कमर से एक बीड़ी निकाल जला ली। लखिमी के करुण असहाय-से चेहरे पर उसकी नजर पड़ी। उसका मन करुणार्द्र हो उठा। सन्नाटे भरी रात के पिछले पहर के वातावरण ने मानो उसके मानस में प्रसुप्त अतीत को धीरे-धीरे जगा दिया।

"मुकीब, खा, न खा, यह दूध तो ज़रा-सा पी ले न!"

"ज़रीना को दो दादा, तभी मैं पियूँगा।"

"ज़रीना!" अचानक एक लम्बी साँस ने उसके दिल में उथल-पुथल मचा दी।

उनके बचपन की यही थी जानी-पहचानी तस्वीर! कभी दादा, तो कभी बाप, उन्हें दूध पीने को दे पास ही बैठे तरह-तरह की बातों में तल्लीन हो जाते। कभी अलिफ लैला की मनोरम कथाएं सुनाते। ज़रीना थी उसकी बहन। उसका अपना नाम है मुकीब। उसे याद है, चेहरे पर लम्बी दाढ़ी वाले उसके दादा मुंह पर अद्भुत मोहक भाव जगाकर हमेशा एक शेर गाया करते थे—

'दुनिया बेमिसिल चक् सराइ दो दरास्ते।'

उन दिनों वे लोहित के एक गांव में रहते थे, जिसका नाम था, पाटीदंया। ऐसी एक आपसी लड़ाई में, जिसमें आदमी एक-दूसरे को बेरहमी में काट-पीट डालते है, उसके बाप रहमतमियाँ ने अपना सर्वस्व गँवा कर जान बचा इसी गाँव में आकर शरण ली थी। रामनाथ, हरिनाथ, रहीम, वाहेब आदि परिवार सहित वहीं रहते थे। उन सबने मिलकर इस सुन्दर, शस्यश्यामल, हरे-भरे गाँव को बसाया था। इन भोले-भाले इन्सानों के स्पर्श से वहाँ की धरती हँस पड़ी थी।

मगर जिन्दगी बड़ी पेचीदी है।

इन पेचीदगियों के बीच रहमत, रामनाथ जैसे लोगों की सरलता को राह नहीं मिल पाती। उनकी आँखों के सामने चन्द लोगों के जटिल अन्तर का एक ऐसा जाल बड़ा ही मोहक बनकर दमकता रहता है, जिसमें गुलाब की कली के पीछे रहने वाले काँटों जैसे ही काँटे रहते हैं। मगर वे काँटे उनकी नजर में नहीं आते। सत्ता की लालसा मे चुनाव मे वोट पाने के लिए वैसे लोग रहीम, रहमत, रामनाथ जैसों को बेधकर तहस-नहस कर डालते हैं। इन्सान की यह करतूत तो प्रकृति की ताडव-लीला से भी ज्यादा भयावह है।

पाटिदंया गांव में रहमत आदि की सुखभरी जिन्दगी में मोड़ आ गया। लोहित (ब्रह्मपुत्र) उन्मत्त-सी हो उठी। प्रचड रूप धारण कर वह पास के कई गाँवों को बहा ले गयी। हालाँकि पाटिदंया गांव कटाव से बच गया, फिर भी उस बाढ़ ने जनता के मानस में आतंक फैला दिया। नया धान बाढ के पानी में डूब गया। घर-बार नष्ट हो गये। फिर पानी सूखने पर भूत पर दानव की भाँति महामारी फैली। मुकीब का दादा उस महामारी की चपेट में आकर चल बसा। सात दिन के आगे-पीछे उसकी माँ भी चल बसी। आज भी उसके मानस में दादा के दढ़ियल चेहरे का रूपाकार झलक उठता है। उनकी गायी शायरी की धुन उसके कानों में गूंज उठती है—। 'दुनिया बेमिसिल चक्…।'

मगर उनकी विपत्ति दादा की मृत्यु तक ही सीमित नहीं रही। शुरू हो गयी हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक घिनौनी मार-काट। सत्ता की गद्दी पर बैठने वाले लोग आम जनता का अज्ञान ताडते रहते हैं, उनमे दंगे-फ़साद करवा मजा लेते है। असली समस्याओं को ढँके रखना चाहते है। सत्ता की गद्दी पर बैठने वालों की असभ्यता का ही तो एक नमूना है यह। उन दिनों मुकीब कुछ भी समझ नहीं पाया था। अब सारी बातें समझ में आ गयी हैं। उस घिनौनी मार-काट मे मुकीब को अपनी प्यारी बहन ज़रीना को और उसके बाद अपने बाप रहमत को खोना पड़ा था। ज़रीना अचानक लापता हो गयी थी। उसका कोई अता-पता नहीं चला। बाप रहमत की खू़नसनी लाश के पास बैठकर क्षण-भर जी-भर कर रो लेने का मौका भी तो उसे नहीं मिला।

जान बचाकर उसे बहुत दूर भाग आना पड़ा।

महानगर में आकर वह गुप्त रूप से रहने लगा।

उसके पश्चात् ही मुकीब की जीवन-यंत्रणा का अगला अध्याय प्रारम्भ हुआ। दो दिन उसे खाली पेट रहना पड़ा। तीसरे दिन सुबह अनमना-सा, दुश्चिन्ता के सागर में डूबा हुआ, वह नगर की सड़क के किनारे खड़ा था। भूख से तड़पता हुआ वह पास के चाय-स्टॉल की काँच लगी आलमारी मे सजी तरह-तरह की मिठाइयों के अम्बार को ललचायी नजरों से देख रहा था। अचानक किसी ने उसे पीछे से पुकारा—"ओ लड़के!"

मुड़कर देखा, एक सुन्दर-से सज्जन हैं। कुछ क्षण एकटक नजर गड़ाये रहा। सज्जन ने फिर पूछा—"तेरा नाम क्या है?"

"मुकीब।" उसने जवाब दिया।

क्षण-भर सज्जन ने कुछ सोचा। फिर पूछा—"कितना पढ़ा—लिखा है?"

—"आठवीं तक।"

"पढ़ाई छोड़ क्यों दी?"

पढ़ाई क्यों छोड़नी पड़ी, मुकीब ने सारी कहानी कह सुनायी। बड़ी हमदर्दी से उस भद्र पुरुष ने उसकी बातें सुनी, उसकी भी आँखें भर आयी। मुकीब ने बताया, दो दिन से उसके पेट में कुछ भी नहीं पड़ा है।

"अच्छा, ऐसी बात है?" उस सज्जन ने अचरज से पूछा—"तो मुझे बताया क्यों नहीं? चल, चल। वहाँ चलकर कुछ खा-पी ले।"

मुकीब सचमुच दंग रह गया था। ऐसा नेकदिल इन्सान भी इस दुनिया में है! उसे जिन्दगी बड़ी विचित्र-सी जान पड़ी। थूक निगलकर वह लड़खड़ाता उस सज्जन के पीछे-पीछे चल पड़ा। दो परांठे, गर्म सब्जी और गिलास-भर चाय उसने बड़ी तृप्ति से उड़ाये। वह सज्जन उसके पास बैठा इधर-उधर की कितनी ही बातें पूछता रहा। एक बार उसने पूछ लिया—"क्या तू काम कर सकेगा?"

'काम' शब्द सुनते ही उसने आँखें फैलाकर उस सज्जन के चेहरे की ओर देखा। उसे मानो जीते-जी बहिश्त मिल गया। उसने धीमी आवाज में कहा—"बाबूजी, मैं तो काम ही चाहता हूँ। कैसा भी काम मिले मैं कर सकूँगा। मुझे सिर्फ सिर छुपाने की जगह चाहिए।"

सज्जन ने कहा—"मगर मुकीब, मैं तुझसे एक गोपनीय बात कहता हूँ। मेरे बाल-बच्चे नहीं हैं। तुझे मैं अपने ही बेटे जैसा रखूँगा मगर मेरी श्रीमती से तुझे एक झूठ बोलना पड़ेगा।"

वह फिर दंग रह गया। बड़े ही कौतूहल से उसने पूछा—"कौन-सा झूठ?"

"बात यह है कि···", सज्जन कहता गया—"तू अपना नाम योगेन, ब्लीन या

ऐसा ही कोई हिन्दू नाम बताना। तू मुसलमान है, यह जानने पर···!"

मुकीब की फिर दंग होने की बारी थी। उसके मन में आशंका भी थी। कुछ दिन पहले जो घटना हो चुकी है, उसी ने उसके दिल को झुलसा डाला है। फिर एक हिन्दू के यहाँ 'वह खुद हिन्दू है' ऐसा बहाना बनाकर···। मगर यह नेक-दिल आदमी उसे हर तरह से निडर कर रहा है। इधर उसके पेट की भूख और तेज हो आयी है।···

गहरी उधेड़-बुन के बीच उसने कहा—"अगर मैं मुसीबत में फँस जाऊँ ?"

"कभी अपने को प्रकट न करना। मुसीबत में कभी नहीं फँसेगा।"

आख़िर भूख मिटाने की फ़िक्र की ही जीत हुई। वह उस सज्जन के साथ चला गया। आहिस्ते-आहिस्ते वह समझ गया, सज्जन सम्पन्न है। नाम है निरंजन फूकन। वह सबका बड़ा प्यारा है, मगर उसकी श्रीमती बड़े रूखे मिज़ाज की है। मुकीब ने पाया कि निरंजन फूकन के कभी दो-तीन दिन दफ़्तर के काम से बाहर जाने पर अमला फूकन के यहाँ कुछ अपरिचित युवाओं का आना-जाना शुरू हो जाता है। ड्राइंग रूम की नीली बत्ती के उजाले में अमला फूकन के साथ उन अपरिचित युवाओं का जमघट प्रायः मुकीब की नजर में आ जाता। श्रीमती फूकन के कोई सन्तान नहीं। हालांकि मुकीब सारी बातों पर गहराई से सोच-विचार नहीं कर पाता।

वह महिला सभा-समितियों का भी चक्कर लगाया करती। भाषण से वह दुनिया को मात करना चाहती। फुलझड़ी जैसी लच्छेदार बातें लावे जैसी फूटा करतीं। निरंजन फूकन का भोला-भाला मानस इन बातों का तत्व तक नहीं समझ पाता। कभी-कभी मुकीब के लिए ये बातें असह्य हो जातीं। मगर चारा ही क्या था ?

एक दिन निरंजन फूकन को सात दिन के लिए दिल्ली जाना पड़ा। उस दिन अचानक एक नौजवान लड़का 'मुकीब है क्या ?' पुकारता हुआ फूकन के घर में आ घुसा। उस समय मुकीब कुछ सामान लाने के लिए दुकान गया था। बरामदे में बैठी थी अमला फूकन। नौजवान की बात सुनकर आँखें टेढ़ी कर उसने पूछा-"कौन चाहिए ?"

—"बाइदेउ (बहनजी), यह निरंजन फूकन जी का मकान है न ?"

—"हूँ। मगर चाहिए क्या ?"

"यही है बाइदेउ, वह घरेलू काम करने वाला लड़का, याने मुकीब··· मुकीबुद्दीन···अहमद !"

तभी बाहर का गेट खोल कर मुकीब आ गया। वह लड़का उसे देखते ही पीछे मुड़कर—'अरे मुकीब, तू कहाँ से आ रहा है ? तुझे ही ढूंढ़ता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा हूँ', कहते-कहते खुशी के मारे चीख़ पड़ा। तभी वज्रकठोर स्वर से

अमला फूकन ने उस अपरिचित लड़के से पूछा—"ओ लड़के, तेरा नाम क्या है ?"

"वाइदेउ, मेरा नाम सिराज है । सिराज हुसैन, और यह 'मुकीव' मेरे गाँव का ही है । हम एक ही गाँव के लड़के हैं ।"

मुकीब के होश उड़ गये थे । साथ ही उसने देखा, अमला फूकन के चेहरे का रंग बदलता जा रहा है । तभी उस लड़के ने कहा—' वाइदेउ, मैं तो पता ही करने आया था । सोचा था, मुकीब से मिलकर उसके जरिये हो सके तो कोई नौकरी-चाकरी ढूंढ लें ।"

"मुकीव, आ इधर ।"—अमला फूकन ने कहा । वह बड़े संकोच से सहमा-सा पास पहुँचा । "मुकीबुद्दीन अहमद" व्यंग्य से मुँह बनाकर ताना मारते हुए अपनी सारी नाराजगी जाहिर कर अमला फूकन ने झपट कर उसके बाल पकड़ लिये और पूछा—"अब बता, तूने बहाना किसलिए बनाया था ?"

मुकीब कुछ कहने के लिए जुबान खोलना ही चाहता था कि तभी उसके गाल पर एक भरपूर थप्पड़ जड़कर अमला फूकन गरज उठी —। "जा, अभी-अभी निकल जा । पहले अपने बिस्तर-कपड़े आदि बाहर निकाल कर पानी में भिगो दे । सब ओर गोबर-पानी छिड़क दे ।"

मुकीब से जो लड़का मिलने आया था, हक्का-बक्का होकर खड़ा रह गया ।

कुछ ही देर बाद सिराज और मुकीब हमेशा के लिए अमला फूकन के यहाँ से निकल आये । निरजन फूकन से मिलने की हिम्मत भी मुकीब की नहीं हुई । वे दोनों मजूरी करने लगे ।

जटिल जीवन फिर मुकीब को जलाने लगा । कुछ ही दिनों में शहर के दो रिक्शा मालिकों से दो रिक्शे किराये पर ले दोनों चलाने लगे । मेहनत करने वालों को भोजन की भी अधिक आवश्यकता होती है, नहीं तो शरीर गल जाता है । वे दोनों कठिन परिश्रम करने लगे ।

पर एक दिन फिर अनहोनी हो गयी ।

एक ट्रक ने टक्कर मार कर मुकीब के रिक्शे को चकनाचूर कर डाला । उसका दायाँ पैर हमेशा के लिए बेकार हो गया ।

अब काम कर के भोजन जुटाने की राह भी बन्द हो गयी । मेडिकल कालेज अस्पताल से निकलने के बाद से शुरू हुई बैसाखी के सहारे चलने वाली जिन्दगी । पहले बहुत से लोग उस पर तरस खाकर कुछ न कुछ दे दिया करते । सिराज भी मदद किया करता । मगर हमेशा क्या एक-सी परिस्थिति रहती है ? झोली पसार कर भीख माँगने की वेदनाभरी जिन्दगी, फुटपाथ पर दिन गुजारने की जिन्दगी शुरू हुई ।

यों ही चक्कर लगाते हुए एक दिन तड़के नगर के राजमार्ग के किनारे अचानक रुक गया था मुकीब । उस राजमार्ग से दक्षिण की ओर नजर घुमाते ही लोहित

का विशाल वक्षस्थल दिखायी पड़ जाता है। उसी महानद की ओर से हवा में रुदन का स्वर तिरता-सा आ रहा था। जैसे किसी नवजात शिशु का रुदन हो ! वह साँस रोके कुछ देर तक आवाज की ओर कान लगाये रहा। सूखे के मौसम में लोहित के कुछ स्थान से लहरों जैसी शुष्क रेत निकल आयी थी। आहिस्ते-आहिस्ते नदी के कटाव से होकर वह नीचे की ओर उतर गया। फिर अपनी बैसाखी के सहारे चलता हुआ आवाज की सीध में रेत पर क़दम बढ़ाता जलधारा की तरफ़ बढ़ गया। वह रुदन की आवाज चारों ओर फैले गहन सन्नाटे को तोड़ रही थी। कड़कड़ाती ठंडी हवा चल रही थी। हवा मे तिरती हुई आवाज कभी ऊँची-होती, कभी मद्धम पड़ जाती। वह पास पहुँचा। आख़िर वहाँ पहुँच कर उसने जो देखा, उससे सहसा उसे अपनी ही आँखों पर यक़ीन नहीं हुआ। लगा, वह कोई भूत-प्रेत देख रहा हो। चौंक कर उसने आँखें फैला दी। देखा, पास ही एक शिशु है, जिसके रुदन से मानो पेड़ के पत्ते भी झड़ते जा रहे थे। उसके पास ही चिरनिद्रा में सोयी हुयी है जरीना। बहुत दिन पहले लापता उसकी प्यारी बहन जरीना।

एक चीख़ मारकर कुछदेर के लिए वह अचेत-सा हो गया। आहिस्ते-आहिस्ते होश आया। हड़बड़ाकर जरीना को बाँहो मे भरकर वह रोने लगा। देर तक रोता ही रहा। उसके बाद शिशु को उठा लिया।

उस दिन जिस नवजात शिशु को वह उठा लाया था, वही है यह लखिमी, जो उसके पास ही सोयी हुई है।

रात बीत चली। ओवरब्रिज पर से दो-चार सामान ढोने वाले ट्रक निकल गये। कहीं से मुर्गे ने बाँग दी। अलाव की ओर मुकीब की नजर गयी। न जाने कब वह आग बुझ गयी थी, अपनी तन्मयता मे उसे पता ही नही चला। उसने लखिमी पर नजर डाली। उसने धीरे से करवट बदली।

धूप निकल आने पर लखिमी को साथ ले मुकीब मुट्ठी-भर दाने पाने की आशा से किसी होटल के आस-पास, राजमार्ग पर निकल गया। दिन-भर चक्कर लगा एक मोड़ पार करते ही उन दोनों ने देखा, कुछ दूर उस खुले मैदान मे अनगिनत लोग है। शायद कोई सभा-समारोह हो रहा है, सोचकर नजदीक जाकर देखा, बात सही है। एक आम सभा हो रही है। अचानक उनकी नजर पड़ी, एक महिला उदात्त स्वरसे भाषण दे रही है—"भाइयो, आप लोग जानते ही है कि आज हम यहाँ किसलिए इकट्ठे हुए हैं। आज हमारे देश मे एक चीज का बड़ा अभाव हो गया है। वह है हमारी गणतांत्रिक चेतना का अभाव। हम लोग अपने-अपने, छोटे-छोटे स्वार्थो को लेकर खो गये हैं। हमारे इस हिन्दुस्तान में हिन्दू हो या मुसलमान या ईसाई ! हम सब भला एक बन कर क्यों नही रह सकते ?"

बैसाखी के सहारे मुकीब धीरे-धीरे आगे बढ़ चला। साथ-साथ लखिमी भी। मुकीब ने ध्यान से देखा, पहचाना। तर्जनी हिला-हिलाकर आवेग-विह्वल हो भाषण देने वाली महिला कोई और नहीं, निरंजन फूकन की पत्नी, यही अमला फूकन है। मुकीब का सिर चकरा-सा गया। कुछ देर कसमसा कर उसने कहा—"लखिमी, चल, हम यहाँ से चलें।"

वे दोनों वहाँ से चले आये। हृदय में असीम वेदना लिये मुकीब रास्ते-भर सोचता रहा, वास्तव में ऐसे ही लोग तो हमारे देश के सत्ताधारी हैं। तो फिर क्या इस देश के सामान्य जन के भाग्य में कभी सुखी होना बदा नहीं है?

"मुकीब।"

एक गंभीर-सी आवाज़ सुन अचानक रुक उसने मुड़कर देखा। साथ ही उसका तन-मन पुलकित-सा हो उठा। खुशी के मारे आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। और आखिर क्यों न बहे? जो इंसान चेहरे पर खुशी की छाप लिए उसकी ओर आ रहा है, वह और कोई नहीं, निरंजन फूकन ही है।

"बाबूजी।"

"अरे, मुकीब। तेरी ऐसी हालत हुई तो कैसे? तुझे मैं कितने दिनों से ढूँढ़ता रहा हूँ। बता मुकीब!" मुकीब ने अपनी रामकहानी कह सुनायी। अपनी उस एक दिन की गलती के लिए अफसोस ज़ाहिर किया।

फिर 'मुकीब' ने निरंजन फूकन की रामकहानी भी सुनी। फूकन ने बताया—"अमला अब अपनी पत्नी नहीं रही, मुकीब। पता नहीं, दोष किसका है? मगर मैं सोचता हूँ, तलाक़ देकर मैंने अच्छा ही किया है।"

पूरी कहानी सुनाने के बाद फूकन ने बताया—"उसे राजकीय सुख चाहिए। फिर तूने तो देखा ही था, मैं काम-काज में कुछ अलग तरीके का आदमी हूँ। अब अमला एक ऐसे पुरुष के साथ रह रही है, जिसके कितने ही व्यापार हैं। त्रिभुवन में किसी को पता नहीं। भला मैं क्या वह आडम्बर सह सकता था?"

निरंजन फूकन जैसे सीधे-सादे स्वभाव के इन्सान की यह हालत, इस विचार ने मुकीब के अन्तर को उत्पीड़ित कर डाला। धीरे-धीरे दोनों आगे बढ़ चले। पीछे-पीछे चली लखिमी।

"भाइयो, हमें सहिष्णुता के बन्धन का सूत्र मजबूत करना ही होगा। हमें एक होना ही···।" भाषण के लच्छेदार लहजे से आसमान कँपाकर भी अमला फूकन चीख रही थी। वे जितना आगे बढ़ते गये, उसकी आवाज़ भी उनसे दूर हटती गयी। सरसरा कर बहती हुई हवा का एक झोंका कहीं से वनफूलों की सुगन्ध ले आया। कुछ ही देर पहले शहरी गंदे नालों से निकलती जो दुर्गन्ध उनकी नाक में बस गयी थी, वह दूर हो चुकी थी। उन्हें लगा कि मुखौटेधारी इन्सानों का अभिनय देखने के बाद अब सच्चे दिलवाले की ओर उनके क़दम बढ़

चले हैं। उन्हें क्रमशः विशुद्ध हृदयों का आह्वान सुनायी दे रहा है। कुमेरू की ओर से मानो अब उनकी यात्रा सुमेरू की तरफ़ हो रही है। कुमेरू मे है मुखौटे और सुमेरू में बसते हैं इंसान।

अचानक निरंजन फूकन बोल उठा—"मुकीब, आजकल मुखौटों वाले लोगों की तादाद बढ़ गयी है। इसकी वजह बडी गहरी है। सीधे किसी को अपराधी बता देने से भी कोई फायदा नहीं। मगर ऐसा एक दिन आयेगा जब कि मुखौटे खुल जायेंगे, इन्सान सच्चे बनेंगे।"

मुकीब और लखिमी ने स्तब्ध होकर उसकी आँखों में आँखे डालीं। निरंजन फूकन के चेहरे पर दृढता के साथ-साथ गभीरता भी थी।

(अनु०—नवारुण वर्मा)

# आश्रय

●

कैलाश शर्मा

इनामुल बहुत दिनों से अब्बा से कहता रहा है—घर में यों घुसे रहने की बजाय तुम कुछ दिन के लिए हमारे यहाँ चलो। नयी जगह है, कुछ दिन रहने पर शरीर-मन चंगा होगा।

जब भी इनामुल घर गया है, अब्बा को बुला आया है। मगर हर बार कोई न कोई बहाना बनाकर अब्बा नहीं आये। कभी उन्होंने कहा है—जहाँ नौजवान रहते है, ऐसे शहर में जाकर मैं बुड्ढा आदमी भला क्या करूँगा? कभी कह दिया है—लोग इस बार ईदगाह का मैदान पक्का बनवा रहे हैं। मैं घर में यों ही रहता हूँ इसलिए मुझ पर ही देख-भाल करने का भार डाल दिया है। मैं भी सोचता हूँ—लोग ठीक ही कह रहे हैं। जिन्दगी का ज्यादा से ज्यादा समय तो बच्चों को पढ़ाते ही बीता है। अब इस उम्र मे धर्म के कामों में ही मन लगाया जाए। लेकिन सुना तूने, अगर हो सके तो तू भी दो-चार थैले सीमेंट की कीमत दे देना।

इनामुल भला अब्बा के मुँह पर क्या कहता। चार थैले सीमेंट की कीमत अब्बा के हाथ पर धर, माँ-बहन ने जो कुछ सामान बाँध दिया था, सारा गठ्ठर-मट्ठर लेकर वह अपनी नौकरी की जगह रवाना हो गया।

इस तरह कई बार बुला-बुलाकर भी इनामुल अब्बा को गाँव के घर से अपनी नौकरी की जगह के सरकारी मकान में ला नहीं पाया। इनामुल अब्बा को जो बार-बार बुला रहा था उसका मुख्य उद्देश्य था, इस समय उन्हे जरा आराम पहुँचाना, शान्ति से रखना। अब्बा ने बड़ी तकलीफ उठाकर उसे पढ़ाया-लिखाया है। घर से आठ मील दूर हाँहचरा हाई स्कूल तक धूप-बारिश में साईकिल दौड़ा कर, इसके अलावा कई घरों मे ट्यूशन पढ़ाकर परिवार का पालन-पोषण करते हुए उसे गुवाहाटी महानगर मे रखकर विज्ञान में स्नातकोत्तर तक

शिक्षा दिलवायी। उन दिनों की याद करते ही आज भी उसका मन भीग आता है। अब्बा बजलुर रहमान की कितनी मेहनत, माँ जुबेदा के कितने त्याग के फल से वह ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सका है।

माँ दोनों हाथों से पूरे घर का सारा काम करने के अलावा भी दो-चार पैसे का सहारा हो सके, इसके लिए मुर्गी, बकरी पालकर अब्बा को यथासंभव मदद पहुँचाती रहती थी। इनामुल को अब तक याद है, विश्वविद्यालय की आख़िरी परीक्षा के वक़्त जब उसे ज्यादा पैसे की जरूरत हुई थी, तब माँ ने झुंड-भर बकरे-बकरियाँ कसाई के हाथ बेच दी थी। और तो और उसकी बहन रेजिना ने जिसका नाम बड़े प्यार से ज़ोनाकी रखा गया था और जिसे अपनी गोद में ले लीली बिस्कुट के बड़े कनस्तर के ढक्कन में अपनी थाली का खाना देकर खिलाया करती थी, उस मोटे-ताजे छौने को भी दूसरे बकरे-बकरियों के साथ बेच देना पड़ा था। उस दिन रेजिना सिसक-सिसक कर रोती रही थी। रेजिना के रोने पर भी, उसके चेहरे पर एक दिन हंसी खिलाने के लिए ही इनामुल की माँ ने वैसा काम किया था। माँ ने मन ही मन सोचा था—रेजिना आज भले ही रो रही है, रोने दो। आज बकरा बेचना पड़ रहा है, कोई बात नही, मगर इनामुल जब पढ़ाई ख़त्म कर आयेगा तब एक-दो क्या, रेजिना के लिए बीसों ज़ोनाकी खरीदे जा सकेंगे।

धाई-आलि के इमाम साहब ने एक दिन इनामुल की माँ से कहा था—तुम्हारे बेटे की क़िस्मत बड़ी अच्छी है, आगे चलकर वह बड़ा आदमी बनेगा।

इमाम साहब की बात सुनकर इनामुल की माँ ने अल्लाह के सामने मौन रहकर मोनाजात किया था। उस बार रमजान महीने के रोजे के अवसर पर मगरिब की नमाज़ के अन्त में गाँव के लोगों को माँ ने मन की ख़ुशी से इफ़्तार करवायी थी।

लोगों के आशीर्वाद से हो या ख़ुदा की नेक-नजर के कारण या परिश्रम के साथ परीक्षा पास करने की वजह से इनामुल को ज्यादा दिन घर बैठे रहना नही पड़ा। नौकरी पाकर उसे नामरूप जाना पड़ा। नया-नया खुला उद्योग। इनामुल तन-मन से नौकरी में तल्लीन हो गया।

नौकरी पाने के बाद से ही इनामुल अब्बा जान से कहता रहा है—एक बार चल कर नामरूप देख आओ, मैं कैसे रहता हूँ, क्या कर रहा हूँ। एक बार ख़ुद देख आओ। अब्बा ने पहले कहा था—जाऊँगा, जाऊँगा। कौन-सा वक़्त बीता जा रहा है। नौकरी में अभी तो गया ही है। जाने को काफी वक़्त मिलेगा।

मगर इनामुल की नौकरी लगे दस-बारह साल हो जाने के बावजूद बजलुर रहमान का वह वक़्त नही आ पाया। इन दस-बारह सालो में काफी बदलाव आ गया था। म-माटि गाँव में बदलाव आया था, इनामुल की नौकरी में बदलाव आया था, मकान में बदलाव आया था, यानी बहुत कुछ बदल गया था।

न-माटि गाँव की मस्जिद लोगों ने पक्की बनवा ली थी। नयी बनी मीनार पर माइक लगाने की व्यवस्था भी हुई थी। नयी मस्जिद की मीनार पर चढ़कर इमाम की अज़ान की आवाज़ न-माटि के हर आदमी के घर में गूँजने लगी।

इनामुल ने पहले लकड़ी के बाँस का, टीन की छतों वाला मकान तुड़वा कर पक्का भवन बनवाया। मकान बन जाने के बाद माँ आदि ने उस पर शादी करने के लिए ज़ोर डाला। इनामुल ने कह दिया—पहले रेज़िना की हो!

रेज़िना ने हठ किया, भाभी के साथ दो-चार दिन रहे बग़ैर मैं इस घर से जाऊँगी नहीं। माँ आदि ने भी कहा—रेज़िना के चले जाने पर मकान सूना हो जायेगा। उसके पहले एक बहू को घर में लाना ही होगा।

उसी के अनुसार काम हुआ। वजलुर रहमान ने इनामुल की माँ से कहा—ज़ुबेदा, समझती हो न, लड़की-बच्चों आदि पर नज़र रखना मेरे लिए बड़ा मुश्किल है। तुम्हीं नज़र रखो—कहाँ क्या करने पर अच्छा हो सकता है।

जोरहाट बालिबाट के फाइज़ुल किरानी की मंझली लड़की पर माँ की नज़र थी। शिल सांको की नाज़िमा की गड़गाँव में पढ़ी छोटी बेटी भी ज़ुबेदा के मन को भा गयी थी। मगर तभी गुवाहाटी से एक ख़बर आयी, अब्बा ने कहा—ज़ुबेदा, तुम्हारा क्या विचार है? सुनते हैं, लड़की का भाई इनाम के साथ ही पढ़ा हुआ है। हो सकता है लड़की के साथ इनाम की जान-पहचान भी हो।

माँ पहले-पहल इस बात को मानना नहीं चाहती थी। कहा था—वे गुवाहाटी जैसे नगर में रहने वाली लड़कियाँ भला कहाँ इस न-माटि के ठेठ देहाती समाज में रम पायेंगी! शहर की लड़की से शादी करवा कर अब मोर का पंख लगाने का इरादा नहीं।

—शहरी लड़की है, यह कहकर शादी को नामंज़ूर करने से पहले एक बार भैया से पूछ लेना ठीक रहेगा। क्या जाने भैया ही…।

रेज़िना की बात ख़त्म होने से पहले ही माँ तुरन्त बीच में कह उठी—बस-बस। ठहर। बाप-बेटी दोनों को वकालत करने की कोई ज़रूरत नहीं। इनाम को तुरन्त घर बुलाने के लिए ख़त भेज दो।

इनामुल घर पहुँचते ही फट कह बैठा—नहीं-नहीं, लड़की के साथ मेरी कोई ख़ास जान-पहचान नहीं है। नजिबुर के साथ गुवाहाटी में मैं पढ़ता था, इसलिए उसके यहाँ दो-एक बार गया था। उसके सिवा और तो कुछ है नहीं।

रेज़िना बनावटी गुस्से से कह उठी—समझ गयी, गुवाहाटी रहते हो पक्की कर आये थे। अब हमें इतना नासमझ मत समझना।

समझ-नासमझ का सवाल ज़्यादा नहीं आया। धूमधाम से शादी हो गयी। लड़की के यहाँ भी काफ़ी तड़क-भड़क थी। दुल्हा भोज खाने के समय न-माटि की जमात किसी तरह से इज़्ज़त बचाकर लौट सकी थी। गुवाहाटी के माछखोवा

इनामुल चालेहा को दस हज़ार एक रुपया मोहराना निकाह कबूल करवा कर न-माटि के घर ले आया।

शादी के बाद घर से आते ही इनामुल ने कहा था—अब्बा-जान, इतने दिन से तो तुम्हें नामरूप जाने का समय ही नहीं मिला। अब तो चालेहा भी रहेगी। इस बार नामरूप जरूर जाना है।

उन्हें तसलीम करने वाले बेटे और बहू को दुआ देते हुए परम गौरव की सन्तुष्टि से अब्बा ने कहा—जाऊँगा। तुम सुख-संतोष से रहो, मैं जाकर एक बार देख आऊँगा।

आऊँगा, ऐसा सिर्फ़ कहा-भर था, मगर आना नहीं हुआ। इसी बीच गुवाहाटी से चालेहा के माँ-बाप न-माटि होते हुए नामरूप गये। तब भी समधी से चालेहा के बाप ने कहा था—चलिये न, लड़के-लड़की का संसार मिलकर देख आयें। मगर इनामुल के अब्बा ने कहा—जी, आप लोगों के साथ चल सकता तो अच्छा ही था। मगर इधर गाय-बछड़े, बत्तख, मुर्गी आदि से भरे इस घर को छोड़कर भला हम दोनों चलें तो कैसे? इसलिए यह जुबेदा ही जाये। हम ठहरे देहाती, घर-गृहस्थी छोड़कर कहीं जाने में बड़ी मुसीबत है।

उस बार भी बजलुर रहमान का बेटे के यहाँ जाना नहीं हो सका। उसके बाद दिन बीतते गये। आगे चलकर रेजिना की शादी भी शिवसागर में तेल गैस आयोग में नौकरी करने वाले बालीगाँव के निवासी नेकिब से हो गयी। चालेहा भी माँ बन गयी। राजा के जन्म के बाद दूसरी बार ईदुज्जुहा के अवसर पर जब इनामुल न-माटि आया तो अब्बा के स्वास्थ्य में कुछ गिरावट आयी देखकर इनामुल ने कहा—घर में घुसे रहकर तुम्हारा शरीर-मन सब बिल्कुल खराब होता जा रहा है। कुछ दिन के लिए हमारे यहाँ चलो। जगह नयी है। कुछ दिन रहने पर अच्छा लगेगा। इसके अलावा तुम्हारी देख-भाल करने के लिए चालेहा है। दिन का वक़्त गुजारने के लिए अब तो राजा भी है।

इसके अलावा हर बार घर जाते समय जो बात कहकर इनाम अब्बा के दिल को उधर झुकाना चाहता था, वह थी नामरूप का समाज। नौकरी-पेशा लोगों के बीच भी कोई भेद-भाव रखे बगैर भाई-भाई की भाँति इतना मीठा सम्पर्क हो सकता है, यह बात अब्बाजान, ख़ुद अपनी आँखों से देखे बग़ैर समझ पाना कठिन है।

मगर नहीं, उस बार भी बजलुर रहमान का नामरूप जाना नहीं हो सका। उसके बाद चालेहा की कोख से मनमि का आगमन हुआ। इनाम की माँ, चालेहा के बड़े भाई, भाभी आदि आकर बच्ची को देख गये। उस वक़्त भी इनामुल के अब्बा की बात चली। माँ बोली—वास्तव में स्कूल छोड़ने के दिन से ही गाँव को लेकर वह बड़े व्यस्त हो गये हैं। इसी कारण गाँव को छोड किसी और जगह रहना

उन्हें मुश्किल लगता है। गाँव का कहाँ क्या हो रहा है, मस्जिद के मकतब में इमाम बच्चों को ठीक ढंग से अरबी पढ़ा रहे हैं या नहीं। रिक्शा चलाते चलाते बूढ़ा हो जाने वाले मोहन के बेटे इमरान को गुजर-बसर के लिए कहाँ काम दिलायाजाये। मुहिबुद्दीन की लड़की एलिस को चाहने वाले तेल कम्पनी में काम करने वाले चारिगाँव के उस लड़के से शादी करवा देना ठीक रहेगा या खेती-बाड़ी में सम्पन्न बने नाहरनि के हाइदर के बेटे से करवा देना ठीक रहेगा, आदि-आदि जैसे सलाह मशवरे देने में वह काफ़ी उलझे रहते हैं। इनके अलावा गाँव की उस सहकारी समिति का बोझ कंधे पर तो है ही। इन्हीं सब के लिए घर से बाहर जाने मे उन्हें बड़ी परेशानी होती है। कहीं जाना होता है तो सिर्फ़ रेजिना के यहाँ दो-एक रात बिता आते हैं। अब्बा के मुताबिक नेकिब के बालिगाँव और न-माटि के गाँव मे कोई खास अन्तर नही है।

वातावरण के सिवा नामरूप में भी कोई खास अन्तर नहीं मिलेगा। ऐसा इनामुल ने बताया था। कहा था—यहाँ भी एक समाज है। मस्जिद है। अधिकारी हो या मज़दूर, व्यापारी हो या किसान, शुक्रवार की नमाज़ में सभी इकट्ठे होकर नमाज पढ़ते हैं। किसी मे कोई भेद-भाव नही है।

आखिर एक दिन इनाम के अब्बा नामरूप पहुँचे। पहुँचने का मतलब इनामुल उन्हें जबर्दस्ती नामरूप ले आया था। उस बार घर जाकर उसने पाया था कि अब्बा का स्वास्थ्य बिल्कुल गिर गया है। नाज़िरा के सरकारी दवाखाने मे इलाज करवा रहे थे, पर बात बन नही रही थी। रक्तचाप बढ गया था। कफ़ से छाती जकड जाती थी। फिर भी नामरूप आने के पहले तक कहते थे—भला मुझे कौन-सी बीमारी हुई है। ज़रा-सा वातरोग हुआ है। कफ़ कुछ ज़्यादा होने की वजह से खाँसी नही हट रही है। हकीमी दवा तो खा ही रहा हूँ। डाक्टरी इलाज भी करवा रहा हूँ। ठीक हो जाऊँगा।

मगर इनामुल न माना। बोला—हमारे यहाँ बड़ा अस्पताल है, अच्छे-अच्छे डॉक्टर हैं, जल्दी ही ठीक होते ही घर लौट सकोगे।

जुबेदा ने भी समझाया। आखिर इनामुल के साथ अब्बा भी आने को विवश हुए। नामरूप अस्पताल में अब्बा को दिखा कर इलाज करवाया। लगभग सप्ताह-भर अस्पताल में रहकर इनाम के यहाँ लौटने के बाद अस्पताल के युवा डाक्टरों-नर्सों का गुणगान करते बजलुर रहमान की जुबान थकती नही थी।

इनाम ने बताया था—अब्बाजान, असल में तुम्हारी किस्मत कुछ टेढ़ी है, तुम्हें डॉक्टर अजित शर्मा जी से मिलना था, तब न देखते।

बीमारी अच्छी हो जाने के बाद बजलुर रहमान ज़्यादा दिन नामरूप मे रहना नही चाहते थे। इनामुल ने अब्बा को समूचे नामरूप का कोना-कोना दिखलाया—मन्दिर, मस्जिद, नामघर, गिरजा, गुरुद्वारा, बौद्धविहार, सभी कुछ।

लोगों के आचार-व्यवहार से भी रहमान खुश थे। कौन गोसाईं है, कौन बाम्हन, कौन हरिजन है, कौन हिन्दू, कौन मुसलमान, कोई भेद-भाव नहीं। एक दिन इनाम ने उनके सामने 'रहार रहदै' आवृत्ति कर सुनायी थी, वही उपमा रहमान मास्टर को याद आ गयी।

वहाँ के धार्मिक संस्थानों को देखकर रहमान मास्टर को बड़ी खुशी हुई। उनमें मस्जिद उन्हें ज्यादा भायी। उन्होंने इनाम से कहा—हमारे गांव की मस्जिद की मीनार को भी इसके जैसा नक्शेदार करा कर खूबसूरत नहीं बनाया जा सकता? मुझे तो यह मस्जिद बड़ी पसन्द आयी है। ऐसी ही खूबसूरत बनाने के लिए कितना खर्च आयेगा, तू पता लगाकर बताना।

पता तो इनामुल जरूर लगा सकता है, परन्तु जिस इंसान की मेहनत मस्जिद के चप्पे-चप्पे में लगाई हुई है, खर्च-वर्च का हिसाब-किताब जिसकी उंगलियों पर था, वह अनवर हुसैन अब नामरूप में नहीं रहा। पानीचकुवा की किसी कब्रगाह में वह हमेशा के लिए बेफ़िक्र सोया हुआ है।

दिन बीतने के साथ-साथ इनाम के अड़ोस-पड़ोस में रहने वाला कौन गोस्वामी है, कौन बरुआ है, कौन मुर्दे है, कौन जायसवाल है, बजलुर रहमान सबको पहचानने लगे। सुबह-शाम लाठी टेकते हुए वह अकेले घूमने-फिरने भी लगे। पहले-पहल वह रास्ते, सड़क, गलियाँ आदि कुछ भी पहचान नहीं पाते थे। सब सड़क, सब मकान उन्हें एक-से लगते थे। मगर बाद को पहचानने लगे। कदम्ब के फूलों वाला वह मुर्दे का घर है। बाहरी दरवाजे पर शिरीष के पेड़ वाला वह जायसवाल का घर है। सामने की खिड़की के पास ढले हुए पपीते के पौधे वाला वह गोस्वामी का घर है, आदि-आदि। हाट-बाट में लोग अब इनाम के अब्बा को आवाज देकर जाने लगे।

बजलुर रहमान को अच्छा लगने लगा था।

इस अच्छे लगने के बीच भी उन्हें अपने न-माटि के घर की बड़ी याद आया करती। जुबेदा कैसी है, यासीन घर का काम-काज ठीक ढंग से कर रहा है या नहीं, मुहिबुद्दीन ने एलिस का रिश्ता किस परिवार में करना तय किया है, सहकारी भंडार के सामानों का हिसाब-किताब तरीक़े से रखा जा रहा है या नहीं, आदि-आदि बातें उनके दिमाग को परेशान कर देतीं। कभी-कभी वह इनाम का मूड देखकर घर लौट जाने की बात चलाते, चालेहा से भी कह देखते, मगर हो तो क्या—वे लोग तो जाने देने का नाम तक नहीं लेते।

दिन अच्छी तरह से ही बीत रहे थे। बस एक दिन खांसी और उभर आयी। शाम होने के साथ-साथ खाँसी और तेज हो जाती। खांसी आते ही बेचारे बिल्कुल लाचार हो जाते। दवा-दारू भी कुछ खास काम नहीं आती। इस खांसी के कारण ही वह ज्यादा घूम-फिर नहीं पाते थे। धूप में सामने की ओर बैठ जाते और

दिन ढलते ही धूप के रहते सड़क पर एक चक्कर लगा कर अन्दर आ घुसते। कुछ दिनों से रहमान मास्टर का यही दैनिक कार्यक्रम था।

उस दिन भी कार्तिक महीने में दोपहर की धूप की ओर पीठ किये बजलुर रहमान सामने के कचनार के पेड के तले बैठे हुए थे। सन्नाटे भरा वातावरण। कर्मचारी लोग दोपहर का खाना खाकर अपने-अपने कामों पर चले गये थे। लड़के-बच्चे भी स्कूल में थे। पास के मकान से भी किसी की आवाज नहीं आ रही थी, रहमान मास्टर ने सिर उठा कर एक ही मकान के दूसरे हिस्से के शइकीया के घर की ओर देखा। वहाँ बैठे रहने पर सामने की सड़क के अलावा बराबरी से छँटे हुए अडहुल के पौधों से घिरी चौहद्दी के अतिरिक्त इधर-उधर और कुछ भी नजर नहीं आता।

बेंत की आराम कुर्सी को जरा तिरछा कर आँखें मूंदे बजलुर रहमान आराम फ़रमा रहे थे। अन्दर चालेहा मनभी को सुला रही थी। ऐसी स्थिति में वह कब तक रहे, पता नहीं। मगर अचानक एक आवाज से उसकी आँख खुल गई। उन्होंने अनुमान से ही समझ लिया—पास के शइकीया के घर की खिड़की कोई ख़ोल रहा है। घर पर धूप आया करती है, इसी कारण खिड़कियाँ खोलते, बन्द करते कुछ जोर की आवाज हुआ करती है।

रहमान मास्टर ने आराम करते हुए फिर से आँखें मूंद कर शरीर को कुर्सी पर फैला दिया। परन्तु दूसरे ही क्षण खिड़की की आवाज से भी प्रचंड जो बातें उनके कानों में पडी, उनके हर शब्द ने उन्हें बिल्कुल झंझोड़ दिया। उन्हें लगा—बहुत दिन बाद उनका रक्तप्रवाह तेज से तेज़तर होता जा रहा है। उनकी धमनी का स्पन्दन मानो क्रमशः बढ़ता जा रहा है। उनके अलावा चालेहा ने भी वे बातें सुनी है या नहीं, जानने के लिए इधर-उधर नजर डाल, किसी को आसपास मे न देख, धीरे-धीरे कदम बढाकर वह घर के अन्दर चले गये। चालेहा अपने ही कमरे में है, इसका आभास पाकर रहमान मास्टर आश्वस्त हुए।

कमरे मे बिस्तर पर सीधे लेट जाने के बावजूद, एक ही मकान की दीवार के उस ओर रहने वाली शइकीयानी का हर शब्द रहमान मास्टर को नस-नसमें दौडता हुआ मानो छाती में चोटें करने लगा।

अचानक रहमान मास्टर को बोध हुआ—तीस साल तक शिक्षण कर उन्होंने सिर्फ़ अभिनय ही किया है। अपनी सुख-सुविधा के लिए दूसरों का सुख हरण करना गर्हित काम है। सौ-सौ विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देने वाले बजलुर रहमान ने ही जिन्दगी के इस आख़िरी हिस्से में अपने, सिर्फ अपने ही सुख के लिए दूसरों के सुख का अपहरण कर लिया है? नहीं-नहीं, बजलुर रहमान के शरीर को बुढापे ने भले ही दबा दिया है, परन्तु उनका मन अब भी तेज घोड़े जैसा उद्दाम बना हुआ है। अपने सुख के लिए दूसरों के सुख का अपहरण बजलुर मास्टर नहीं कर

सकते।

वे शब्द बजलुर मास्टर के कानों पर फिर चोटें करने लगे। खिड़की खोलने की आवाज, उसके बाद—

—बिल्कुल रात की नींद सोयी है। इतना पुकार रही हूँ, ध्यान ही नहीं। किसी महिला का स्वर था।

—ओ, और मत कहें। बिना सोये रह सकें तब न। रात तो जागते ही बीतती है। इसी कारण दिन में ही सो लेती हूँ। शइकियानी की आवाज थी।

—क्यों, क्या कोई बीमारी है?

—बीमारी ही है। अपने घर में होती तब भी कोई बात थी। कुछ क्षण रूक कर शइकियानी ने फिर से कहना शुरू किया—आज दस-बारह दिनों से रात को सो नहीं सकी हूँ। झपकी आते ही खाँसी का जो शोर उठता है, बच्चे भी उठ बैठते हैं। मैंने इनसे कितनी बार कहा है, राजा के बाप से एक बार कह कर तो देखो। हर रात खाँसी की घों-घो, हम लोग सो नहीं पाते। खाँसी भी ऐसी कि हमारे किसी को होती तो लगता कि कोई दूसरी ही बीमारी लगी है। बेचारी चालेहा पर भी तरस आता है। उस बीमार आदमी के साथ लट-पट कर छोटे बच्चों समेत न जाने कैसे रहती है, भगवान ही जाने। शइकीया भी ऊँघते-झपकते दफ्तर चले गये हैं।

रहमान मास्टर ने उन शब्दों को कान में घूसने न देने का जबर्दस्ती प्रयास किया।

कुछ समय तक अटल-अचल हो पड़े रहकर बजलुर रहमान, हाँहचरा उच्च माध्यमिक विद्यालय में तीस साल तक शिक्षण कर आदर्श की, नैतिकता की बातें सिखाने का अवसर पाने वाले बजलुर रहमान एक निश्चित निर्णय पर आ गये। आज वह इनाम से स्पष्ट शब्दों में कह देंगे—समझा न इनाम, तुझ से एक बात कहता हूँ, तू नाराज न होना। तुम लोगों के यहाँ इतने दिन सुख-सतोष से बिताये, फिर भी अपने उस घर की याद मुझे ज्यादा आ रही है। मेरे बगैर शायद जुबेदा को भी बड़ी असुविधा हो रही होगी। और असली बात तो यह है कि इस समय मुझे एक आश्रय की बड़ी जरूरत है। हम दोनों ही अब एक-दूसरे के लिए प्रधान आश्रय हैं।

इन बातों को सोचते-सोचते एक शब्द ने उनके मन को फिर से झकझोर दिया। वही एक आवाज। कुछ देर चुपचाप रहकर वह आवाज कहाँ से आ रही है, बजलुर रहमान ने अन्दाजा लगाने की कोशिश की। वही तो, चालेहा खिड़की खोल रही है। एक ही छत के नीचे एक दीवार द्वारा तीन समान कमरों में बँटा हुआ एक सरकारी मकान। एक-सी खिड़कियाँ। एक ही तरह की आवाजें। वह आवाज मानो रहमान मास्टर के शरीर पर चाबुक बनकर मार करने लगी।

(अनु०—नवारुण वर्मा)

## उड़िया

जगदीश महांती

वसन्त कुमार शतपथी

### बसंत कुमार शतपथी

जन्म—1914, मयूरभंज जिले में। प्रारम्भिक शिक्षा—बारीपदा में, उच्चशिक्षा—रेवेंशा कालेज, कटक में। ओडिशा साहित्य अकादमी पुरस्कार। 'मनमौजी' के भूतपूर्व संपादक।

विशिष्ट रचनाएँ—एंटीरोमांटिक, 'मजा ओ मौजी', 'भीड़ाग्नी', 'हैदराबाद अंगूर', 'मामार्गी मानव', उद्दंडरे, 'आकाशी फुल', 'नवनाटिका', 'दुर्दिसमम कहानी', 'केशरविहार कहानीमाला।'

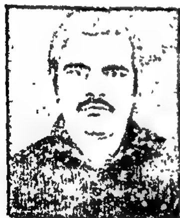
'एंटीरोमांटिक' कहानी संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार। कहानी के अतिरिक्त निबन्ध, रम्य रचनाएँ, यात्रा-वृत्त, समीक्षा, नाटक आदि भी। शिक्षा और साहित्य को समर्पित। रचनाओं में हास्य-व्यंग्य के अद्भुत समावेश के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध।



● सहदेव खुंटा, पो०-बालेश्वर-75600, (उड़ीसा)

### जगदीश महांती

जन्म—17 फरवरी, 1951, उड़ीसा के विच्छिन्नांचल (सिंहभूम) के उड़िया परिवार में। जन्मस्थान—गोलमहिपानी (मयूरभंज जिला)।



पहली कहानी 1969 में प्रकाशित। प्रकाशित कृतियाँ—5 कहानी संकलन। 'संवर्त्तक' के भूतपूर्व संपादक। सम्प्रति-कोल इण्डिया लि० में।

● रामपुर कोलियरी, जि०-सम्बलपुर (उड़ीसा)

# मेफ़िस्टोफ़िलिस की दुनिया और लड़खड़ाते दो पांव

जगदीश महांती

लड़की की आँखें संवेदनशून्य, स्थिर और पत्थर-सी। पिछले कुछ दिनों के आँधी-तूफ़ान में नई-नई तकलीफ़देह अनुभूतियों ने लड़की को प्रौढ़ता मे पहुँचा दिया है। किसी बात मे उत्सुकता नही, आवेग नही, लाज-शरम, हँसी-ख़ुशी कुछ भी नही। आँखों के नीचे स्याह रेखा उभर आयी है। रूखे सिर पर तेल-कँघी का सवाल ही नही उठा। बक्से में सहेज कर रखी गुलाबी सिल्क की साड़ी पहन कर वह राजधानी आयी थी। वह भी पिछले कुछ दिनो की दौड़-धूप मे मैली हो चली है। सफ़ेद ब्लाऊज़ पर पसीने के दाग साफ़ दिख जाते हैं। देह को पानी छुए कई दिन हो गये लगते हैं।

वह बैठी है दीवार के सहारे टेक लगाये। सिर पर हाथ रखे अनमनी छत की ओर देख रही है। क्या देख रही है? छत लाँघ कर उसकी नजर कही दूर तैर गयी होगी। कहाँ? दूर किसी गाँव की पगडंडी पर, पोखर के किनारे? खेती-बाड़ी, बगीचे की ओर? ब्राह्मणों के परिवार के बग़ीचे की ओर जहाँ रथ का बेटा उसे दबोच बैठा था चार गुण्डों को साथ लेकर? गाँव की औरतों की छिः छि. की ओर? जब गाँव के बीच बकुल के पेड़ तले बड़े-बूढ़े मुरबी लोगो और पैसे वालो का ताश का खेल जमता है, अपराह्न के उन क्षणो की ओर? स्कूल मास्टर की पॉलिटिक्स चर्चा की ओर? पता नही कहाँ-कहाँ उसका मन चला गया था नजर को साथी बनाकर। ऊपर की ओर घुटने मोड़े बैठी रही अनमनी-सी। मुँह सूखा-सा। बायां हाथ माथे को छूता हुआ, दाहिना हाथ घुटनो पर।

उसकी माँ पास में बैठी पान बना रही है। पिछवाड़े मे छान पर वहाँ लौकी की लता पसरी थी। फूल लगे थे, कच्चे-कच्चे फल भी लग चुके थे। अब औरक्या होगा? कई दिनों से पानी किसने दिया होगा?

प्रधान की गाय का कोई भरोसा नही। सर्वनाशी उस प्रधान की बहू का भी क्या ठिकाना। जब देखेगी कि घर पर कोई नही है, खिड़की खोल गाय को अन्दर दाखिल करा देगी बाड़ी में। ओफ़्फ़ बतख का जोड़ा और दोनों मुर्गियाँ कैसी होंगी अब तक? कही कट-फट के पेट में तो नही चली गईं? मुर्गी एक ही तो अण्डा दे रही थी। कई बार प्रधान के अहाते में ही दे आती है। वह कुलक्षिणी प्रधान की बहू जरूर निगल जाती होगी अण्डा। उसका कोई विश्वास है? मौका तलाश, जब कोई नही होता, एक-दो मुर्गे या बतख गर्दन मरोड़ चूल्हे में झोंक नही देती होगी, क्या ठिकाना।

लड़की का बाप घुटनों तक की धोती पहने पार्टी दफ़्तर के बरामदे में बैठा है। मार्कीन के कपड़े से एक शर्ट बनवा कर रखी थी कई दिन से मौके-बेमौके पहनने के लिए। उसे ही पहन कर आया था। इन पिछले दिनों की दौड़-धूप में, पसीने और धूल में सफ़ेदी अपना रंग छुपा चुकी थी। चप्पल न थी। राजधानी मे आकर हवाई चप्पल का जोड़ा खरीदा था फुटपाथ से। जैसा देश वैसा भेस—यहाँ सब के पाँवों में कुछ-न-कुछ है। यह कोई गाँव की पगडंडी है? राजधानी। रजत बाबू ने समझाया था—यहाँ मंत्री, अफसर और बड़े-बड़े लोग रहते हैं। यहाँ हम न्याय माँगेंगे। अन्याय का प्रतिवाद करेंगे।

उसकी बहुत इच्छा है कि मुख्यमन्त्री से मिले। राजधानी की बड़ी-बड़ी इमारतें देखकर उसको लगता, ऐसे ही किसी मकान में मुख्यमंत्री रहते होंगे। यहाँ राजधानी मे उनकी कौन परवाह करता है। उनके घर के सामने रिक्शा-वाला भी रिक्शा रख आराम करता होगा। बच्चे भाग-दौड़ करते होंगे। फेरी वाला आवाज देते-देते जाता होगा। आवारा कुतिया उनके बगीचे के किसी पौधे पर मूत जाती होगी। मगर उसके गाँव की ओर आने पर इन्हीं मुख्यमंत्री को कितना ताव आ जाता है। इस बार मुख्यमंत्री उसके गाँव के पास चन्द्रशेखर-पुर गये थे—सापुआ नदी पर बने पुल का उद्घाटन करने। तब कितना ताम-झाम। रातों-रात सरकारी लोगों ने रास्ता बना डाला। कितने पुलिस वाले। कतार की क़तार जीपें। खद्दरधारी पॉलिटिक्स वाले। वहाँ लाल सालू कपड़े पर कुछ लिखे गेट थे रास्ते के किनारे। कितने माइक, कितने पोस्टर। मगर यहाँ राजधानी में मुख्यमन्त्री फिरते होंगे और पाँच लोगो की तरह। किसी की निगाह नहीं होगी उधर, कोई रुख नही करता होगा उस ओर।

उसका मन करता है मुख्यमन्त्री को देखता। वह क्या करते होंगे? पानवाले की दुकान से पान का बीड़ा खरीदते होंगे? होटल मे चाय की चुस्की लेते होंगे? कार में सर्राटे से निकल जाते होंगे? घर के आगे थक कर चेयर डाल बैठे होंगे? रजत बाबू ने कहा है—मुख्यमंत्री से भेंट होगी। उनसे हम जोर-जबर्दस्ती कहेंगे—रघु के बेटे को हथकड़ी पहनाओ रघु काका ऐसे-वैसे आदमी नही हैं। सरपंच,

चेयरमैन—उनके हाथ पता नहीं कहाँ-कहाँ हैं। पुलिस वाले भी उन्हें देखकर नमस्कार करते हैं। मुख्यमंत्री के साथ उनका रोज का उठना-बैठना है। रथ काका भुवनेश्वर आने पर मुख्यमंत्री के मकान पर ही ठहरा करते हैं। बी० डी० ओ०, दरोगा जी, स्कूल के बड़े-बड़े मास्टर साहब, अस्पताल के डॉक्टर—सब लोग तो रथ काका का मान करते हैं। कहते हैं उनकी बदली रथ काका के हाथ में है। ज्यादा चीं-चपड़ की तो मुख्यमंत्री से कहकर बदली करवा देंगे। कितनों को हटा दिया है उन्होंने।

रजत बाबू और रथ बाबू वैसे अलग-अलग पार्टी के आदमी हैं। रजत बाबू राजधानी में वकील हैं। कभी-कभार गाँव जाते हैं। अब की बार चेयरमैन बनने के लिए रथ काका से वह इलेक्शन लड़कर हार गये हैं। पुरानी अदावत बाकी है। अब की जैसे ही खबर मिली कि रथ काका के बेटे सनातन ने इस तरह का कोई कुकर्म किया है सत्य भामा के साथ, आकर हाजिर। बस, इसी लड़ाई करनी होगी। सात दिन से राजधानी में घुमा रहे हैं। रथ काका छह-सात सौ के लिए राजी थे। भामा के लिए कोई अच्छा-सा वर ढूँढ देने को भी कह रहे थे। डॉक्टर को कह कर पेट साफ़ कराने का बन्दोबस्त हो जायेगा। कहा था इस बात को दबा दो। पर रजत बाबू ने आकर सब बंटाधार कर दिया। भामा, भामा की माँ सबको ऐसी पट्टी पढ़ाई कि सब बेताब हो गए राजधानी जाएँगे। मुख्यमंत्री से कहेंगे। विधान सभा के आगे धरना देंगे। अखबार वालों को सुनायेंगे अपनी कहानी। अन्याय के विरुद्ध लड़ेंगे। लड़ो। अब सात दिन हो गए, आवारा धतार सिरेफन गली फिरो, घूमो। कोई पूछने वाला नहीं। कोई सुनने वाला नहीं नहीं। सात दिन हुए, कहाँ है मुख्यमंत्री का घर और कहाँ है विधान सभा? रजत बाबू से पूछो तो कहते हैं—होगा, होगा। अरे बाबू, कब होगा?

पायेगा ? ड्रिंक्स हैं यहाँ तो ! चबा भी सकते हैं। छह किलो मिक्सचर। सॉल्टेड बिस्कुट तीन किलो। और क्या रखें ? संदेश या पेड़ा, एक-एक पीस दिया जा सकता है। यह सब तो बस बहाना होगा। असल चीज तो पीना होगा। डबल सेवन की साठ बोतलें मँगवा लेना। पहले डबल सेवन सर्व कर देंगे, फिर स्नैक्स। ध्यान रहे, पहले ही ड्रिंक्स मत खोल देना। रिपोर्टरों को खिला-खिला कर पिलाना है। वे प्रतीक्षा करेंगे। जब देखेंगे कि क्लाइमेक्स आ गया है—याने रिपोर्ट दी जा चुकी है—बस, स्टेटमेंट बाकी है, क्रॉस क्वश्चन शुरू हो रहे हैं, ठीक उस समय बोतलों के ढक्कन खोलना।

व्हिस्की। छोड़ो-छोड़ो। तुम रिपोर्टरों को नहीं जानते, तो क्या मैं नहीं जानता ? लिखो—'किसान रम'। तुम एक बार सुदर्शन को भेजो आठ नम्बर सेक्टर से पास वाले मिलिट्री बैरक की ओर। पन्द्रह किसान रम क्वार्टर, और नहीं तो, बारह तो चाहिए ही। बीसेक किसान रम अपना सुदर्शन बैरक से जुगाड़ कर लायेगा। वह जानता है, पहले भी जुगाड़ बिठाया है। कोई हवलदार या सूबेदार उसकी पहचान का है। सुदर्शन को दस-पन्द्रह रुपए एक्स्ट्रा हाथ—खर्चे के दे देना।

अब चलो, हम फ़ोटो और रिपोर्ट के बारे में कुछ चर्चा कर लें। फ़ोटोग्राफ़र को बुलाया है ? ओ, फ़ोटो हम देंगे तो ? अरे वे अख़बार वाले जो फ़ोटो लेंगे, वो किस काम के ? 'फ़ोटो मस्ट बी मोंट प्रोवोकिंग, व्हिच कैन एक्सप्लायट द मास सेंटीमेंट।' वैसी फ़ोटो उठवाकर लानी होगी। तुमने अब तक फोटोग्राफ़र का बन्दोबस्त नहीं किया ? फिर कब करोगे ? कब फोटो खिचेंगी, डेवलेप होंगी, न्यूज कांफ्रेंस में तुम उसे प्रोड्यूस करोगे ? सुनो, यहाँ एक फ़ोटोग्राफर है, शहीद नगर में। पता दे रहा हूँ, मेरा नाम ले देना। दो-चार रुपये एक्स्ट्रा ले लेगा। कहना एमर्जेन्सी है। पत्रकार सम्मेलन से पहले कम से कम तीस-चालीस कापी हर फोटो की चाहिए। वह दे सकेगा। जल्दी बुलाओ। समय कहाँ ? अच्छा, मैं चिट लिखे देता हूँ। सुदर्शन को भेजो—पहले वह फ़ोटोग्राफ़र को ख़बर देगा, कहेगा कि पी. के. बुला रहे हैं—वह कैमरा लेकर आएगा साथ में।

रिपोर्ट बन गई ? देखें। सत्य भामा बारीक (25), पिता भूदेव बारीक, ग्राम, उदयनाथ पुर, पोस्ट-काईमाटी, थाना—वेणी माधवपुर, जिला पुरी। भूदेव बारीक जाति का नाई होते हुए भी अपना जातिगत पेशा नहीं करता, मजूरी करता था। 'द टोल्ड दिस !' 'जातिगत पेशा क्यों नहीं करेगा ? नाई आदमी। गाँव की धरती पर जातिगत धन्धा नहीं करेगा ? लिखो, भूदेव वैसे नाई जाति का होने पर भी *जातिगत पेशे के ज़रिये परिवार का पेट नहीं भर पाता था, अतः* मजूरी कर गुज़र-बसर करने को बाध्य हुआ। अर्थाभाव के कारण अपनी जवान बेटी का विवाह नहीं कर पा रहा था। गाँव के चेयरमैन अवनी रथ सरकारी दल

का एक सक्रिय कार्यकर्ता है, पैसे वाला, 'दैट मीन्स' धनी घर का है। इधर-उधर से हड़पकर खाने में सिद्धहस्त। पॉलिटिक्स करने के कारण और शासक दल का समर्थक होने की वजह से पुलिस, डॉक्टर आदि सबको हाथ में रखे है। उनका बेटा बलदेव रथ, उम्र पंतीस। दो बच्चों का बाप, बेकार। गांव के छोकरों से मिलकर ऑपेरा पार्टी बनायी है। गुण्डा क़िस्म के लोगों के साथ प्रायः उठना-बैठना है उसका।

उस दिन 15 मार्च, शनिवार शाम के समय। सत्यभामा बारीक चूल्हा सुलगाने को कुछ टुकड़े इकट्ठे करने बाड़ी के पिछवाड़े पोखर के किनारे वाले झुरमुटों की ओर गयी थी। यह जगह अवनी रथ की है। यहां खजूर, ताड़ और नारियल के पेड़ है। इस बीच बलदेव रथ अपने चार-पांच गुण्डे साथियों को लेकर पहुँचा। अचानक 'हमारे बगीचे मे चोरी करने आई हो', कहकर आवाज़ लगाई—'हमारे बग़ीचे मे घुसी हो महसूल देना होगा वरना थाने में दे देंगे।' और फिर अश्लील हरक्तें शुरू कर दीं।

सत्यभामा इस पर वहां से आने को खड़ी हुई कि उन्होंने उसका पल्लू पकड़ लिया। वह चीख़ना चाहती थी कि एक ने मुंह दबाकर पकड़ लिया। 'एक कौन था ?' नाम दो उसका। 'नेम मस्ट बी इन द लिस्ट'। कौन था वह ? हां, रमेश महारणा—वह खाती जात का लड़का आकर मुंह भीचे रहा। हू रमेश महारणा इज ? 'गिव हिज़ बैक हिस्ट्री।'

रमेश महारणा (28), पिता धनेश्वर महारणा, जातिगत पेशा बढ़ई का काम। मगर जातिगत पेशा छोड़कर धनेश्वर बस स्टॉप पर होटल चलाता है। दो पैसों की आमदनी है। कहा जाता है कि अफ़ीम के कारोबार में दो पैसा अच्छी तरह कमाया है। कहा क्यों जाता है, इस वाक्य को काटो। अफ़ीम का स्मगलर है। रमेश महारणा बेकार है। डी. आई. सी. से पचीस हज़ार का लोन ले चुका है दुकान करने के नाम पर। इस बार ग्राम पचायत के इलैक्शन मे वह वार्ड मेम्बरी जीत गया। किस पार्टी का है ? हमारी पार्टी की ओर से ? काटो इसे। कभी भूल से न कहना कि वह हमारी पार्टी का है। पार्टी की बात छोड़ दो। हटा दो पंचायत वार्ड मेम्बर वाली बात। हां, रिपोर्ट में रमेश महारणा का नाम फ़्लैश न करो। नाम दो, 'बट इग्नोर द नेम एज़ जस्ट ए कॉमन नेम।' 'डोंट पुट इंपोर्टेन्स टू दैट नेम।' और कुछ न लिखो। नो डिटेल्स। हां, आगे बढ़ो, फिर ?

बलदेव और उसके चारों साथी रमेश महारणा, कुंज साहू, जयी परिडा और जमालुद्दीन सब मिलकर सत्यभामा को उस नारियल, ताड, खजूर के जंगल की ओर उठाकर ले गए। और फिर एक-एक कर सबने उसके साथ कुकृत्य किया।

'एक-एक कर' मतलब ? सीरियली बोलो, रेप किया किसके बाद किसने ?

पहले बलदेव रथ ने ! सत्यभामा छटपटाने लगी तो रमेश और कुंज साहू ने उसे दबोचा। इसके बाद रमेश गया और फिर कुंज साहू। कुंज साहू ने जब बलात्कार किया, सत्यभामा बेहोश हो गई। उसी अवस्था में जयी परिडा और जमालुद्दीन ने उसको भोगा। सत्यभामा को होश आया तब तक उसे पोखर में फेंक दिया गया था। रात हो चुकी थी, उस समय।

'मार्क इट। सिर्फ रेप ही नहीं। अटेम्प्ट टू मर्डर भी।' यह बात घटना को फ्लैश करेगी। हाँ, पत्रकार पूछ सकते हैं, सत्यभामा से कह देना—उन चारों के साथ कोई फ्लर्टेशन, इन्फेचुएशन या वैसा कोई रिलेशन होने की बात स्वीकार न करें। कतई। प्रीमेरिटल सेक्स रिलेशन का यदि अनुभव हो सत्यभामा को बता देना वह स्वीकार न करे। उसका यदि वैसा कोई प्रेमी हो तो भी एकदम डिनाई कर दे। कन्विंस द गर्ल फुली। हाँ, तो बलात्कार के बाद की रिपोर्ट पढ़ो। पुलिस स्टेशन में क्या हुआ ?

पहले भूदेव बारीक बात को दबा देना चाहते थे। कुछ भी हो, बात लोक—लज्जा की थी। किसी से न कहने को समझा दिया था, सत्यभामा को और उसकी माँ को। पर बात चारों ओर न मालूम कैसे प्रकट हो गई। भूदेव बारीक के चुप रह जाने पर शायद बलदेव रथ वगैरह का साहस बढ़ गया। अपनी डींग हाँकने के लिए वे चारों ओर कहते फिरने लगे। बात प्रकट हो गई और चारों ओर घर-बाहर सब जगह लोग सत्यभामा को थू-थू करने लगे। तभी एडवोकेट रजत महापात्र गाँव आए थे। घटना के बारे में सुनकर आगे आये। उन्होंने सत्यभामा और भूदेव बारीक को पुलिस में रिपोर्ट करने के लिए राजी किया। पर बेणी माधवपुर थाने में पुलिस ने रिपोर्ट लिखने से मना कर दिया। घटना की इतने दिन बाद एफ० आई० आर० लिखाई जा रही है, फिर साक्षी-प्रमाण भी इतने दिन बाद नष्ट हो गए होंगे, ऐसा बहाना कर सर्किल इन्स्पेक्टर ने सलाह दी कि बात को दबा कर आई-गई कर दो इसे।

रिपोर्ट में ऐसे मत लिखो। थोड़ा बदलो। ओह, समझते क्यों नहीं, ख़ालिस सच कहकर मामला स्टैंड करा सकोगे ? उफ़, तुम दोनों समझते क्यों नहीं ? तुम लोग तो वकील हो। तुम और थोड़े ही जीवन में झूठ बोलोगे। केस को स्टैंड कराने के लिए इसके पीछे कोई युक्ति भी खड़ी करनी होगी। युक्ति सदा सच ही होगी या यथार्थ से कुछ हटकर भी हो सकती है ? वकील के रूप में पता होगा। ख़ैर लिखो—ऐसे लिखो कि घटना के बाद सत्यभामा अपने पिता भूदेव के साथ बेणीमाधवपुर थाने में गई रिपोर्ट कराने। परन्तु अभियुक्त बलदेव रथ के पिता चूंकि शासक दल के नामी नेता हैं, अतः सत्यभामा की रिपोर्ट लिखने से मना कर दिया। यहाँ तक कि सत्यभामा को डॉक्टरी मुआयने के लिए भी नहीं भेजा। इधर बलदेव रथ वगैरह ने आकर भूदेव बारीक से, "थाने क्यों गए थे ?" कहकर

गाली-गलौज की। फिर थाने गए तो घर में आग लगा देंगे। हाथ-पांव तोड़ने की भी धमकी दी। कह गए—थाना दादू हमारे आदमी हैं, अगर तेरा खून भी कर दिया जाये, तो भी कोई चूं-चां नहीं कर सकता यहां।

अब यह रिपोर्ट सत्यभामा और उसके बापू और मां को अच्छी तरह समझा दो। देखो, संवाददाता इधर-उधर के टेढ़े-मेढ़े घुमा-फिरा कर कई सवाल पूछेंगे—इसमें उन्हें नर्वस नहीं होना है। इसके अलावा कुछ सवाल 'टू सम एक्सटेंट' अश्लील भी लग सकते हैं। सत्यभामा को समझा देना, उन प्रश्नों के सामने विचलित नहीं होना है। क्योंकि भविष्य में कोर्ट में वकील तो और भी बेहयाई के और अश्लील सवाल पूछेंगे। सत्यभामा को इन प्रश्नों का सामना करने के लिए अभी से तैयार रहना होगा।

हां, पहले एक ग्रुप फोटो। सत्यभामा बीच में रहे, दोनों ओर मां तथा उसके बापू। तब सत्यभामा का केबिनेट साइज फ़ोटो। फिर सत्यभामा का क्लोज-अप चेहरे का। सारी देह के खरोंच के निशान। फिर सत्यभामा की नंगी पीठ के फोटो, वे केबिनेट साइज में होने चाहिए। पीठ पर चोट-खरोंच के निशान होना जरूरी है। फिर सत्यभामा के दोनों स्तनों के फ़ोटो। स्तन की घुंडी पर खरोंच का चिह्न हो। आजकल दिल्ली-बम्बई-कलकत्ता की अंग्रेजी पत्रिकाएं ऐसी नंगी-खुली फोटो देखकर अधिक छापती हैं। स्तन की घुंडी के आगे कोई गोल वृत्त बना देंगे और फिर नीचे फ़ुटनोट दे देंगे—यहां दांतों से काटे का चिह्न है। हमारे यहां की लोकल पत्रिकाएं इतनी एडवांस नहीं हैं। सत्यभामा की खुली छाती की फोटो चाहे न छापें। पर हम रिपोर्टरों को देंगे। न छापने पर भी घटना की तीव्रता के बारे में तो कन्विंस होंगे वे लोग। अतः हम उसकी नंगी छाती की फ़ोटो देंगे। हां, फ़ोटो होंगी ग्लॉसी पेपर पर। क्योंकि उन सब के ब्लॉक बनेंगे। ब्लैक एंड व्हाइट ही होंगी। रंगीन करते तो बम्बई-दिल्ली की पत्रिकाएं छाप देतीं, मगर बहुत खर्च आ जायेगा हमें। फिर कलर फोटो की डिलिवरी भी हम उतनी जल्दी नहीं दे पायेंगे। इन तस्वीरों की डिलिवरी करनी है कल शाम पांच बजे तक—पचास-पचास कापी। तुम दस पर्सेंट रिबेट देना, मगर फिर भी काफ़ी पैसा हो जाता है कुल मिलाकर।

एक ग्रुप फ़ोटो खिंची। सत्यभामा के पिता और मां से ज़रा बाहर जाने के लिए अनुरोध किया गया। फोटोग्राफर ने हाथ से संकेत किया। पी. के. नहीं है। विधान सभा की ओर जल्दबाजी में चले गए। रजत, मैं, फ़ोटोग्राफर दिव्यसिंह और सत्यभामा कमरे के अन्दर हैं। सत्यभामा सहमी-सहमी खड़ी है, दीवार के सहारे। दिव्यसिंह ने अपनी इंटलेक्चुअल फ्रेंचकट दाढ़ी सहलाते-सहलाते कहा—प्रोब्लम क्या है जानते हैं? आज से पन्द्रह-बीस दिन पहले रेप हुआ। आप फ़ोटो लेंगे अब, और चाहेंगे कि वे कटने-फटने के निशान सब आयें। यह क्या संभव

सत्यभामा डरते-डरते आगे बढ़ी।

साड़ी ढीली करो ! दिव्यसिंह का आदेश।

चौंक उठी सत्यभामा। असमंजस। कुछ कठोर।

दिव्यसिंह ने समझाया—तू-तू समझती क्यों नहीं ? तुम्हारे खरोंच के निशान दिखाने होंगे रिपोर्टरों को। पेपरों में छपेगा। पब्लिसिटी होगी। बिना निशान रेप होता है ? अब तुम्हारी देह में कोई ढूंढे भी कहीं निशान मिलेगा ? बी प्रैक्टिकल। अरे मुश्किल है, तुम्हें उड़िया में कैसे समझाऊं ? मेरी बात मानो, सयानी लड़की हो। मेरी तो बहन-सी हो तुम। तुम्हारे प्रति जिन्होंने अन्याय किया है, उन्होंने कितने बीभत्स रूप में अन्याय किया है, वह तो दिखाना ही होगा। अब उसी बीभत्स रूप में फ़ोटो न आयी तो लोग विश्वास करेंगे ?

सत्यभामा की साड़ी उतर गई। दिव्यसिंह ने अचकचा कर कहा—माइ गुडनेस। न्यूड स्टडी के लिए परफेक्ट मॉडल। किसने कहा कि उड़िया लड़कियों के स्टेटिस्टिक्स नहीं होते। देखिये रजत बाबू, ये कर्व, बॉडी कर्व कैसी आर्टिस्टिक बनी है।

दिव्यसिंह के दोनों हाथ सत्यभामा की ओर बढ़ रहे थे। सत्यभामा ने भय से, आतंक से, गुस्से और घृणा से हाथों को झटक दिया। दिव्यसिंह ने नरमा कर कहा—बाई। उन दुष्टों ने तेरे स्तनों को नोचा-खरोंचा था। फ़ोटो पर वैसा दिखाये बिना लोग विश्वास करेंगे ? संवेदना दिखायेंगे ? मैं बस एक-दो खरोंच के निशान बनाये देता हूँ। डरती क्यों हो ? कुछ नहीं होगा !

• • •

रजत और मैं, दोनों वकील। रजत का टेक्सेशन और मेरा मोटर वेहिकल। दीवानी और फ़ौजदारी जैसे चालू विषय छोड़ कर ऐसे दो विषयों में प्रैक्टिस करने के पीछे हमारा एक ख़ास कारण है। यहाँ पहले ही बता दूं कि हम राजनीति में भी कुछ रुचि रखते हैं और राजनीति के जरिये कुछ बनना हमारा लक्ष्य है। वकालत तो फ़िलहाल हमने 'ग्रासाच्छादन' (पेट भरने) की व्यवस्था के रूप में अपना लिया है। फ़ौजदारी या दीवानी केस लड़ने में जो प्रतियोगिता है, परिश्रम और झंझट है उन सब के लायक मानसिकता हम दोनों के पास नहीं। टेक्सेशन या मोटर वेहिकल्स में उतना कम्पटीशन भी नहीं और हमारे बँधे-बँधाये मुवक्किल हैं। फलतः आमदनी भी बँधी-बँधायी है।

यह सच है कि मैं या रजत वकालत के जरिये वैसे कोई धनी नहीं हुए। अभी भी मैं पुराने शहर के जयदेवनगर कॉलोनी में, और रजत रहता है शिरिपुर कॉलोनी में किराये के मकान में। रजत ने एक फ्रिज ख़रीदा है और मैंने टी० वी०। घर में सोफासेट, स्टील अलमारी, बॉम्बे पैटर्न का पलग, ड्रेसिंग टेबुल, वी० आई० पी० सूटकेस हैं। एक गैस चूल्हे की जुगाड़ भी की है। हाँ, स्कूटर तो दोनों

को ससुर ने शादी में ही दे दिया था। वैसे कोई बैंक बैलेंस न उसके पास है और न मेरे पास। अधिक से अधिक होगा तो दोनों के पास जमा-पूंजी दो-दो या तीन-तीन हजार होंगे। बस !

इतना जरूर है कि प्रैक्टिस के सहारे हमारा घर-संसार चल जाता है। उससे अधिक आराम नहीं। हम भी तो प्रैक्टिस को खूब लापरवाही से लेते हैं। और थोड़ा परिश्रम करते, जी लगाते, तो भुवनेश्वर में मकान बन जाता। पर हम दोनों राजनीति में पांव रखे हैं। प्रैक्टिस कर एस्टेब्लिश होने का ख्वाब देखने की बजाय राजनीति कर एस्टेब्लिश होने को पसन्द किया हमने।

हम जिस दल में हैं, वह आजकल विधान सभा में विरोधी दल है। पिछले चुनावों में सरकारी दल को दो-तिहाई सीट मिल जाने के बाद हमारे दल की हालत खस्ता हो गई थी। हम इसी दुर्दिन के समय आकर पार्टी के पास पहुंचे हैं। इसे बनाकर खड़ा करना होगा। हमारा खयाल है अगले चुनावों में शासकदल हार जायेगा और तब हमारा दल बहुमत जरूर पायेगा। तब अगर पार्टी टिकट से जीत कर विधान सभा में पहुंच गये तो मंत्री और नहीं तो स्टेट मिनिस्टर या नहीं तो किसी कॉरपोरेशन के चेयरमैन बन ही जायेंगे। फिर हमारे मकान, बैंक-बैलेंस और आर्थिक हालत बदलने में देर नहीं लगेगी।

हम दोनों कॉलेज के दिनों से ही राजनीति में हैं। लॉ पढ़ते समय रजत मुझसे दो वर्ष सीनियर था। रजत फाइनल ईयर लॉ के दिनों में यूनियन प्रेसिडेंट पद के लिए खड़ा हुआ था। मैं तब था प्री-लॉ में और सेक्रेटरी के लिए चुनाव में उतरा। हम दोनों अलग-अलग राजनीतिक दल वाले छात्र-संगठनों के सदस्य थे। मेरा दल था वामपंथी। रजत का दल था हिन्दू-सांप्रदायिकतावादी (दक्षिणपंथी)। रजत की निगाह में मैं विरोधी उम्मीदवार था। फिर जूनियर छात्र होने के नाते मेरी उसे खास परवाह न थी। मगर इससे पहले एक और परिचय था मेरा। डिग्री कॉलेज का प्रेसिडेंट रहकर आया था। अतः रजत थोड़ी-सी खातिर करता था मेरी।

रजत की दक्षिणपंथी राजनीति और मेरी वामपंथी राजनीति दोनों कहीं उड़ गईं, वास्तविक जीवन में आकर। हम दोनों ने आकर भुवनेश्वर में प्रैक्टिस की। तय किया कि राजनीति ही होगा हमारा क्षेत्र। तब तक हम दोनों समझ चुके थे कि भारतीय राजनीति में वामपंथी या दक्षिणपंथी जैसा कुछ न था। जो कुछ है बस स्लोगन भर ! हम दोनों जिस दल में आये उसका राजनैतिक चरित्र भी अच्छी तरह मालूम नहीं पड़ता था। उसका एकमात्र उद्देश्य था अन्य दलों की तरह सत्ता में आना। वहां भी वामपंथी या दक्षिणपंथी कोई विशेषण ठीक नहीं जँचता।

रजत इसी बीच पंचायत समिति की चेयरमैनशिप का चुनाव हार चुका था। हमने समझ लिया कि अगर राजनीति करनी है तो सिर्फ भुवनेश्वर में चिपके रहने

से काम नहीं बनेगा, एक-एक निर्वाचन-मंडली ठीक कर वहाँ की जनता का विश्वास प्राप्त करना होगा। हम दोनों ने अपना-अपना चुनाव-क्षेत्र ठीक कर लिया था। हर हफ्ते छुट्टी के दिनों में जाकर जनसेवा के माध्यम से राजनीति चलाते। गाँव में हमारी जरूरत भी थी। पहली बात तो हम पढ़े-लिखे थे। दूसरे हम खुद राजधानी में रहते थे। तीसरे हम इन लोगों के मौके-बेमौके पड़ने वाले काम सरकारी फ़ाइल में कुछ करवा सकते थे। किसी को ऋण, किसी को प्रमोशन, किसी के जंवाई का ट्रांसफ़र रद्द, किसी डॉक्टर या बी० डी० ओ० का तबादला—इन सबके लिए हमने किसी से कोई रुपया-पैसा नहीं माँगा।

सत्यभामा वाली घटना रजत के गाँव की थी। रजत के प्रतिपक्ष के नेता अवनी रथ थे। अब की बार रजत को हराकर चेयरमैन बने हैं। उन्हीं के बेटे बलदेव ने बलात्कार किया था सत्यभामा के साथ। रजत ने इस घटना को अपने राजनीतिक भविष्य की ओर उठने की सीढ़ी में एक और कदम मान लिया है। सत्यभामा वाली घटना फ़्लैश कर के न केवल अवनी रथ के विरुद्ध प्रोपेगेंडा करेगा, उसकी कंस्टीच्युएंसी के लोग भी इससे रजत को पहचान सकेंगे। उसकी इमेज सबके मन में बन सकेगी।

सत्यभामा के मामले के बारे में रजत ने पी० के० से बात की थी। पी० के० विधानसभा में विरोधी दल के नेता और हमारे दल के कर्णधार हैं। पी० के० ने भी इस घटना में रुचि ली थी। हमारी योजना के मुताबिक़ पहले संवाददाता सम्मेलन हो, फिर विधानसभा मे चर्चा। इसके बाद अलग-अलग जुलूस निकलेंगे। सत्यभामा के बलात्कार के विरोध में। नारी समिति वालों को इकट्ठा कर अख़बारों में स्टेटमेंट देंगे, प्रधानमंत्री को टेलीग्राम देंगे। सारी बातों से केवल अवनी रथ ही हैरान नहीं होगा, रजत भी अपना आसन दृढ़ कर सकेगा।

सत्यभामा वाले केस में रजत काफ़ी आग्रही और कल्पनाशील हो उठा है। कम से कम उसकी सफलता बस मुट्ठी मे है और अगले चुनावों में रजत के जीतने के चांस और चालीस-पचास पर्सेंट बढ़ जाते है, इसमें शक नहीं। अतः सत्यभामा वाला केस वह खुद ही संभाले है। यहाँ तक कि सत्यभामा को लेकर पार्टी या पी० के० कोई रजत को सुपर फ़्लैश कर आगे बढ़े, रजत नहीं चाहता। अतः वह सावधान होकर इस काम में आगे बढ़ रहा है। यहाँ तक कि सत्यभामा के लिए जरूरी खर्चा भी वह पार्टी फण्ड की बजाय अपनी जेब से दे रहा है।

आज रजत काफी व्यस्त है। संवाददाता सम्मेलन के लिए निमंत्रण पत्र साइक्लोस्टाइल करवा कर एजेंसी और अख़बारों के ऑफ़िसों में पहुँचा चुका है। फिर हर अख़बार में सम्पादक या न्यूज़-एडीटर को फ़ोन कर या मिल कर किसी न किसी को जरूर भेजने का अनुरोध कर चुका है। आठ नम्बर यूनिट के पास मिलिट्री बैरक से चुपचाप किसान रम मँगवायी जा चुकी है। हैंड आऊट की

काफ़ी देर बाद आख़िर आये पी० के०। कार से उतरते ही मुझे और रजत को अलग बुलाकर ऑफ़िस में घुसे। किवाड़ बन्द कर सुदर्शन से कह दिया—किसी को अन्दर मत आने देना। फ़ैन ऑन कर दिया। जेब से रूमाल निकाल कर पसीना पोंछा। रखे गिलास को उठा कर पानी गट-गट पी गये। पान की डिबिया निकाल कर एक गिलौरी मुंह में दबायी। तीखी मुस्कान फेंक कर कहने लगे—"रजत, सत्यभामा वाली घटना से जितना लाभ उठाना चाहते थे, मैं उससे अधिक हासिल कर चुका हूं। मुख्यमंत्री राजी हुए हैं कि यदि सत्यभामा वाली घटना दबा दी जाये तो राज्य सभा के लिए हमारे दल को एक सीट छोड़ देंगे।" रजत सन्नाटे मे आ गया,—'पर हम लोग इतनी दूर आ गये हैं। फिर इस घटना को लेकर सरकारी इमेज खत्म हो जाती—सोचकर देखिये। अगले चुनावों मे हम कितनी सीटें अधिक नही पा जाते? एक राज्य सभा सीट की बात छोड़िये।"

पी० के० हँस पड़े—"मैं नया हूँ पालिटिक्स में? मास मैंटेलिटी क्या होती है मैं जानता हूँ। ढाई वर्ष दूर है चुनाव अभी। दो-दो, ढाई-ढाई वर्ष तक सत्यभामा वाली घटनाएं लोगों के दिमाग में रहती है? जनता की स्मरण-शक्ति दुर्बल होती है। दो-ढाई वर्ष पहले किसने क्या अत्याचार किया, मत पेटी के पास खड़ा होकर भारतीय मतदाता कभी याद नही रखता। सत्यभामा वाली घटना को लेकर हम अभी शोर करेंगे—ठीक है। पर इससे लाभ? सरकार की इमेज कुछ ख़राब हो जायेगी। पर हमारा क्या लाभ होगा? निकट भविष्य में चुनाव तो होने से रहे। धीरे-धीरे तब तक लोग भूल जायेगे। इसी बीच सरकार अपनी इमेज फिर सुधार चुकी होगी। तो फिर हमे क्या मिला? हमारी इतनी मेजारिटी नहीं है कि हम राज्य सभा की सीट पा जायें। दूसरे विरोधी दलों का समर्थन पाकर भी जरूरी वोट नही मिल सकेंगे। ऐसे में हमारा एक भी उम्मीदवार राज्य सभा में नही जा सकेगा। इस घटना के ज़रिये हमे राज्य सभा की एक सीट मिल जाती है, तो बुरा क्या है, फिर गोवर्धन बाबू पिछला चुनाव हारने के बाद से चुपचाप है। इतने पुराने आदमी, हम सब से सीनियर। यों चुप बैठाये रखना उनको अच्छा लगता है? वह जायें, कुछ समय राज्य सभा ही घूम आयें। हमारी पार्टी की भी इमेज बनेगी, शक्ति बढ़ेगी।"

अब रजत चुप हो गया था। आँखे मानो पथरा गई थी। पांवो की हलचल भी रुक गयी थी। स्थिर हो कर वह सिर्फ पी० के० की ओर देखता रहा। पी० के० उधर रजत से आँख नही मिला सके। वह उठ खड़े हुए। खिड़की की ओर देखकर उन्होंने कहा—"संवाददाता सम्मेलन स्थगित कर दिया गया है—यह नोटिस सब एजेंसियों और अखबारों के दफ्तर को भिजवा दो। तुम भी फ़ोन कर दो रिपोर्टरों को। सत्यभामा और उसके पिता को गांव भेज दो। समझा-बुझा देना उन्हे। कह देना—अभी अख़बारवाले फ़ुर्सत में नही है। समय होने पर

सत्यभामा और उसके बापू को राजधानी में बुलवा लेंगे। किसी तरह बात बना कर मैनेज कर लेना।"

इस वक़्त पी० के० रजत का सामना करना नहीं चाहते थे। जल्दी-जल्दी सारे निर्देश देकर तूफ़ान की तरह बाहर निकल गये। रजत वैसे ही बैठा रहा। चुपचाप-पथराया—आँखें स्थिर। अपलक। पी० के० की ख़ाली कुर्सी की ओर देख रहा है। मैंने धीमे से कहा—"रजत, रजत।"

रजत ने कोई उत्तर नहीं दिया।



शाम को रजत तिलमिला गया। दिन-भर सब अख़बारवालों को, रिपोर्टरों को, एजेंसी दफ़्तरों को फोन करते-करते, संवाददाता सम्मेलन कैंसलेशन की मोनो टनस ख़बर बार-बार दुहराते वह परेशान हो उठा। चार बजे दोपहर बाद वाली बस से सत्यभामा और उसकी माँ तथा बापू को विदा किया। समझा दिया कि अभी मुख्यमंत्री राजधानी में नहीं है। बाद में आने पर बुलवा लेंगे। सुदर्शन को साथ भेज दिया बस में बिठा आने के लिए। जाते समय भूदेव बारीक की जेब में सौ का नोट ठूँस दिया था रास्ते में खर्च-वर्च के लिये रजत ने।

गठरी वगैरह बाँध-बूँध कर जाने लगे, तब सत्यभामा के चेहरे को देखने से लगता था मानो चैन की साँस लेगी वह अब। भूदेव बारीक कुछ उदास थे, क्योंकि मुख्यमंत्री से भेंट नहीं हो सकी। सत्यभामा की माँ के माथे पर चिन्ता थी, लौटने के बाद गाँव वालों की हंसी-मसख़री का सामना कैसे करेगी?

उनके जाने के बाद रजत ने अपनी डायरी निकाली। हिसाब लिखने बैठा। बार-बार काट-छाँट के बाद भी कम से कम डेढ़ हज़ार तो खर्च हो ही गये। हालांकि ख़रीदी गई किसान रम को बेचने पर कुछ पैसे मिल जायेंगे। हिसाब के पास लिख दिया—डोनेशन फॉर पार्टी इन्टरेस्ट।

शाम को रजत ने कहा—"बहुत उमस हो रही है। चलो कहीं बैठें।" हम दोनों पार्टी दफ़्तर बन्द कर चाबी सुदर्शन को सौंप बसस्टैंड की ओर यों ही घूमते निकल पड़े। पास ही हम सरकारी सूचना भवन के लॉन में जाकर बैठ गये। तब तक आकाश में देखा तारे भर गये थे। रजत लॉन के घास वाले गलीचे पर लेटे-लेटे ऊपर आकाश की ओर ताकता रहा कुछ समय तक। उसने कहा—"इस झमेले में कोर्ट-फोर्ट का काम भूल ही गया। मैसर्स थक्कर बापा एण्ड संस के इन्कम टैक्स की तारीख़ भी इसी बीच निकल गई।"

मैंने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। क्योंकि मुझे भी कुछ केसों में हाजिर होना था। अब याद आ रहा है—प्रैक्टिस के पीछे सीरियसली लगना होगा। क्योंकि दुनिया में अपनी भी कुछ जरूरतें हैं और उनके लिए पैसा निहायत ज़रूरी है। इसी समय पॉलिटिक्स के प्रति मेरी अरुचि और संसारी जीवन की

और आकर्षण मन में पैदा हो गया। जीवन में मुझे जितना एस्टेब्लिश होना चाहिए था, मैं नही हो पाया। और मेरे कई साथी इसी बीच काफी कुछ आगे निकल चुके है। मन यह सब सोचते-सोचते उदास हो गया—मुझे लगा जैसे मैं गलत रास्ते पर चला गया था। ऐसा नही होना था मुझे।

आठेक बजे होंगे। रजत ने सुझाव दिया—"चल, रसूलगढ़ के पास वाले पंजाबी ढाबे में चलें।" भुवनेश्वर मे स्टार होटल और बार खुल जाने के बाद रसूल गढ़ वाले इलाके मे गुंडे-बदमाशो को छोड वैसे कोई भला आदमी नही जाता था। अतः पहले मैंने ना-ना की। कहा—"चलना जरूरी है तो किसी बार मे चलते हैं।" मगर स्टार होटल मे सबसे सस्ती बीयर के पीछे बाईस रुपये ख़र्च करने वाली एरिस्टोक्रेटिक जिन्दगी हमारे लिये समव नही। अतः रजत घसीटता-सा मुझे रसूलगढ़ वाले ढाबे की ओर ले गया।

एक-एक पैग व्हिस्की। दूसरे पैग के बाद रजत की आँखें छोटी होने लगीं। जीभ लड़खड़ाने-सी लगी। वह कुछ अस्थिर दिखा। मुझसे पूछने लगा—"सोचते हो, मैं टूट गया? एक मौका पी० के० ने नष्ट कर दिया। और कोई होता तो पार्टी छोड़ देता। क्यों? मेरा मन थोड़ा डगमगा गया है। इसलिये नही कि मेरे भविष्य का एक मौक़ा नष्ट हो गया। मैं सत्यभामा की बाबत सोच रहा हूँ।"

सत्यभामा! मुझे भी सुरूर चढ़ रहा था। अतः हल्के मूड मे कहा—"तेरे अन्दर सत्यभामा के लिए कुछ इनफैचुएशन आ गया था?"

—"चुप।" धमका दिया रजत ने। "मैं द्रौपदी की बात सोच रहा था। जिस दुःशासन दुर्योधन को हम दोषी कहते हैं, उन्होंने द्रौपदी का वस्त्रहरण किया था। वास्तव में क्या वे ही दोषी थे? जिन पांडवो ने जूए मे उसे दांव पर रखा वे क्या दोषी नही? जिन कृष्ण ने द्रौपदी को वस्त्रदान कर वाहवाही ली, वह कृष्ण क्या पराई बहू-बेटी की इज्जत से खेले नही? असल मे हमारे मूल्यबोध ही इकतरफ़े और शासनकेन्द्रित है।"

मैंने कुछ नही कहा। तदूरी का टुकड़ा तोड़ मटन के शोरबे में डुबा रहा था। आँख मीचे चबाता गया। रजत थोड़ा उत्तेजित हो कर कहने लगा—"सुनते हो? तुमने देखा—लडकी की एक बार इज्जत लुटने के बाद उसे कितनी बार उन्ही हालात से गुजरना पड़ता है। पुलिस के आगे, प्रेस के आगे, विधान सभा मे, कोर्ट-कचहरी मे। मैं पूछता हूँ—क्यों कुछ नारियाँ बार-बार अपमानित होती रहेंगी? क्यो? कहां है इस मानवीयता के लिये जगह? देखो। मेरा अभियोग समूची व्यवस्था पर है! हर दल, हर व्यक्ति और हर शासन के विरुद्ध। यहां तक कि यह अभियोग मेरे अपने विरुद्ध भी है। मेरे प्रतिद्वन्द्वी अवनी रथ के बेटे का ही नही, सत्यभामा को बार-बार बेइज्जत करते लोगो की सूची मे मेरा नाम लिखना क्या उचित नही? पी० के०, तुम्हारा, फ़ोटोग्राफ़र का, मुख्यमंत्री का, प्रेस

का नाम ? सब···हम सब उत्तरदायी हैं। सब अपराधी हैं—सत्यभामा के आगे। कोई भी शासन-व्यवस्था आये, गद्दी पर जो भी बैठे, कुछ लोगों पर अत्याचार होगा। कुछ के साथ जबरदस्ती होगी। जो लोग चालाक हैं जो वर्षा देखकर छाता दिखाते है, वे जीतेंगे, बाकी पर अत्याचार होते रहेंगे। युग-युग से यही होता रहा है, यही चलेगा। इस चल रही व्यवस्था में परिवर्तन दिखाई नही देता। यह सोच कर ही मन थोड़ा खिन्न है।"

अब मैंने कहा—"अगर सोचते हो कि परिवर्तन नहीं होगा तो फिर इतनी चिन्ता क्यों ? इसे ही जीवन मान लो। देखो, तुम पर चौदह पौंड वजन का वायु-मण्डल है। कभी उसका ख़याल आता है ? तो समझ लो कि ये बातें वैसे ही हमारे साथ जीवन मे जुड़ी हैं। ऐसी व्यवस्था को मान लो। फिर इतने उत्तेजित नही होगे।"

रजत कुछ क्षण टिमटिमा कर देखता रहा। मैं नही समझ सका कि यह गुस्से मे देख रहा है या अनबूझ बना। कौतूहल मे हूँ या नशे में। कुछ क्षण बाद उसने बची हुई ह्विस्की एक घूंट मे खत्म कर दी। ठहाका लगा कर उसने कहा—

"तुम एक पक्के रिएक्शनरी हो।"

रसूलगढ वाले ढाबे से निकले तब तक दोनों पर नशा पूरी तरह छा चुका था। मुझे जाना था जयदेवनगर कॉलोनी। अतः सीधे कल्पना चौराहे वाले रास्ते की ओर चलने लगा तो रजत ने मुझे बाँहों मे भर लिया। "यार, आज तो बहुत नि.संगता लग रही है। किसी तरह साथ ही चलो।" आख़िर तय किया कि हम दोनों इंडस्ट्रियल एरिया होते हुए मास्टर कैंटीन चौराहे तक जायेंगे। फिर राज-महल स्क्वायर तक साथ जाने के बाद अपनी-अपनी राह आगे बढ जायेंगे।

अब तक शायद रात काफ़ी हो चुकी थी। सड़क सुनसान हो गयी थी। दुकान बाजार सब बंद, ट्रैफिक पोस्ट पर कोई न था। थोड़ा कान लगाकर सुनें तो भुवनेश्वर के ख़र्राटे सुनाई पड़ेगे। मुझ पर इतना नशा था कि स्कूटर किस गियर में जा रहा है यह भी नही समझ पाया। किधर वह जा रहा है इतना भी मैं नहीं जानता था उस समय। बस, रजत के स्कूटर के पीछे दौड़ता रहा मेरा स्कूटर।

अचानक रजत ने अपने स्कूटर मे ब्रेक लगाया। पीछे-पीछे मेरा स्कूटर भी थम गया। कहाँ पहुँच गये ? राजमहल चौराहा ? ए० जी० चौराहा ? सिर झटक कर मैंने गौर से देखा, अरे यह तो मास्टर कैंटीनवाला चौराहा है। दुकानें बंद हैं। बाईं ओर रेलवे स्टेशन की बत्तियाँ दिख रही हैं। सड़क पर एक-आध कोई साइकिल या रिक्शा पास से गुजर जाता है। इस सुनसान जगह पर रुक जाने का मतलब ?

रजत ने स्कूटर एक ओर खड़ा किया। दौड़कर वह गोल चक्कर तक चला गया। एक छलाँग मे वह घेरा लाँघ गया। लोहे का ऊँचा घेरा बना था। उसके

बीचों-बीच विराट अश्व। यह कोणार्क में स्थित अश्व की नकल पर बनी पत्थर की कृति है। रजत झपट कर उस पर जा चढा। नशे में रजत को इतना साहस और शक्ति कहाँ से मिली ? पहले तो लगा मैं नशे में हूँ, अतः गलत देख रहा हूँ। दुबारा सिर झटक कर देखा—रजत वास्तव में पत्थर की उस मूर्ति पर चढा हुआ है। जो रास्ता सचिवालय की ओर जाता है वहाँ से उस ओर मुँह कर पैंट की जिप खोली। उस तेज रोशनी के नीचे वहीं वह पेशाब कर रहा है। खूब ज़ोर से आवाज लगा रहा है—'आइ हेट इट, आइ हेट।'

सड़क पर तेज़ी से जा रहे दो-तीन साइकिल वाले यह दृश्य देख, रुक कर खड़े हो गये। रजत ने पेशाब करने के बाद पैंट पर चेन लगाई। धम् से नीचे कूद आया। देखने वाले सब आह-आह कह उठे। मगर उनकी सहानुभूति की परवाह किये बिना वह खड़ा हो गया। नशे में वह लड़खड़ाते कदमों से लगड़ाता-लंगड़ाता स्कूटर की ओर चल दिया।

रजत को देख मुझे अचानक लगा जैसे वह बहुत थक गया है। वह और चल नहीं पायेगा। मानो महाभारत के अन्तिम पर्व में श्रीकृष्ण को सारी शक्ति लौटाने के बाद यह अर्जुन की तरह दुर्बल है। इतना कमजोर है, मुझे लगा वह इस लोहे के घेरे को और नहीं लाँघ पायेगा। पता नहीं कैसे मुझे विश्वास हो गया कि रजत ज़रूर टकरा कर गिरेगा। उस घेरे की लोहे की दीवार को लाँघने से पहले ही वह लॉन पर धड़ाम से गिर जायेगा।

(अनु०—शंकरलाल पुरोहित)

# मेजर ऑपरेशन

●

वसंत कुमार शतपथी

"देखो बापू, मैंने आपसे पहले ही कह दिया था, साठ-बासठ की उमर के बाद बेहद जरूरत न पड़े तो मेजर ऑपरेशन की शास्त्रों में मनाही हो या न हो, करवाना नहीं चाहिए। सबने मिलकर फैसला कर लिया है, हमारे इस माडर्न बड़े हॉस्पीटल के विख्यात सर्जन ऑपरेशन करने को राजी है। फिर भी जिस परिवेश में नर्सिंग होम है और जिस तथाकथित केबिन में आपको रखा गया है, आप कुछ भी सोचें, मेरी सहमति तो इसमें है नहीं।" अभी-अभी मेरा डॉक्टर बेटा बेरोक-टोक कह गया है यह सब यहाँ पहुँचते ही।

ऑपरेशन कल सुबह आठ बजे होगा। पास वाला कमरा ओ. टी. याने ऑपरेशन थियेटर में बदला जा चुका है। सफाई-धुलाई की खट-खाट किवाड़ की फांक होकर सुन रहा हूँ। विटामिन के और अन्य दवाइयाँ, जो चौबीस घंटे पहले देने की बात है, सब शुरू की जा चुकी है। अब तक जो कुछ हिम्मत बँधी थी, वह भी ढीली हो गई है। मन में जो थोड़ा-बहुत बल है, सिर्फ कुटुम्ब-कबीले, बेटे-पोते, समधी-समधिन आदि के साथ होने के कारण है, उनके उत्साह के कारण है। वे कहते है—"कुछ नहीं होगा, सब ठीक है।"

पर मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस प्राइवेट नर्सिंग होम का चुनाव ठीक नहीं हुआ। वे करते भी तो क्या, बड़े अस्पताल में बेड नहीं मिला। एमर्जेन्सी केस तक वहाँ जमीन पर पड़े है, नाली के पास लेटे है। वैसे यह भी नाममात्र का ही नर्सिंग होम है। पास सड़ांध मारता पोखर है, चारों ओर अनाप-शनाप झाड़-झंखाड़ है। रात में झुंड के झुंड आवारा कुत्ते। फिर मच्छर और मक्खियों के उत्पात में यहाँ भला किसी मुर्दे के सिवा कौन रह पायेगा? छोटा बेटा, आजकल यहाँ मेरी देख-रेख करता है, उसका दुख तो मेरी शोचनीय दशा से भी बढ गया। पाखाना मेरे पाँव तले। एक आदमी

के पाखाना जाने के बाद दूसरे को बाहर जाना होता है। जो बैड मुझे मिला है वहाँ दो दिन पहले नौ वर्ष की बच्ची ऑपरेशन के बाद धनुषटंकार मे चल बसी थी। फिर मेरे कूल्हे का घाव सूखा भी नही, मवाद आती है उसमे। ऐसे मे ऑपरेशन करने पर सेप्टिक हो ही जायेगा। यह पुराना मकान किसी डॉक्टर की पैतृक सम्पत्ति बताते हैं। दो-तीन वर्ष के लिए वह किसी दूसरे डॉक्टर को किराये पर देकर विलायत गए हैं। अब जो बड़े डॉक्टर राजी हुए हैं वह फ़ीस के लिए किसी कारण मेरे केस मे उतने आग्रही नही। मगर उनके पाँच फ़ुटे डॉक्टर असिस्टैंट का हाथ खुजला रहा है, काटने के लिए नही, फीस के लिए। 'काट' कहने पर तो वह कुल्हाड़ी से भी काट कर रख देगा। मैं तो ठहरा नर्वस पेशेन्ट। बेटे ने खुल कर कह दी बात उसके मुँह पर। मेरा मन लेकिन कुछ और सोचने लगा है। बेटा चाहे अनुभवी डॉक्टर न हो, मगर वह युवक, पिता के जीवन के लिए जितना सतर्क होगा, वैसे दूसरा कौन होगा? मैंने उसे तार देकर बुलवाया है, उससे बात कर सलाह लेने के लिए। आकर वह हरेक को बताने लगा कि कैसे हम अविवेक से काम ले रहे हैं। अब इमर्जेन्सी की हालत तो टल गई। अब आराम से अच्छी तरह सोच-समझ कर काम करना चाहिए। समय है, अतः उसी के अस्पताल मे चले जाना चाहिए। सारी दोपहर सबने बैठ कर यह फ़ैसला किया है। मेरा मन लेने के लिए उनकी तरफ़ से बड़े बेटे ने पूछा—"बापू, आपका ऑपरेशन यहीं करने की सोची है"। डॉक्टर बेटा भी गंभीर बना वहीं खड़ा था। चुपचाप।

मुझे गुस्सा आ गया—"मैं फ़ैसला नही मानूँगा। यहाँ पेट नही कटाऊँगा। तुम लोग क्या जोर-जबर्दस्ती टेबल पर लिटाओगे?" बेटे ने तनिक हँसकर कहा—"बापू मैं कुछ दिन की छुट्टी लेकर आया हूँ। फिर मेरा यहाँ रहना न रहना समान है। क्योंकि जो लोग ऑपरेशन करेंगे वे मेरे टीचर जैसे है, मैं उन्हें क्या कुछ कह सकूँगा? आपकी आँखें मुदती रहेगी, नाड़ी छूटती जायेगी और मैं खड़ा-खड़ा देखता रहूँगा। कुछ बोल न सकूँगा। एक और बात सोचें। हो सकता है दुनिया के नामी सर्जन आपका पेट काटकर गॉल-ब्लेडर बाहर कर दें। मगर नर्सिंग होम में आफ़्टर केयर बड़ी बात है। यहाँ आपको यथोचित देख-भाल नही मिल पायेगी। मन की अवस्था के अनुसार रोग जल्दी या देर से ठीक होता है। आप मेरे साथ ही चलें। बेमतलब किसी को कोई आशंका नही होगी। सही देख-भाल होगी। वहाँ खर्च भी नाममात्र का आयेगा।"

इतने नामी सर्जन को हमारा फ़ैसला सुनाने को कोई राजी नही हुआ। साहस कर मुझे ही कहना पड़ा—"डॉक्टर बाबू, मेरे भाग्य में आप जैसे महान् सर्जन के हाथों ऑपरेशन नही लिखा। कल ऑपरेशन नही होगा। घर लौटकर फिर हिम्मत बाँधकर लौटूँगा।" डॉक्टर साहब ने कहा—"कोई बात नहीं। आप

कहीं भी करवा सकते हैं। दो प्रतिशत लोग नर्वस होकर ऑपरेशन टेबुल से घर लौट जाते है। आप उन्ही मे से ठहरे।"

हमने उसी क्षण नर्सिंग होम छोड़ दिया। तैंतीस घंटे रहने के एक सौ आठ भरे। हर इंजेक्शन लगाने का नर्स लेती पाँच रुपये। हर बार फोड़ा सेंकने, बैंडेज, गर्म पानी, पाखाने आदि का अलग-अलग चार्ज था। बिना ऑपरेशन गठरी बाँध लौट आने पर कुछ तो मन्द-मन्द हँसे। पर मैं खुदा का शुक्र मना रहा था। जान बचाकर एक बार तो लौटे। उसी रात बेटे के साथ चला गया। घर के निकट से स्टेशन जाते समय मन कर रहा था नन्हें पिल्ले को देख लेता। *मगर रात के ढाई बजे मेरी यह इच्छा कौन पूरी करता? कल सुबह आठ बजे* फाँसी पाने वाले से कोई कह दे—फाँसी अनिश्चित काल के लिए मुल्तवी हो गई, कैसा लगेगा? अब बिना जाँच-पड़ताल के ऑपरेशन टेबुल पर जाने का सवाल ही नहीं। डॉक्टर बेटे की सीधी देख-रेख में उसके घर मे रहा आराम से। यदि एकदम जरूरी ही हुआ तो सीधा अस्पताल। पहले मवाद सुखाना जरूरी है।

मैं कोई डॉक्टर तो नहीं, मरीज हूँ। कहते भी हैं—आज का मरीज कल का डॉक्टर। पहले अपने रोग की बात बता दूँ। मर्ज जानने मे काफ़ी समय लग गया। चार वर्ष में दो बार पीलिया हो गया। डॉक्टरी इलाज से ठीक हुआ। पर बिल्कुल ठीक नहीं हुआ। जिस डॉक्टर के पास से बिना ऑपरेशन कराये लौट आया, उन्होंने किसी से मेरे रोग के बारे में सुना था। बेटे से कहा—इनका एक्सरे करवा दो। दो बार एक्सरे के बाद रिपोर्ट मिली—बेशुमार चमकदार पदार्थ पित्ताशय मे है। इसी पित्तकोष से रस निकल कर खाने को पचाता है। कलेजे के पास हरे रँग का पतला पदार्थ इसमें जमा रहता है। रोहू मछली का यह अंग फटने पर मछली खारी-खारी लगती है। रोहू के इसी भाग को लेकर कविराज प्रसूति का इलाज करते है। यह पित्तकोष ही जिगर की मदद करता है अधिक पित्त देकर। पित्त भरने वाले रास्ते में रोड़ा आ जाने पर सारी देह मे पित्त फैल जाता है। रोड़े-पत्थर खाने पर पित्तकोष मे रोड़ा नहीं जमता। देह के अनुसार पत्थर ख़ुद ही वहाँ बन जाता है।

इस रोग का एक काव्यात्मक नाम है। 'लैंड ऑफ़ दि मिडनाइट सन' की तरह यह रोग कहलाता है 'डिसीज ऑफ दि मिडनाइट पेन' (अर्द्धरात्रि की पीड़ा की बीमारी) खाने-पीने मे कोई गड़बड़ नहीं। साँझ के समय एसिडिटी जैसी लगेगी। ऊपरी पेट मे दर्द शुरू हो जायेगा। पेट में तूफ़ान से पहले की-सी शान्ति, स्तब्धता। फिर रोग बढेगा। धीरे-धीरे। मर गया-मर गया। सोये, बैठे-किसी तरह बच नहीं सकते। स्वर्ग-मर्त्य-पाताल कहीं जगह नहीं। रात के बारह बजे। सब सोये होंगे बुत की तरह। अधिक चीख-पुकार सुनी तो पिल्ला चारपाई पर ऊपर-नीचे होता रहेगा। साइकिल उठाता, किवाड़ खोलता, सूने रास्ते पर

चक्कर काटता कोई रिटायर्ड सिविल सर्जन चेंबर खोले बैठे मिल गए। (रोगी की तरह डॉक्टर को नींद नहीं) जेलूसिल, डायवॉल, डाइजीन की टेबलेट थमा देते हैं। पानी एक-दो गिलास पीकर सोने की चेष्टा की। सुबह बड़े तड़के पता नहीं कैसे नींद जकड़ लेती है। उठने पर एकदम फ़्लेट जैसा लगता है। कितनी तकलीफ। मन याद ही नहीं कर पाता रात वाला दर्द। सदा ऐसा नहीं होता। कभी-कभी ही होता है। खान-पान में खूब सावधानी। सब उबला, न मिर्च, न मसाला, न चर्बी, बिना मलाई का दूध, छाछ, पपीता, परवल, करेला आदि। और कई तरह की कठिन साधनाएँ—लिव-52, पैकेट के पैकेट ईसबगोल, पेप्सीन के टॉनिक, हॉरलिक्स और विटव्वा किसी से भी बचे नहीं। मृत्यु जब आयेगी तब आयेगी। रोग आना चाहेगा तो आयेगा ही। किसी दवा से तुरन्त लाभ नहीं होगा। हो सकता है कि एक गिलास पानी पी ले और वह ठीक हो जाये। इस रोग के साथ एक रोग है, इसे स्नायुरोग विशेषज्ञ 'पोज़ीशनल विटाइगो' कहते हैं। करवट लेने पर, अचानक सिर इधर-उधर करने पर कुछ न कुछ हो जायेगा। पैर ऊपर, सर नीचे, लगेगा जैसे दुनिया घूम रही है। जैसे धरती खाट से हट गई है। ऐसी दिशा में कौन जीना चाहेगा? संगी-साथी, बच्चों के साथ गपशप, क्लास में पढ़ कर, कुछ लिख-पढ़कर, सर्वोपरि विनोद-वृत्ति को जगाये रखकर जीते रहने की बात। वरना जीवन मूल्यहीन और दर्द भरा हो जाता है। अनुभवी कोई नहीं जो कुछ आश्वासन दिलाये।

जौंडिस की दशा होने पर लावण मिश्रवाला नुस्खा, मेंहदी की जड़ और चावल का धोया पानी। वरना डिसेंट्री, वायुरोग, अजीर्ण की चिकित्सा। बेशुमार चमकदार पदार्थ हों तो ऐक्सरे में पकड़े जाने पर यह इलाज चला। बस पेट से या गॉल-ब्लेडर से पथरी दूर करने की बात। इसका एकमात्र अमोघ उपाय है ऑपरेशन। पैंसठ वर्ष के बूढ़े की देह पर ऑपरेशन। फिर हमारे इन अस्पतालों में, नर्सिंग होम में, जहाँ हाइड्रोसिल या वेसेक्टोमी ऑपरेशन में भी मृत्यु हो जाती है। फिर भी ऑपरेशन से डरते नहीं। मृत्यु-यन्त्रणा से तो मृत्यु अच्छी है। इतने लोगों को आधी रात गए परेशान करने से तो अच्छा दुनिया से चले जाना।

फिर ऑपरेशन की मनाही। बूढ़े की देह नहीं सँभाल पायेगी 'मेजर ऑपरेशन'। अतः आयुर्वेद चिकित्सा कर देखा जाये। राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त कविराज से भेंट की। टेबुल पर हाथ बढ़ाकर प्रतिज्ञा—इक्कीस दिन में पथरी को पेशाब के रास्ते निकाल देंगे। काली-काली टेबलेट कुल्थी के पानी में खाने की बात कहकर बताया—"कुल्थी का पानी रोज़ कुछ बूँद पत्थर पर डाल कर देखना। इक्कीस दिन में पत्थर फट जायेगा। पिघल जायेगा।" इक्कीस दिन के दौरान कोई तकलीफ़ नहीं हुई। कविराज को बधाई देने गया। कहने लगे—"अब और पत्थर की

वहाँ कोई सत्ता नहीं, सब निकल गए हैं।"

लेकिन अगले दिन रोग भड़क उठा। अब की होम्योपैथी। संयोग से उन दिनों कलकत्ते के प्रसिद्ध होम्योपैथी डॉक्टर हमारे शहर में थे। कहते हैं वह एरोप्लेन से कॉउंसिल मीटिंग में जाया करते थे। उनके साक्षात देवता की तरह गुण गाये जाते। किसी का पाँव टूटा है—ठीक तीन महीने में हड्डी जुड़ जायेगी। रोगी चलने लगता है। आँखें जन्म से खराब हैं, करोड़ पावर की आधी खुराक ठीक साल भर बाद आँखें ठीक हो गईं। जोड़ों में सूजन थी, सात दिन बाद रोगी बैठा होता है, 'कट' की आवाज, कुछ पानी निकल जाता है। रोगी चलने लगा, भाग सकता है। चेले-चाँटी इस तरह हैनीमैन की पता नहीं कितनी गुणावली गाते हैं, इतने महिमावान व्यक्ति से मिला। कहने लगे कि हम तो सिमटम्स पर इलाज करते हैं। पेट में चाहे पत्थर हो या काँच, सिमटम्स बतायें। उन्होंने कहा—छह हजार लगेंगे। छह हजार खर्च कर क्यों मरूँगा। इतने में तो बेटे पितृश्राद्ध ठाठ-बाट से कर सकेंगे और पिता की मृत्यु भी बेटों के उत्सव का बहाना होगी। बाद में पता चला वह डॉक्टर कलकत्ते से हमारे शहर में बार-बार आते हैं, मछली, चावल, दही और मिठाई के लोभ में।

मेरा पिपीलिका के अंडों जैसी दवा में कोई विश्वास नहीं। फिर भी लोगों से अलौकिक शक्ति सम्पन्न एक स्थानीय होम्योपैथ का नाम सुना, चला गया। पाँच घन्टे जाँच-पड़ताल, पूछ-ताछ के बाद पाँच सौ रुपये लेकर मुझे हाथ में लिया। पहली दवा खाने के बाद दर्द, चीख-पुकार से सारा घर थर्रा गया। भागे-भागे डॉक्टर के पास पहुँचे। पहले तो दवा रोग को बढ़ाती है। फिर ठीक करती है। उसी रात उन्हें छोड़ना पड़ा। कुछ दिन पहले उनसे भेंट हुई तो मैंने बताया—बोतल में पत्थर रखे हैं, उन्होंने उन इन्यूमरेबिल ट्रांसुलेंट ऑबजेक्ट्स को देखने का आग्रह किया।

रोग यथापूर्वक तथा परम। फिर एक दिन शाम पाँच बजे शुरू हो गया। दैवात्, तीन नम्बर वाला बेटा (भगवान तुझे दीर्घ जीवी करें।) उस दिन आया हुआ था। उसे सेवा-फेवा अच्छी नहीं लगती। पता नहीं क्या सोचा, वह अस्पताल जाने की बजाय टेलीफोन एक्सचेंज की ओर चल दिया। किसी के साथ कुछ तय कर लिया। उसी रात एक्सप्रेस में बैठकर चले। नर्सिंग होम में दाखिल। डॉक्टर ने बताया—"लिवर पक गया है, या पक जायेगा। ऑपरेशन कर दें।" वही व्यवस्था। अरे पैंसठ क्या पचासी की उम्र में भी ऑपरेशन होते हैं। सबको तार दिये गये। चौबीस घंटे में सब वहाँ पहुँच गये। पहले कहा जा चुका है कि किस तरह बेटी-बेटों के साथ प्राइवेट नर्सिंग होम से वापस लौट आया, कूल्हे पर मवाद पूर्ण घाव लिए, अपने कुत्ते के पिल्ले को भी बिना देखे। डॉक्टर बाबू का पिता होने के नाते तुरन्त एडमीशन हो गया। मगर मैं रहा बेटे के क्वार्टर में।

फिर जाँच-पड़ताल चली नये अस्पताल में। शायद बेटे ने पहले से ही सारी व्यवस्था कर रखी थी। सब ठीक है बस फोड़े का मवाद सूख जाये। एक बात और, इस्नोफेलिया भी चौबीस परसेंट से नीचे लाना होगा। डॉ० दास होंगे सर्जन। डॉ. राम उनको एसिस्ट करेंगे। सिर्फ उन दो को ही अपना कर्ता-धर्ता समझने लगा। उन्होंने ऑपरेशनों के मामले में ख़ूब नाम कमाया है, सो बात नहीं। वरन डा० दास तो बदनाम हैं। सुना कि डॉ० दास तो लायब्रेरी से किताबें लेकर गाल ब्लेडर सम्बन्धी जानकारी इकट्ठी करने में जुट गये। मुझे रोगी के रूप में वी० आई० पी० की तरह देखते। हर तरह का आश्वासन, सात्वना देते। वह मेरा मनोबल बनाये रखने में लगे रहते।

पूर्व-अभिज्ञता कहूँ तो चालीस वर्ष पहले दुर्गा पूजा के दिनों में कटक स्थित मेडीकल स्कूल में डॉ० काशीनाथ मिश्र से हाइड्रोसिल कटवाया था—यह बात पेंसिलिन से पहले के ज़माने में मर्करीक्रोम के दिनों की है। ऑपरेशन उतना सफल तो नहीं हुआ। काफी कष्ट भोगा। मैं मेटली तैयार हो रहा था। पूजा के दिन पास आ गए। डॉ. दास बंगाली हैं, कोई बंगाली मायेर पूजा के दिनों में बाहर नहीं रहता। वह कलकत्ता चले गए। अतः दशहरे के बाद ऑपरेशन होना तय रहा। मुझे घर लौटने का चांस मिल गया। विश्वविद्यालय की ढेर सारी कापियाँ बिना जाँची पड़ी हैं। डॉक्टर बेटे से घर आने की इजाज़त माँगी। हाँ कर दी। औरों ने कहा—एक बार घर गए तो बापू नहीं आयेंगे। एक बार चारपाई से उठकर चले आये हैं। फिर बिल्कुल नहीं आयेंगे। काफ़ी सौगध-शपथ के बाद लौटा।

इतने दिन बाद मुझे देख कर कुत्ता ख़ूब ख़ुश हुआ। वह मेरे ही पास सोया रहता नाती-पोतों की तरह। तीन-चार दिन का वादा करके आया था। लौटने की इच्छा नहीं। शायद ये कहें—'देखो हमने कहा था, एक बार जाकर नहीं लौटेंगे,' इसे झूठ सिद्ध करने लौट आया। पिल्ले से, घर-बार सबसे छूटकर आया। लौटकर सुना—डॉक्टर दास नहीं लौटे हैं अभी तक। अच्छा लगा कि उन्होंने छुट्टियाँ बढ़वा ली हैं। इसी बीच घाव एकदम सूख गया है और इस्नोफ़ेलिया भी आठ-दस परसेंट हो गया था। बाक़ी ख़ून क्लॉट करने में देर लगती है। चार-पाँच दिन में यह ठीक हो जायेगा।

दशहरा गया। डॉ० दास नहीं लौटे। जितनी देर करते मुझे उतना ही अच्छा लगता। क्योंकि ऑपरेशन का मतलब मरना ही होगा। मैंने एक दिन लेटे-लेटे सुना, बेटा कह रहा था बहू से—डॉक्टर दास लौट आये है। उस शाम फिर रोग ने दर्शन दिये। अकथनीय दर्द भोगता रहा दस-पन्द्रह मिनट। बेटा रात ग्यारह बजे लौटा, ड्यूटी से। बेटे ने मेरी बावत बहू से सुना कि कहने लगा—"अस्पताल में एक बूढ़े ने ऐसे ही ओह-आह कर घंटे-भर रोक लिया। यहाँ आकर देखो तो एक और बूढ़ा ओ-आ कर रहा है।" उसने बैरालगन दे दी। दवा का

असर था या उसकी दुख मिली झुंझलाहट, दर्द कम हो गया। खाना खाकर पास आया—"अगर डॉ० दास पूछें तो कहना मत कि रोग अभी फिर हुआ था।" तब तक घर पर ही इलाज चल रहा था।

अगले दिन दो बजे रिक्शा बुला कर बहू मुझे अस्पताल ले गई। पांच नम्बर केबिन में रखवा दिया। उस दिन शायद शुभ घड़ी थी। पंचांग देखकर मुहूर्त निकाला था, दोनों ने। शुक्रवार (जिस दिन ईसा को सूली पर चढाया गया था) को मेरा ऑपरेशन होगा। तीन का जाना शुभ नहो होता, अतः बेटा मुझे कार में नहीं लाया था। उस दिन का बाकी समय जाँच-पड़ताल में कटा। लगा ही नहीं कि मैं अस्पताल मे हूँ। बार-बार नर्स आती, खबर लेने। एयरकंडीशंड केबिन।

घर से निकलने से पहले विकल स्वर में पूछा—"बेटे मरूँगा तो नहीं?' बेटे ने कहा—"क्या बात करते हैं। आधा इंच सर्जरी करने पर गॉल ब्लेडर निकल आयेगा पांच मिनट मे। माइनर ऑपरेशन है।" झूठ कब बोलना चाहिए, बेटा जानता है। डॉक्टर दास आये। लगा जैसे अब वह ही मेरे भगवान हैं। मारना-तारना उन्ही के हाथ है। बेटे-बहू, जमाई, नाती, पोते जो पुरी से आ रहे हैं, वे कुछ नही। डॉक्टर दास ही साक्षात नारायण हैं।

"केमन आछेन?" जैसे कुछ मामूली सवाल पूछे। गंजी ऊँची कर दाहिनी ओर छाती के नीचे से नाभि तक सहलाते गए।—"एइ पोर्शनटा भल करे साबान देवन्।" मैंने पूछा—"बच जाऊँगा तो, डॉक्टर बाबू?" वह हँसे—"पागल ना कि? किछु हबे ना।" मैंने अनुरोध किया—"जो हो, मगर इटेंसिव केयर यूनिट में मत ले जाना।" बेड पर लेटा वही शीशे के उस पार आई० सी० यू० देख रहा था मैं। खयाल था कि वहाँ जाकर कोई जीवित नही लौटता। फिर तो केवल बॉडी—मुर्दा ही आत्मीय जनों को लौटायी जाती है।

छत्तीस घंटे। काउण्ट डाउन शुरू कर दिया। शुक्रवार, आठ बजे लौंचिंग का समय। चन्द्रलोक के लिए। "जय जगन्नाथ।"

मुझे हँसी आ गई। जो आदमी दर्द के समय हर पल मरने के लिए भगवान को बुला रहा था, अब मरण-काल मे ऐसे घबरा है। जीवन का कैसा मोह होता है।

बुधवार की रात ठीक से नींद नही आयी। एक तो अकेला फिर नया परिवेश। बेटे ने 'मैनईटर्स ऑफ़ सोवो' नामक एक शिकार कथा दी थी। 'मैनईटर्स ऑफ़ कुमाऊँ' में बाघ के शिकार की कहानियाँ थी। इसमें अफ़्रीका में शेर के शिकार सम्बन्धी रोमांचक कहानियाँ भरी थी। शुक्रवार की याद आने पर मन फिर कहानी की ओर नही जाता। क्या फ़ायदा इस ज्ञानार्जन से अगर कुछ घंटे बाद जीवन समाप्त ही होना है।

उस दिन शाम को डॉक्टरों का मेला मेरी केबिन में। आँख, कान, नाक,

जीभ, दांत, लंग्स हार्ट, स्नायु, हर अंग के विशेषज्ञ डॉक्टरों के दल के दल आये। दबा-दबा कर खींच-तान कर देखते। हाट में बूढ़ी बकरी को खरीदने से पहले कसाई परखता है। माप-तौल करता है। कुष्ठ रोग के विशेषज्ञ भी आये। दाहिना हाथ मोड़कर देखा। पिन चुभो कर देखा। हर डिपार्टमेंट ने ऑपरेशन के लिए क्लियरेंस दिया। अंत में आये एनस्थेटिस्ट। वह मुझे बेहोश करेंगे। पीठ थप-थपा कर कहने लगे—"आपका तो सब ठीक-ठाक है। डरने की कोई बात नहीं। सब ओ० के० करने के बाद आये डॉ० दास और डॉ० राय। अपने एक सहकर्मी डॉक्टर के पिता के ऑपरेशन का दायित्व था, अत: दोनों कुछ गंभीर लगे मुझे। डॉ० राय ने मेरी गंजी ऊंची की—"एइ पोर्शनटा भाल कर साबान देबन्।" कुछ समय बाद मुझ से किसी ने कहा—"बेटे ने दस्तखत कर दिये हैं कागज पर कि पिता की मृत्यु होने पर वे किसी को उत्तरदायी नहीं ठहराएँगे।" डॉ० दास ने भी लिख दिया है—"मैं रोगी का ऑपरेशन करने को राजी हूं।"

क़रीब पाँच बजे नाई आया। मुझे बाबा कहकर हँसी-मजाक करने लगा। और जहाँ-जहाँ जरूरत थी केश साफ़ कर डाले। छाती और पेट हाथ फिरा कर देखा। पंख की तरह चिकने लग रहे थे।

फिर पेंसिलिन का रिएक्शन देखा। विटामिन वगैरह दिये गए। ऑपरेशन से पहले की सारी तैयारियाँ। मेरे मन में अब और डर न था। कुछ भी हो, लोक-लाज और ऑपरेशन के डर से भागूंगा नहीं, किसी कायर की तरह। शाम हुई, जो भी आत्मीयजन पहुँचे थे सब हँसी-मजाक कर ख़ुश करने में लगे थे। 'मैनईटर्स ऑफ़ सोवो' और अच्छी नहीं लगी। रात में तरल खाना लेकर सोने की चेष्टा की। सब चले गए। केबिन सुनसान। ऐसे समय में मुझे धीरज देने जिस नारी की उपस्थिति मैं चाह रहा था, वह तो सत्रह-अठारह वर्ष पहले ही जा चुकी थी, मुझे छोड़कर। पास बैठकर वह कहती—डरते हो, उधर देखो, वह ही रक्षक है। उस सूने कक्ष में वह चेहरा दिख गया। और फिर देखा फ्रेम में बँधे तीनों ठाकुरों का दृश्य। कुछ समय बाद नर्स आयी। इंजेक्शन देकर चली गयी, मसहरी डाल दी। कहती गई—कल सुबह सात बजे नहा-धोकर रेडी रहना। आधे घंटे पहले बड़ा नाती आया था। बोला—सुबह आठ बजे। आपका नाम नोटिस बोर्ड पर पहले नम्बर पर है। ऑप फ़र्स्ट है। रात में बीच-बीच में कशमकश चलती रही। सोचा एक स्लीपिंग पिल खा लेनी चाहिए थी।

पाँच से पहले ही नींद टूट गयी। दुमंजिले पर ऑपरेशन थियेटर नम्बर वन है। वहीं होगा मेरा ऑपरेशन। पैर के पास वाली खिड़की में आई० सी० यू० में नर्स इधर-उधर हो रही है। मैंने ब्रुश कर दाढ़ी बना ली। हंसी आ गई—किस लिए यह दाढ़ी। कोई इंटरव्यू है या क्लास लेने जा रहा हूँ? ब्रुश के बाद चाय न पी हो ऐसे कुछ ही दिन होंगे—यह दिन उन्हीं में से एक है। मेहतर आ गया,

पेट साफ करने। कस कर रगड-रगड कर नहाया। मानो यही है आखिरी स्नान। पेट में दाना न था, तब भी खूब फ्रेश था। काली पूजा पास आ गई है। हेमंत की भोर खूब रमणीय दिख रही थी। कंघी फिरायी। तौलिया भी रगड़ा। तिनके मे रूई लगा कर कान का पानी निकाला। करता जा रहा था, पर यह भी सोचा कि किसलिए?

नर्स आ गई। कहा—"जल्दी खत्म कर आये! लेट जाइए।" मैं शेल्फ मे रखी जगन्नाथ की फ़ोटो के पास जाकर खड़ा हो गया। कहने लगा—जगदीश! जा रहा हूँ। तुम्हारा कोई बडा भक्त तो नही हूँ। नहा कर एक मिनट तुम्हारी ओर निगह कर लिया करता हूँ। मिल जाता है तो कभी एकाध फूल चढ़ा देता हूँ। वरना वह भी नही। मैंने कभी कुछ माँगा नही। तुम्हारे प्रशस्त पथ की धूल का कण भी नही माँगा। मेरे चले जाने पर तुम्हें कौन-सी कमी हो जायेगी? हर रोज मीलों लम्बी करोडो की प्रार्थना, धूप का धुआँ तुम्हारी ओर मर्त्य से आता है। मुझे दुख यही रह जायेगा कि और फिर तुम्हें देख नही पाऊँगा, कभी! तुम क्या सोचोगे कि फ्रेम मे बाँध कर कोई बूढा रोज़ मुझे देखा करता था, कहाँ गया? 'जय जगदीश।' पास में आइना रखा था। चेहरा देख लिया। बूढा चेहरा कैसा सरस, सुन्दर दिख रहा है। सात बज रहे है। यहाँ अब तक कोई आत्मीय नही आया था। अच्छा हुआ। आँख मे आँसू लिए कही जाना ठीक नही। बेड पर सयाने बच्चे की तरह लेट गया। नर्स ने दो इजेक्शन घोंप दिये। अस्पताल का अर्थ सिर्फ इजेक्शन घोपना। लौटते समय (अगर लौटे) कही जगह बाक़ी नही रह जाती।

मरीज़ ले जाने वाली गाडी आ गई। स्ट्रेचर के साथ। पहिये लगे है, सर्र-सर्र करती किसी ओर नही मुड़ सकती है। दो-चार आदमी यमदूत की तरह ले जाने के लिए साथ में।

—"बस इतना ही" कहकर नर्स फिर एक बार इजेक्शन घोंपने आगे बढी। मैं उस पर गुस्सा नहीं हो पाता। चेहरा कोई ख़ास नही, रंग काला, लेकिन है खूब स्वीट। बातें, आचरण उससे भी बढ़कर। मुझे पिता की तरह मानती। यह इंजेक्शन कुछ और ही तरह का था। औरो का कोई ख़ास पता भी नही चला। लेकिन इसका असर तुरन्त पता चल गया।

स्ट्रेचर को यमदूत मेरे बेड के लेवल तक ले आये। नर्स ने कहा—"उठिये।" कुहनी पर सहारा लेकर मैंने उठने की कोशिश की। ऐं! मेरी सारी शक्ति, सामर्थ्य गई कहाँ? मुझे थामकर गाड़ी पर ले गए। चित लेट गया। अब गाडी चलेगी। चारों ओर देख लिया एक बार। 'मैनईटर्स ऑफ सोचो', आईना, कंघा, पाउडर का डब्बा, घड़ी, कलम आदि। वहां बंधे वे युगल-विशाल नेत्र, जगन्नाथ के देखे। स्त्री का चेहरा याद किया। रथ का पहिया चला। 'जय जगन्नाथ!'

तय किया कि अब आँखें नहीं खोलूंगा। 'सी नो ईविल !' फिर भी मैं अनुभव कर रहा था कि लोग-बाग मेरे रथ का चलना देख रहे है। सोच रहे होंगे—बूढ़े की यह अन्तिम यात्रा है।

लिफ्ट आने में कुछ देर हो गई। स्ट्रेचर का स्वागत कर, लिफ्ट में चढाया। मैं स्वर्ग की ओर उठा। प्रथम द्वार खुला। वे मुझे एक और कमरे मे ले गए। वहाँ जीर्ण वस्त्रों का परित्याग कर नूतन वस्त्र धारण किये। इसका बुरा जरा भी नही लगा। खूब ताजगी महसूस हो रही थी। पृथ्वी की बात नही सोच रहा था। हाथ-पाँव वगैरह हैं भी, ख्याल ही नही रहा। एक और कमरे मे वे ले गए। पहले दल से मुझे दूसरे दल ने ग्रहण किया। कुछ क्षण बाद एक और दरवाजा खुला। मैं समझ गया कि वह ऑपरेशन थियेटर नंबर वन है।

ऑपरेशन टेबुल पर लेटा। आँख खोलकर देखा—ऊपर बड़े-बड़े रिफ्लेक्टर लगे हैं। नर्सें भाग-दौड़ कर ठीक-ठाक कर रही थी। नीरव-निस्तब्ध !

डॉ० दास और डॉ० राय क्या नही आये ? जो करना है जल्दी करें। सोच पाता हूँ, समझ पाता हूँ। इसमे कोई कष्ट या शारीरिक पीड़ा नही अब तक। तभी रोशनी जल उठी। अब तक मेरा डॉक्टर बेटा भी नही आया है। आखिर मैं उससे क्या कहूँगा, कुछ नही सोच पाया। जमीन-जायदाद, फिक्स्ड डिपॉजिट··· ये सब क्या कहना उससे।

मेरी देह क्रमशः परिवेश के साथ स्वयं को उसमें मिलाये दे रही थी। मैं जीरो वाले मुहूर्त की प्रतीक्षा मे था। एक, दो। एक पल हल्की नींद-सी आ गई। अच्छा-सा सपना आ गया। मुझे वह काफ़ी रियल लगा। 'बापू' की आवाज़ ने सपना तोड़ डाला।

ऑपरेशन थियेटर में 'बापू'। मरुप्रदेश में जल कहाँ से आया ? आँख खोलकर उधर देखा। एप्रन, मुखौटा पहने मेरा बेटा खडा है। पूछ रहा है—'बापू' कैसा लग रहा है ? अंग्रेजी प्रोफ़ेसर वाली टेक रखते हुए मैंने कहा—" फ़ाइन, काम, कम्पोज्ड, क्वायट।" वह मेरी ओर देख रहा था। मुझे लगा हिरण्यकश्यप को नरसिंह विदीर्ण कर रहे हैं। वहाँ प्रह्लाद पास में हाथ जोड़े खड़ा है। तुरन्त कहा—"बेटे, याद आये, न आये, कहे देता हूँ, याद रखना। अभी कोई रंग-बिरंगे फूलों का गुच्छा देकर चला गया।" बेटे ने वैज्ञानिक दृष्टि से सोचा होगा कि होश डूब रहा है अतः बापू को आलतू-फालतू चीजें दिख रही हैं। मैं पूछने जा रहा था—डॉ० दास आये ? मगर नही पूछ पाया। गले मे अटक गया। बस !

इसी वक्त समय रुक गया। घड़ी की सुई मेरे लिए तो थम ही गयी। पता नहीं कितनी देर बाद फिर होश आया। सुप्ति और जागने के संधि-स्थल पर मेरा प्रश्न रह गया था—"डॉ० दास आये ?" सुनकर बड़ी बेटी खुशी से गद्-गद् हो उठी। कहा—"हाँ-हाँ"। मैंने फिर कुछ देर बाद पूछा—"ऑपरेशन नहीं हुआ ?"

बेटी ने बताया—'हां, हो गया।" फिर कुछ समय बाद पूछा—"कुछ निकला?" —"हां-हां, कई स्टोन निकले। बेरी सक्सेसफुल ऑपरेशन।" किसी ने बताया।

किसी ने पूछा—"लाहोर में पाकिस्तान का स्कोर क्या है?" तो मैं क्रमशः मर्त्य में लौट रहा हूं! मैंने पूछा—"के बजे हैं" उत्तर मिला—"ढाई।"

मुझे लगा इतनी देर तक गाढ़ी नींद में सोया था। कोई कष्ट या दर्द नहीं। होश आता, चला जाता। मैंने कमरे में चारों ओर आंख फिरायी। यह एक और कमरा है। केबिन है। नाक पर नली, ऑक्सीजन सिलेण्डर, हाथ पर नली, सुई, खून चढ़ाने का यन्त्र। दिया जा चुका है थोड़ा-बहुत बोतल में बचा रह गया। किसी ने कहा—"एक मुसलमान का खून है।" चलो अच्छा हुआ, मेरी नरम प्रवृत्ति अब दृढ़ हो जायेगी। कितने ही लोग मुझे घेरे थे। मैं पी० आई० पी० हो गया था। धीरे-धीरे पृथ्वी पर लौट रहा था। 'चार सौ सात पत्थर।' मेरी पेंशन है चार सौ सात रुपये। मास्टरी करने पर एक रुपया पेंशन पाने के लिए गॉल ब्लैडर में एक ट्रांसुलेंट ऑब्जेक्ट रखना होगा।

पीला पत्ता झर रहा था, जीवन के प्रति ममता फिसलती जा रही थी, किसी ने जादू करके फूल पर अधिक रस लगा दिया। कस कर थामा जीवन को। सुना था कि अड़तालीस घंटे पार होने के बाद नहीं मरूँगा। चौथे दिन बड़ी रोहू मछली के चार टुकड़े। रात में फिर पूरा एक चिकन का स्टीयू खाया। ग्यारह दिन बाद टांके खोले। जिसने खोले, खुद ही कहा—"क्लीन वुंड, सिर्फ़ दाग रह गया है।" आठ इन्च का दाग, पेट खोला गया था सारा। डॉक्टर ने फिर झूठ कहा। सफेद झूठ।

पांचवें दिन एक समधी आये थे। दूर से ही चिल्लाये—"क्यों समधी। ऑपरेशन हुआ या नहीं? खूब ताजा-ताजा लग रहे हो। यह लो।" कहकर मेरे हाथ पर बड़ा-सा गुलाब का एक गुच्छा रख दिया। जैसे कि ऑपरेशन टेबुल पर किसी अदृश्य हाथ ने मुझे रंग-बिरंगा पुष्प गुच्छ दिया था।

मैं अवाक्! जुबान तालू से लग गई।

आज दीपावली की सांझ है। चारों ओर पटाखे। अस्पताल की छत पर रोशनी हुई है। ममता हो रही थी, केबिन के प्रति, नर्सों के प्रति। विजयी सिकन्दर की तरह मैं बेटे की गाड़ी में बैठा। विजय जुलूस में फुलझड़ी और पटाखों को देखते-देखते मैंने अस्पताल छोड़ा। आज मैं मृत्यु को परास्त कर आया था। चला सीधा शहर की सुनसान जगह पर स्थित जगन्नाथ मन्दिर की ओर। वहाँ उस वक़्त आरती, धूप, दीप, कीर्तन आदि चल रहा था।

(अनु०—शंकरलाल पुरोहित)

उर्दू

वीर राजा

श्रवण कुमार वर्मा

**बीर राजा**

जन्म—1930, भटिन्डा में कहानी लिखने की शुरुआत 1950 से। पहली कहानी 'शाहराह' में प्रकाशित। कहानी-संग्रह 'खुले जंगले में शेर' 1952 में प्रकाशित। हिन्दी में भी



काव्य-रचना और कथा-लेखन। अनेक कहानियां विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित।

व्यवसाय—व्यवसाय।

● सेक्टर—5, बी—110, रामगार मित्र नगर, लखनऊ—22601

**श्रवण कुमार वर्मा**

जन्म—1930, लखनऊ में। कथा-लेखन के साथ काव्य-सृजन भी। प्रकाशित कहानी-संग्रह: 'गिरते हुए दरख्त'। श्रवण कुमार नई पीढ़ी के अफसानानिगारों की पहली कतार में



शामिल हैं। मध्यवर्गीय समस्याओं और मानसिकता की गहरी पकड़। उनकी मूल्य-निष्ठ कहानियां मानव-जीवन के बेहतर पहलुओं को उजागर करती हैं।

● 180/11, कूचा लम्बा, अमृतसर —143006

# बीच का फ़ासला

वीर राजा

वह मुझे कनॉट प्लेस के पार्क में मिली, यह सच नहीं, बल्कि उसने मुझे आ पकड़ा। उस वक़्त मैं भूखा लेटा हुआ अपने और आसमान के बीच दहकते हुए गुलमोहर के लाल फूलों को देख रहा था। चिड़ियों की चहचहाहट यातायात के शोर से भी तेज थी, जिसमें आस-पास ताश खेलती टोलियों का शोर घुल रहा था। न जाने भूख के उन लम्हों में जब दूसरे किसी न किसी चीज को जिम्मेदार बनाकर अपनी झल्लाहट मिटाते हैं, उस वक़्त मैं अजीबो-गरीब हरकतें करता हूं।

मैं उठकर खड़ा हो गया। उसे देखने की बजाय इधर-उधर टटोलता हुआ कुछ ढूंढ़ने लगा···वहां मेरा कोई परिचित नहीं था। कनॉट प्लेस की गोल सड़क पर कारें भाग रही थीं। फ़व्वारों से पानी आतिशबाजी के अनार की तरह ऊपर उठ रहा था। पानी की फ़ुहार के पीछे ऊंची बहुमंजिला इमारतें थीं।

—"तुम क्या सोच रहे हो?" उसके चेहरे पर सदा की तरह उसके लम्बे रेशमी बाल आगे को झुक आये थे। उसकी नाव के आकार की मोटी सीप-सी आंखों में चमक के साथ एक उदास गीलापन था, वे जिधर उठ जाती वहीं दूसरा व्यक्ति उसे देखता रह जाता और उस समय ऐसा लगता कि वह दूसरों के अन्दर का सब हाल पढ़ लेती है!···

वही आंखें मुझ पर टिकी थीं। शायद इसीलिए कभी मेरा ध्यान उसके सौंदर्य की ओर नहीं गया था। वह मुझसे सटकर खड़ी थी। उसके जिस्म की तपिश से भी मुझे डर-सा लगा। उसकी चप्पलें धूल में अटी थीं। जाहिर था कि वह मुझे मेरे सभी ठिकानों से ढूंढ़ने के बाद ही आयी थी।

—"चाहो तो शिवाजी स्टेडियम के पास क्लाकटावर चलें," यह उसका दिलपसंद रेस्तरां था, ओपन एयर···"चाहो तो यहीं बैठें। नहीं तो छत वाले काफ़ी हाउस चलें।"

मैं उसकी आवाज भी सुनना नहीं चाहता था। कई आवाजें बुरी नहीं होतीं ···एक खास मुकाम पर ही वे हमें बुरी लगती हैं। अपने अन्दर के किसी प्रेत के कारण ! वह पहली बार मुझसे इतने अपनत्व के साथ बोली थी। क्या ही अच्छा होता अगर वह किसी और समय इस तरह बोली होती !

—"सैलर चलें ?" रीगल की ओर सकेत करते हुए वह खिलखिला कर हँसी, शोख़ी में उसकी आंखें मुंद-सी गयीं।

—"तुम थोड़ी देर यहीं रुको, मैं अभी आया।"

—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।" उसके स्वर में अधिकार था। वह मेरा खेल समझ चुकी थी। भागकर कहीं से कुछ उधार लेने का अब कोई सवाल नहीं था।

—"मुझे तुमसे कुछ पूछना है।" उसकी आवाज में झूठ नहीं था।

—"रेस्तरां में बैठने का मेरा मूड नहीं। हम बाहर ही चलेंगे।" मैंने शेख़ी बघारी लेकिन अंदर ही अंदर डरने लगा कि क्या आज इतना चल पाऊंगा। फिर वह वहां पहुंचते ही सब कुछ भूल जायेगी। किसी कोने में बैठकर ऊपर खुले में उड़ते परिंदों को देखती खोजती, धीरे-धीरे पत्थर उठाकर इधर-उधर फेंकती रहेगी। खुली आंखें बिना झपके एकटक प्राकृतिक सौंदर्य को पीती रहेंगी और बीच-बीच में कुछ याद आने पर छोटी-छोटी पर्चियों पर कुछ लिखकर अपने बैग में भरती रहेगी, मानो उसे सारी बातें शहर से बाहर आते ही कब्रों की अनंत खामोशी और पुरानी इमारतों के पास ही याद आती हों। जो स्केच वह ऐसी जगहों पर अपनी कापी में बनाती, उनका सम्बन्ध प्रायः इस माहौल से न होकर इस माहौल से पैदा हुए मानसिक माहौल से होता।

• पहली बार वह मुझे विपन के साथ काफी-हाउस में मिली थी। विपन कोई बहाना करके वहां से खिसक गया। हम उसकी प्रतीक्षा में बैठे रहे।

—"आपके पास कुछ पैसे हैं ?" वह समझ चुकी थी कि वह लौटकर नहीं आयेगा। वह बुदबुदाती हुई शायद उसकी कायरता को कोस रही थी।

—"आप मेरे साथ तुगलकाबाद फोर्ट चलेंगे ?" काफी-हाउस से निकलते ही उसने मुझसे पूछा था। वहां से सीधे तुगलकाबाद के किले पहुंचे थे हम। किले के ऊपर पहुंच, चारों ओर फैली खामोशी में दूर चलते हुए स्टोन क्रशर की आवाज उस पूरे एकांत माहौल में एक दोस्त जैसी लग रही थी। उसने दूर तक दिखाई देने वाली हर शै को देखा, कापी निकालकर स्केच बनाती रही। फिर इधर-उधर घूमकर एक कोने में बैठ गयी। मैंने ऊबकर पूछा था—"अब चलोगी नहीं ?" वह उस अपार गहराई में डूबी थी और उसकी निगाहें सामने डूबते सूर्य की लाली पर थीं, जो पेड़ों के ऊपर टिक-सी गयी थी। उसने शायद मेरी आवाज़ भी नहीं सुनी थी।

—"नहीं, मैंने फैसला कर लिया है। आज हम दूर नहीं जायेंगे।" उसने मुझे

नीचे से ऊपर तक देखा। क्या मालूम वह मेरी टाँगों मे बसी थकान को भाँप चुकी हो।

उस दिन मैं उससे आगे तो क्या उसके साथ भी नही चल पा रहा था। हमारे बीच का अनहुआ समझौता पहली बार टूटता दिखाई दे रहा था। मेरी टाँगें काँप रही थी। ज़मीन के नीचे मानो दहकते अँगारे जल रहे हो। मैंने पूरा साहस बटोरा—"आज हम कुतुब से भी आगे चलेंगे।" मैं उससे मात खाने के मूड मे नही था। मेरे लहजे में जोश और मर्दानगी थी, जो एक लड़की की मौजूदगी मे प्राय: पुरुषों में आ जाती है···जबकि उस वक्त अभी हम जनपथ पर भी नही पहुँचे थे।

—"तुम बिल्कुल होश में नही हो। मुझे स्कूटर लेना ही पड़ेगा।" उसने इशारे से स्कूटर रोक लिया। उसके स्वर मे हीन-भावना नही थी, अपनत्व था।

—"नही, हम पैदल चलेंगे।" मैंने गुस्से मे कहा।

—"तुम पहले बैठ जाओ। सड़क पर नाटक मत करो।" उसने सख़्ती से कहा।

कुतुब के पास मैंने स्कूटर रोक लिया—"हम और आगे नही चलेंगे।"

"क्यों?"—उसने तुरन्त बैग में से पैसे निकालकर ड्राइवर को दिये। यह इतनी तेजी में हुआ कि ड्राइवर को इतना समय ही न मिला कि वह मेरी ओर पैसों के लिए एक बार भी देख पाता।

वह जरूर समझ चुकी है, नही तो पैसे क्यो देती? जबकि पहले हमेशा मैंने ही पैसे खर्च किये हैं। वह दौड़कर सामने खोखो से दो पत्ते पकौड़ी और एक डबलरोटी ले आयी, जैसे मैं लाया करता था। वह अशोक-पिलर से आगे निकल-कर पीछे वाले खंडहर के पास जाकर बैठ गयी। एक पत्ता और आधी डबलरोटी मेरे सामने रख दी, बिल्कुल उसी तरह जैसे मैं रखा करता था।

शाम तक वही बैठे हम कुतुब पर चढ़े लोगों को ताकते रहे, जो बौनो की तरह दिखाई दे रहे थे। वहाँ से लोग कागजों के टुकड़े नीचे फेंक रहे थे जो हवा मे उधर-इधर उड़ते दूर जा रहे थे। आस-पास चहकते लोगों की मंडलियाँ घूम रही थी। कुछ प्रेमी जोड़े भी एकांत का लाभ उठाने इधर आ निकलते···एक-दूसरे को जल्दी से चूमकर फिर अलग हो जाते। चारो तरफ़ साये लम्बे हो रहे थे। झुटपुटे में ऊपर परिंदो के झुंड भागे जा रहे थे।

—"तुमने मुझसे कुछ पूछना था?" मैंने अपना बोझ उतारना चाहा।

उसने ऊँची मीनार की ओर देखा, वहाँ से परिंदो का बहुत बड़ा झुंड जा रहा था। "बहुत देर हो गयी।" जैसे परिंदो के आने में देर हुई हो, उसकी आवाज परिंदों की आवाजो मे खो गयी। उसने चारो ओर देखा। हवा रुक चुकी थी, जिसने झूमते पेड़ों को बुत की तरह खामोश खड़ा कर दिया था। आसमान गेरुआ होना शुरू हो रहा था। पुरानी दीवारों और मीनार पर पीली धूप सरकती महसूस हो

रही थी। सब कुछ थमता हुआ। कही से कोई आवाज़ आने का भ्रम होता, जो शाम को ऐसी जगह में प्राय: हो जाया करता है।

—"तुमने वह कविता पढ़ी, जिसमे वे दोनों सारा दिन शहर की गलियों, बाज़ारों और उजाड़ो मे घूमकर अन्त में गूंगो की तरह जुदा हो जाते हैं, कवि एक मूक गवाह''' गरीबी बाँटने वाला।" वह इतना आहिस्ता बोल रही थी कि ऊपर से परिंदों की आवाज तो सुनी जा सकती थी लेकिन उसकी नही !'''हर चीज को महसूस करने का एक खास समय होता है'''

—"तुमने मुझसे कुछ पूछना था ?" मैंने कड़े स्वर मे कहा।

—"वह कवि अवश्य अनुभवी होगा जिसने ख़ामोशी को इतने क़रीब से पढ़ लिया'''मैं तुम्हें पूरी कविता सुनाती हूँ।"

—"तुम मेरा अपमान कर रही हो !" मुझे लगा वह मुझे चिढ़ा रही है। मैं ग़ुस्से में खड़ा हो गया।

—"अपमान ?" वह भी चौक कर हड़बड़ाहट मे खड़ी हो गयी। "नही !" उसका स्वर खरा था, जिसमें झूठ की गुँजाइश नही थी।

बाहर लॉन मे सैलानी लडकियों की दो टोलियां फ़िल्मी गीतों का मुकाबला कर रही थीं। रेस्तरां की सब मेज़ो के गिर्द लोग बैठे थे। वह तेज़ी से फ़ाटक की तरफ़ भागी जा रही थी।

स्कूटर मे हम चुप थे। सरकारी ट्यूबों का नीला प्रकाश पूरी सडक पर फैला था। सामने से आती हुई कारों की तेज़ रोशनी आँखो को चौंधियाकर एक पल के लिए अंधा-सा कर देती। जैसे ही कार आगे निकल जाती फिर सब कुछ दिखायी देने लगता। सफदरजग ओवर ब्रिज से हवाई अड्डे की पट्टी पर लगी बत्तियाँ जुगनुओं की तरह दीख रही थी। पुल के बीचों-बीच धरती से चिपकी तिरछी बत्तियों की रोशनी कभी बुझती कभी जलती-सी आँख-मिचौली करती प्रतीत होती जैसे एक के बाद एक बत्ती हमे देखकर अपनी आँख खोल रही हो'''

मेन बाजार के पास उसने स्कूटर रोक लिया—"हम बाजार से होकर घर चलेंगे।" मुझे घर का नाम सुनते ही हँसी आ गयी।

घर !'''मैंने अभी इसका अर्थ नही समझा। जहाँ अपनी अटैची, वही अपना घर। एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा। इसी तरह एक लम्बा सिलसिला। एक सैलानी के कई घर, कई जगहों पर। घर का नाम आते ही कितने घर याद आ रहे हैं'''जहाँ गरमाहट होती है। कुछ घर ठण्डे और उदास होते हैं, एकदम अकेले। कुछ घरो की खिड़कियाँ हमेशा अदर को खुलती हैं, जहाँ से कोई रास्ता बाहर नहीं आता। कुछ घर मोटी दीवारों और छतों से घिरे होते हैं, जिनके दरवाज़ों पर भारी भरकम परदे गिरे रहते हैं, वहाँ एक रहस्य मे डूबा मसार होता है, बहुत सूक्ष्म। कुछ घर मैंने ऐसे भी देखे हैं, जहाँ मुझे एक सुकून, एक तसल्ली'''एक सपने

की तरह मिली। ऐसे घरों में पहुँचकर मुझे ऐसी बातें याद आती जिन्हें अभी मुझे पूरा करना है और जिन्हें मैं भूला रहता हूँ। ऐसे घरों की खिड़कियाँ, दरवाजे हमेशा बाहर को खुलते हैं, जहाँ से रास्ते शुरू होते हैं। उन घरों में जाकर मन में हमदर्दी उभरती है, उनके प्रति जो नशे में डूबकर अपने अँधेरे कमरों में बैठे रोशनी ढूंढते हैं। मेरी बेघर जिंदगी में दूसरे घरों की एक कतार है, जहाँ बचपन में एक छोटे-से घर की तस्वीर भी है, जहाँ हर वक्त सीलन, अचार और सब्जियों की बू उठती रहती थी। चारपाई पर माँ पड़ी बुदबुदाती रहती कि मुझे कोई तकलीफ़ नहीं, मैं चंगी हूँ। जब तक वह रही, मैं भी वहाँ जुड़ा रहा। माँ के बाद एक लम्बा माहमवार सिलसिला···वहाँ से आने से यहाँ तक। घर के नाम से मेरा बहकना वाजिब है और वहाँ जाना भी···लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्यों हँसा।

—"तुम क्यों हँसे ?" उसने बाजार की ओर मुड़कर पूछा।

—"यूँ, ही, लेकिन मैं इधर से नहीं जाऊँगा। मैंने लोगों के पैसे देने हैं।" मैंने सच बोला।

—"फिर क्या हुआ ? हम कायर नहीं है, उन्हें फेस करेंगे।"

हम चुपचाप चलते रहे। किसी ने मुझे न टोका, न कोई तकाजा हुआ। किसी ने एक आवाज भी न दी, जबकि मन में आने वाले अपमान से निपटने की निरंतर सोच रहा था। ढाबे के सामने मेरे लिए रुकना दूभर था। वह कभी-कभी मेरे साथ यहाँ आया करती थी। उसके पहुँचते ही वहाँ हर चीज में हरकत आ जाती। सबके चेहरों पर ख़ुशी दौड़ जाती। काम करने वाले लड़के आँखों से इशारे करके चहकते कि माल आ गया। ग्राहकों की नजरें उसके जिस्म पर चिपकी रहतीं। वहाँ जो सुविधाएँ और उधार मिलता वह सब उसी के कारण। उस पर इसका कोई असर न पड़ता। लेकिन यही बात मुझमें कड़वाहट भरती। हमारे पहुँचते ही वहाँ खलबली मच गयी। वह रोटियाँ और सब्जी पैक कराने लगी। "शाहजी कहाँ आये ? कोई चीज कम तो नहीं न ?" ढाबे का मालिक मेरे पास खड़ा हँस रहा था। उसके तीनों सोने के दाँत अधिक हँस रहे थे···मेरी मित्र के लिए, मेरे लिए नहीं।

—"तुमने यह अच्छा नहीं किया।" मैंने कहा।

उसने मेरी ओर देखा भी नहीं। तभी मुझे वह दिन याद आया जब पहली बार क्लॉक टावर में मुझे रोक कर उसने एक बराबर के मित्र की तरह बिल चुकाया था। मैं अन्दर ही अन्दर चौंका था कि पहली बार एक लड़की ने एक मर्द की तरह के पूरे अधिकार से पर्स से पैसे निकाले थे। मेरी मौजूदगी में। उस दिन पहली बार मैंने उसके चेहरे को ग़ौर से देखा था और वह मुझे अच्छी लगी थी। फिर आज क्यों सहन नहीं कर पा रहा था मैं उसे ?

—"तुमने अच्छा नहीं किया !" मैंने उसे रोक कर फिर कहा।

—"मैंने सब बिल चुका दिये हैं। तुम्हारा सामान भी ढावे से उठा लायी हूँ", उसने खाने का बंडल मुझे पकड़ा दिया—"और तुमने मुझसे झूठ भी बोला कि तुम बाहर गये हुए थे।"

—"तुमने मुझे ज़लील किया है!" मैंने क्रोध में उसे ज़ोर से चीखा, "तुम्हें मालूम नहीं कि पूरी जिंदगी मैंने किसी से कुछ माँगा नहीं। तुम मेरा सामान बेचकर अपने पैसे पूरे वसूल कर लेना। तुमने मुझ पर तरस खाया है।" मैंने *मध्यवर्गीय शान से कहा।*

—"तुम यहाँ से चले जाओ, फिर कभी अपनी सूरत न दिखाना।" उसने अंग्रेजी में कहा और मुंह दूसरी ओर फेर लिया। "कल तुम्हारा सामान ढावे पर छोड़ दूंगी। तुममें और दूसरों में क्या फर्क है?"

फ़र्क शब्द एक गाली की तरह लगा, जो मुझे अन्दर तक चीर गया। उसके लिए यह अविश्वास की बात थी कि मैं ऐसी भी बात कह सकता हूँ" मैं भी अचरज में था कि मैंने मन में तो ऐसा नहीं सोचा था फिर क्यों'''? कई बार मेरी जिंदगी में ऐसे अवसर आते हैं, जिनसे मुझे स्नेह होता है, उनसे बातें करते-करते मुझमें अपने-आप एक तनाव आ जाता और मैं एक ओछे आदमी की तरह व्यवहार करने लगता हूँ'''खोज और क्रूत में अपने पर कोई नियंत्रण नहीं रहता। कई गन्दी बातें मुँह से निकल जाती, जो मेरी नहीं होती। मुझे लगता जैसे मैं वह बनना चाहता हूँ जो मैं नहीं हूँ।

वह दूसरी ओर मुंह करके खड़ी थी। रास्ते में यूं खड़ा देखकर हर कोई हमें हैरानी से देखता।

—"*मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि कोई हमें भिखमंगों की तरह समझे।*" उसकी आवाज भर्रायी थी। मैं उसे देखता रह गया। उसने गाली से भी बड़ा थप्पड़ मुझे मारा। वह वही थी, लेकिन मुझे एक लम्हे में बदली हुई लगी। उसका पूरा अर्थ ही बदल गया। अन्दर अपराध भावना जगी कि कहीं मैं अनजाने में उसे एक लड़की'''और अपने से हीन समझकर तो सलूक नहीं करता रहा? नहीं तो एक लड़की की मदद मैंने उस तरह क्यों स्वीकार नहीं की जैसे किसी पुरुष मित्र से कर सकता था! यदि उसने मेरा तिरस्कार किया, तो मैं क्या करता आया हूँ आज तक इसके साथ?''''"नहीं तुम्हारा क्या कसूर? दोष तो मेरा है। फिर तुम्हारे लिए तो मैं अजनबी हूँ।"

—"तुम अजनबी हो?" उसने मुझे घूरा—"यह तुम कह रहे हो?"

—"हम दोनों ही।" मैंने गरमजोशी से उसका हाथ पकड़ लिया।

—"सच!" वह मुझसे सट गयी, उसकी गरम साँसों का स्पर्श मेरे चेहरे को छूने लगा। "मैं बराबर तुम्हें ढूंढती रही, जब पता चला कि तुम्हारा कमरा छिन गया है तो मैं सोचती रही'''तुम कहाँ रहते होगे? कहाँ सोते होगे? कहाँ पढ़ते-

लिपते होंगे ?"

"मुझे माफ कर दो !" मैंने भरकर कहा।

—"मुझे नही मालूम तुम मुझे क्यों अच्छे लगते हो ! तुम्हारे साथ रहकर एक लड़की न होकर एक मित्र की तरह स्वतन्त्र होती हूँ। दूसरे, दो बातों के बाद फिसलकर नंगे हो जाते हैं और वही आ जाते हैं, जहाँ औरत के पास एक आदमी को आना होना है। शिष्टाचार मे कही बातो के अर्थ भी दूसरे निकालते है लोग।" उसने पँले से सिगरेट का पैकेट निकालकर दिया—"तुम्हारे लिए लायी थी।" मैंने सिगरेट सुलगाकर पिछली बीती खामोश मुलाकातो और गूंगेपन की तरफ़ पहली बार ध्यान दिया, दूसरे अर्थों मे।

—"पहली बार मैंने तुम्हें मित्रों मे घिरे कहते सुना था कि तुम अपने मिशन के लिए भूख बर्दाश्त कर सकते हो, बिना टूटे हुए। शायद उस दिन किसी ने तुम्हारा तिरस्कार करना चाहा था और तुम आवेश मे उबलकर बोले थे। सच पूछो, मैं भी इसी लिए ज़िंदा हूँ। बहुत बातें भरी है अंदर, लेकिन उसे कोई सुनता ही नही था। हां, दूसरों की बनी दुनिया के कारण हम क्यों नष्ट हों ? उसमे रहना तो मजबूरी है। फिर क्या हम दुनिया छोड़ दे ? रहे तो हँस कर क्यो न रहें ?"

यह तमाचा था मेरे उस चेहरे पर, जो बिलावजह एक झूठी शान के लिए सबसे छिप रहा था""जो अपने समय में विद्रोह करके कुछ प्राप्त करते है, बाद मे वही दूसरो को वह अधिकार क्यो नही देते ? मां और पिता की शादी भी एक ऐसा ही विद्रोह था। परन्तु अब वही बातें उन्हें अपनी सन्तान के लिए ग़लत लगती हैं।"

—"तुम घर से लड़कर आयी हो ?" मैंने उसे टोका।

—"तुम तो ऐसे पूछ रहे हो जैसे मैं कोई गुड़िया हूँ। मैं अपने निर्णय स्वयं ले सकती हूँ।" स्वयं शब्द पर उसने पूरा बल दिया। न जाने यह सख़्ती घरवालो के लिए थी या मेरे लिए।

—"मुझे वह लड़का पसंद नही था, न ही पुरानी बातें, जो वह दोहराना चाहते थे। पिता मुझे अपने मित्र के लड़के के साथ स्थापित करना चाहते थे।"

मैंने हैरानी से देखा। पहली बार उसके बारे में कुछ मालूम हुआ था। समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसी लड़की आज तक चुप क्यो रही।

—"हां-हां, वही लेन-देन भी।" वह ज़ोर से हँस पड़ी—"पिता सैल्फमेड आदमी हैं, उन्हें दूसरों की हर बात ग़लत लगती है। हर किसी पर अपना अधिकार चाहते हैं। उन्हें देखकर लगता है कि वह थोड़ा आगे इसलिए आये थे कि फिर पीछे लौट जायें…जहां से ज़िदगी शुरू होती है, वही ख़त्म कर ली उन्होंने। हमारे यहां सभी प्रेम विवाह इसी अंत में ख़त्म हो जाते हैं।…फिर पिता को

मेरी पेंटिंग भी व्यर्थ लगती है।"

उसका स्वर दूसरों से कितना अलग था। दूसरे एक फ़रार की तरह एक माहौल से भागकर थोड़ी दूर पर ही कुछ आपस में बाँटने लगते हैं और उस छोटे अनुभव को सुखद समझकर अपने पुराने संसार में लौट आते हैं ''ऐसे लोग, ऐसे स्वर-दूसरों के लिए कशिश तो हो सकते हैं, होते भी हैं, लेकिन उनकी गोपनीयता में रोमानीपन होता है'''रहस्य में डूबा, लेकिन वे अपने में पूर्ण नहीं होते'''

मन में बार-बार उठता कि उससे कुछ पूछूं। मगर रुक जाता कि कहीं वह यह न सोच ले कि मैं भी कैसी बातें पूछ रहा हूँ, जैसी लोग भगोड़ों से अपनी जिज्ञासा के लिए पूछते हैं, ख़ासकर लड़कियों से।

—"पिछले दिनों माँ आयी थी।" उसने कुछ इस तरह चौंक कर कहा जैसे कोई बिसरी बात अचानक याद आयी हो—"बोली, पिता से माफ़ी माँग लूँ तो घर लौट सकती हूँ। मुझे सुनते ही हँसी आ गयी, माँ का स्वर ऐसा था मानो मैंने लौटने की प्रार्थना की हो।" वह अब भी इस तरह हँस रही थी जैसे माँ उसके सामने हो—"माँ समझदार है, मगर शादी के बाद वह पिता की मर्जी के मुताबिक ढलती रही, दूसरी औरतों की तरह ही। वह सुविधाओं की भूखी नहीं, तब भी, उसमें अपना वह कुछ नहीं रहा जो नितांत अपना होता है। जैसे पिता ने कहा होगा उसने यहाँ आकर उगल दिया होगा।"

—"माँ लौट गयी?"

—"तो क्या रहने आयी थी? कहीं उसने सारी उम्र कुछ छिपाया है, अपने से भी और दूसरों से भी। जाते हुए वह चोरी से पैसे और यह पत्र मेरे बैग में रख गयी थी।" उसने मुड़ा-तुड़ा पत्र मुझे पकड़ा दिया। क्या उसकी माँ ऐसी है? क्या यह इतनी बारीकी से नीचे तह तक उतर जाती है? पत्र में न जाने क्या भेद हो!

गर्म हवा कभी-कभी हमें छू जाती। सड़क में अभी तपिश थी। बिजली के खंभों के नीचे रोशनी के दायरे धुँधले थे। यातायात अपनी गति पर था। हम दोनों खामोश चल रहे थे। लेकिन मेरे अन्दर कुछ परतें अपने आप खुलती जा रही थीं'''जैसे उन पर से कोई पर्दा उठता जा रहा हो। कुछ बातें एक झटके की तरह सामने आती हैं, जो भावुक-सा बनाकर यादों को, ओझल चीजों को, एक तेज गति देती हैं। उस वक़्त मेरा दिमाग विचारों के भँवर में घूमता है। लेकिन संबंधों के मामलों में ऐसा नहीं होता और न ही मैंने संबंध कभी नपे-तुले तरीके से बनाये हैं। वह तो धीरे-धीरे अपने-आप अनजाने में बनते रहते हैं'''जब उनका गौण अनुभव होता है तो चौंकने की जरूरत नहीं होती। पिछली बातें अपने-आप खुलने लगती हैं। उन्हीं बातों को हम सहज ही स्वीकार नहीं कर पाते। मैं इन नये संबंधों को, जो दरअसल, पुराने ही हैं, केवल मेरे लिए ही अपने मानी में नये हैं'''इनके लम्बे सिलसिले को पकड़ने लगा'''

मुझे अचरज होने लगा। क्या वास्तव में संबंध होते भी हैं? वे तो हमेशा बदलते रहते हैं। हम उन्हें अपने स्वार्थ से एक सीमा तक महसूस करते मालूम होते हैं।

पिछले दिनों जो हालत मेरी रही, वह मेरे अपने ही कारण थी। उस पर किसी का कोई दबाव नहीं था। न किसी का कोई डर, तब भी मुझमें एक संदेह हमेशा बना रहा। मैं क्यों कतराता रहा? जबकि मुझे कभी बेकारी की चिंता नहीं रही। अपने उद्देश्य की ख़ातिर कभी बरसरे-रोजगार कहलाने का शौक नहीं जागा। मेरा उद्देश्य? यह भी खोखला ही लगा। किसी पिछड़े हुए भावुक की तरह। पूर्ति और सुरक्षा जैसे शब्द कहीं व्यर्थ लगे। मैं वहाँ भी न गया जहाँ से जिंदा रहने के लिए मुझे अपनी मर्जी का काम मिल सकता था।

···क्यों?

मेरे अन्दर का संकेत उस तरफ था, जहाँ जाकर एक अंत होता है तो एक आरम्भ भी होता है। जरूरतों और जिम्मेदारियों को जहाँ से एक ढर्रे पर चलने में ऊब होने लगती है। एक संदेह की तरह।

—"माँ ने हमारे संबंधों को बुरी निगाह से ही देखा। जब तक वह रही, एक संदेह से भरी रही। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि कोई इतना लम्बा अरसा बिना शारीरिक संबंधों के कैसे रह सकता है! बाहरी तौर पर उन्होंने मुझे ताना मारा था कि चलो तुमने ढूंढ तो लिया, लेकिन भाव वही था कि बाद में पछताओगी। चलते हुए माँ ने कहा था···कम से कम एक डर कम हुआ कि मैं बहुत से लोगों की अकेली प्रेमिका नहीं हूँ!···उस वक़्त मैंने माँ को गाली दी थी!" उसने चुप्पी के बाद बातों को छूटे सिरे से जोड़ा तो सब भारी-सा लगा। तभी उसके स्वर में किसी डर की परछाईं आ गयी—"जिस दिन माँ यहाँ थी, विपन पीकर आया था। उसे मैं कई बार पहले भी भगा चुकी हूँ। वह भी वही है जो दूसरे हैं। उससे मेरी हाथापाई भी हुई थी।"

—"तुमने मुझे क्यों नहीं बताया?" मुझे ख़ुद ही अपनी बात पर शर्मिंदगी महसूस हुई और जो क्रोध उठा था वह भी ढीला पड़ गया। उसने तेज चमकती आँखों से मुझे देखा। एक मुस्कराहट उस पर तारी हो गयी—"वह अब कभी नहीं आयेगा।" मैं चुप रहा।

—"माँ ने जाने से पहले मुझसे माफ़ी माँगी थी, उसकी सब धारणाएं बदल चुकी थी। उसे यह विश्वास हो चुका था कि दो व्यक्तियों का संबंध इस तरह भी हो सकता है। मैंने साफ कहा था कि अगर मुझे तुम या कोई दूसरा आदमी पसन्द होगा तो मैं उससे अपने शारीरिक सम्बन्ध तुरन्त बना लूंगी, छिपाऊंगी नहीं।"

मेरा हाथ जेब में चला गया, अनायास उस पत्र के भेद को जानने की जिज्ञासा बढ़ने लगी···क्या है उसमें?

तरफ देखा।

—"नही, इसकी कोई जरूरत नही। मुझे तुम्हारी तरफ़ छोटी-छोटी पर्चियो पर लिखने की आदत अच्छी लगती है, इसे मैं भी अपना चुका हूँ। बाहरी व्यवहार से हटकर जो अन्दर सोचते है, महसूस करते है उसे समेटकर याद रखने का इससे अच्छा दूसरा कोई तरीका नही···लेकिन तुम्हें मेरे बारे मे ये बातें किसने बतायी ?"

"मैंने दूसरे दिन पैसे माँ को वापस भेज दिये और लिख दिया, आइंदा कभी मुझे कोई पैसा न भेजे।" उसने मेरी बात का जवाब नही दिया। कोई रहस्य उसके अन्दर जरूर था।

···—"खाना निकालो, मुझे भूख लगी है।" कहती हुई स्वयं ही कोने मे रखी टोकरी से वह प्लेटें निकालने लगी—"जानते हो, माँ ने तुम्हारी भी सारी डायरियाँ पढ़ डाली। दूसरों की आत्मकथाएँ पढना माँ की कमज़ोरी है। उसके पास सैकड़ो ऐसी किताबें हैं।" उसने मेज खाली करके पास मढे रख दिये। बीच में लगे पर्दे को बिलकुल दीवार के साथ सटा दिया जो दो पुरानी साड़ियों को जोड़कर बना था, जिसके नीचे छोटे घुघरू लगे थे, जो कमरे की ख़ामोशी को तोड़कर बज उठे···एक बचकानेपन मे।

—"तुम्हारी माँ दूसरों के जीवन में ख़ुद को ढूँढती है···।" वह हँसती हुई सुराही से गिलास में पानी उँडेलती ठिठक गयी। उसकी आखों की चमक एक क्षण को लुप्त हो गयी और परिचित उदासी लौट आयी····"और उन्हें अपनी भूली हुई बातें याद आती है, दूसरों की ज़िंदगी के साथ-साथ चलकर ही।" उसकी उदास गीली आँखों में फिर हर्ष था, जो विभोर-सी उदासी मे गड्मड् था—"तुमने मेरी माँ की तस्वीर भी नही देखी अभी!"

—"तुममें इतना आजाद रहने की जिद कहाँ से आयी?"

—"जिद!" उसने चौककर मेरी ओर देखा। वह कही कुछ-कुछ ढूँढ़ती, टटोलती-सी लगी—"माँ के प्रति स्नेह और तरस ने ही शायद मुझे उकसाया···। बाद में पिता, माँ को बात-बात पर डाँटते, पीट भी देते···। शुरू मे माँ सामने बोलती; बाद में चुप रहने लगी। दूसरो की मौजूदगी में वह अपमान बर्दाश्त कर लेती···ऐसे ही कारण हो सकते है।"

लेकिन अन्दर कही एक हौल-सा उठ रहा था। मन उन बातों और उन जरूरतो की तरफ़ भाग रहा था, जो यहाँ आते ही शुरू हो जायेंगी। सारी उम्र अकेले रहने के बाद यह डर स्वाभाविक था। फिर दूसरों के पास पहुँचते ही मेरी कोई जरूरत नही रहती। यह घुमावदार रास्तो से चलने के बाद की आदत है, जो मुझमें है। यह इतने छोटे कमरे में कैसे काम करेगी? दोनो की जीविका की गाड़ी कैसे चलेगी···?

# चील

●

**श्रवण कुमार वर्मा**

सिफ़ारिश के बाद नौकरी मिली तो रिहाइश का मसला पैदा हो गया। दिन-भर दफ्तर में काम करता, सुबह-शाम कमरा तलाश करता। कुछ तो ऐसी बस्तियों में मिलते जहां पुलिस का आना-जाना रहता। कहीं किराया इतना ज्यादा रहता कि कुछ और बनने को जी चाहता। रात एक मन्दिर के बरामदे में चटाई पर करवटें बदलता तो भगवान की लीला का मज़ा आ जाता। आख़िर पुजारी जी को मेरी हालत पर तरस आ गया, या शायद वह मन्दिर में सेवा करने वालियों, जो देर-सवेर आया करती थीं, के ख़याल से मजबूर हुए कि उन्होंने अपनी एक परम भक्तिन से मेरी पुरज़ोर सिफ़ारिश कर दी। इकहरे बदन और गहरे सांवले रंग की ख़ुश्क-सी उस औरत ने मुझे सर से पांव तक देखा, जैसे कमरे के लिए नाप-तौल रही हो। मैं उस दौरान सर टिकाए ख़ामोश खड़ा रहा। आख़िर उसने पूछा—"कितने बच्चे हैं?"

—"जी, अभी तक तो शादी ही नहीं हुई।"

—"शोर-शराबे से मेरा भी जी घबराता है।"

वह खुरदरे से लहजे में बोली—"पुजारी जी, आप इन्हें सब समझा दें···किराया पचास रुपये महीना होगा। बिजली के पैसे अलग।" उसका लहजा कारोबारी था।

जब वह प्रसाद लेकर चली गई तो पुजारी जी गाव-तकिए के सहारे बैठ गये—मुझे भी बैठने के लिए कहा। चन्द सेकेन्ड किसी की जन्म-पत्री देखते रहे। मैं दीवारों पर लटकी धार्मिक तस्वीरों में भगवान की लीला देखता रहा। जन्म-पत्री लपेट कर पुजारी जी बोले—

—"देखो बेटा, शान्ति देवी बेवा है। शादी के दो माह बाद उसके पति का स्वर्गवास हो गया था, तब से वह बहुत चुप-सी रहने लगी है। इससे कम किराये पर किसी अच्छी जगह कमरा मिलेगा भी नहीं।

# चील

●

श्रवण कुमार वर्मा

सिफ़ारिश के बाद नौकरी मिली तो रिहाइश का मसला पैदा हो गया। दिन-भर दफ़्तर मे काम करता, सुबह-शाम कमरा तलाश करता। कुछ तो ऐसी बस्तियो मे मिलते जहाँ पुलिस का आना-जाना रहता। कही किराया इतना ज्यादा रहता कि कुछ और बनने को जी चाहता। रात एक मन्दिर के बरामदे मे चटाई पर करवटें बदलता तो भगवान की लीला का मज़ा आ जाता। आख़िर पुजारी जी को मेरी हालत पर तरस आ गया, या शायद वह मन्दिर मे सेवा करने वालियों, जो देर-सबेर आया करती थी, के ख़याल से मजबूर हुए कि उन्होंने अपनी एक परम भक्तिन से मेरी पुरज़ोर सिफारिश कर दी। इकहरे बदन और गहरे साँवले रंग की ख़ुश-सी उस औरत ने मुझे सर से पाँव तक देखा, जैसे कमरे के लिए नाप-तोल रही हो। मैं उस दौरान सर टिकाए ख़ामोश खड़ा रहा। आख़िर उसने पूछा—"कितने बच्चे है?"

—"जी, अभी तक तो शादी ही नही हुई।"

—"शोर-शराबे से मेरा भी जी घबराता है।"

वह खुरदरे से लहजे में बोली—"पुजारी जी, आप इन्हें सब समझा दें···किराया पचास रुपये महीना होगा। बिजली के पैसे अलग।" उसका लहजा कारोबारी था।

जब वह प्रसाद लेकर चली गई तो पुजारी जी गाव-तकिए के सहारे बैठ गये—मुझे भी बैठने के लिए कहा। चन्द सेकेन्ड किसी की जन्म-पत्री देखते रहे। मैं दीवारों पर लटकी धार्मिक तस्वीरों मे भगवान की लीला देखता रहा। जन्म-पत्री लपेट कर पुजारी जी बोले—

—"देखो बेटा, शान्ति देवी बेवा है। शादी के दो माह बाद उसके पति का स्वर्गवास हो गया था, तब से वह बहुत चुप-सी रहने लगी है। इससे कम किराये पर किसी अच्छी जगह कमरा मिलेगा भी नही।

# चील

●

## श्रवण कुमार वर्मा

सिफ़ारिश के बाद नौकरी मिली तो रिहाइश का मसला पैदा हो गया। दिन-भर दफ़्तर में काम करता, सुबह-शाम कमरा तलाश करता। कुछ तो ऐसी बस्तियों में मिलते जहाँ पुलिस का आना-जाना रहता। कहीं किराया इतना ज्यादा रहता कि कुछ और बनने को जी चाहता। रात एक मन्दिर के बरामदे में चटाई पर करवटें बदलता तो भगवान की लीला का मज़ा आ जाता। आख़िर पुजारी जी को मेरी हालत पर तरस आ गया, या शायद वह मन्दिर में सेवा करने वालियों, जो देर-सवेर आया करती थी, के खयाल से मजबूर हुए कि उन्होंने अपनी एक परम भक्तिन से मेरी पुरज़ोर सिफ़ारिश कर दी। इकहरे बदन और गहरे साँवले रंग की ख़ुश-सी उस औरत ने मुझे सर से पाँव तक देखा, जैसे कमरे के लिए नाप-तोल रही हो। मैं उस दौरान सर टिकाए खामोश खड़ा रहा। आख़िर उसने पूछा—"कितने बच्चे हैं?"

—"जी, अभी तक तो शादी ही नहीं हुई।"

—"शोर-शराबे से मेरा भी जी घबराता है।"

वह खुरदरे से लहजे में बोली—"पुजारी जी, आप इन्हें सब समझा दें'''किराया पचास रुपये महीना होगा। बिजली के पैसे अलग।" उसका लहजा कारोबारी था।

जब वह प्रसाद लेकर चली गई तो पुजारी जी गाव-तकिए के सहारे बैठ गये—मुझे भी बैठने के लिए कहा। चन्द सेकेन्ड किसी की जन्म-पत्री देखते रहे। मैं दीवारों पर लटकी धार्मिक तस्वीरों में भगवान की लीला देखता रहा। जन्म-पत्री लपेट कर पुजारी जी बोले—

—"देखो बेटा, शान्ति देवी बेवा है। शादी के दो माह बाद उसके पति का स्वर्गवास हो गया था, तब से वह बहुत चुप-सी रहने लगी है। इससे कम किराये पर किसी अच्छी जगह कमरा मिलेगा भी नहीं।

सुनाई दी। कोई दरवाजा चरचरा कर खुला, कुछ बर्तन बजे, नल से पानी गिरने की आवाज आई। स्टोव फकफकाने लगा। फिर वही गहरा सन्नाटा छा गया। मैं कमरे से निकल कर स्कूल के पिछवाड़े से होता हुआ रेलवे लाईन पार करके खेतों में चला गया। सारा दिन वहीं गुज़ार दिया। रात का खाना खाकर लौटा तो शान्ति देवी उस बूढ़ी औरत से बातचीत मे व्यस्त थी। उसने मुझे जैसे नाराजगी से देखा। मैं चुपचाप अन्दर सटक गया।

जब मोहल्ले में ख़ामोशी छा गयी तो बीच वाला दरवाजा आहिस्ता से खुला और शान्ति देवी दहलीज़ के पार खड़ी नज़र आई।

—"कमरे का ताला लगाकर क्यो नही गए?"

—"था नहीं, बाजार से भी नही मिला।"

—"सोओगे ज़मीन पर?"

उसने कमरे का जायजा लेते हुए कहा ''।

मैं चुप रहा। वह दरवाजे से हट गई। दूसरे ही पल खजूर की एक झाड़ू पटाख़ से आ गिरी और दरवाज़ा बन्द हो गया। मैंने फर्श बुहारा और बिस्तर जमीन पर लगा दिया। रात को ख्वाब में एक बार पुजारी जी दिखाई दिये और फिर ताले और चारपाइयाँ घूमती रही।

अगले दिन मैं ताला ले आया। जब दफ़्तर के लिए निकला तो मोहल्ले की औरतें मुझे इस तरह देखने लगी जैसे पहले कभी पूरा मर्द देखा ही न हो। दिन-भर दफ़्तर में काम किया। शाम को अपने एक साथी को कमरे, शान्ति देवी और उसकी शर्तों से आगाह किया तो उसने कहा कि ऐसे कमरे में रहने से तो बेहतर है कि रेलवे प्लेटफ़ार्म पर रहूँ या फिर फ़ौरन भगवान की शरण में चला जाऊँ।

—"लेकिन यार, भगवान की शरण में आदमी हमेशा तो नही रह सकता!"

—"क्यों नही रह सकता? ख़ुद भगवान ने गीता मे ऐसा कहा है।"

—"गीता मे कहा है, पुजारी जी से तो नहीं कहा। कोई और हल तलाश करो।" फ़ैसला यह हुआ कि वह अपने घर से एक तख़्त जो वहाँ बेकार पड़ा था भिजवा देगा। और मेरे लिए किसी और मुनासिब जगह का इन्तज़ाम करा देगा।

जब शाम को कमरा एक कुँआरे के लिए तैयार हो गया तो मैंने इत्मीनान की साँस ली, लेकिन मैं दफ़्तर से सीधा घर नहीं आ सकता था क्योंकि दीवारों से बात करना मुझे अच्छा नही लगता था। रात के खाने से निपट कर नौ बजे के बाद कमरे मे लौटता, कुछ देर पढ़ता और सो जाता।

शान्ति देवी किराया और अपनी झाड़ू वापस लेकर मुझे भूल चुकी थी। लेकिन अगली पहली को बीच का दरवाज़ा खुला और शान्ति देवी दहलीज़ से उधर नही, इधर आ खड़ी हुई। मैंने उसे किराया दिया तो वह रुखाई और

शरीफ़ों का मोहल्ला है। इसलिए पूरी अहतियात और जिम्मेदारी से रहना होगा। पिछली तरफ़ लड़कियों का स्कूल है, इसलिए तुम छत पर नहीं जाओगे। नहाओगे बाहर, कमरे में यार-दोस्तों को जमा करके हुल्लड़बाजी भी नहीं करोगे। रेडियो सुनना हो तो नीची आवाज में, और रात को देर से नहीं आओगे।"

मैंने सोचा कि इससे कहीं बेहतर है कि आदमी जेल चला जाए। मैं ख़ामोश रहा क्योंकि वह कॉलोनी मेरे दफ़्तर से क़रीब थी। खाने-पीने की भी सहूलियत थी।

"शान्ति देवी अच्छी औरत है, लेकिन सख्तमिजाज, अपने काम से मतलब रखने वाली। पिछला किरायेदार उसने सिर्फ़ इसलिए निकाल दिया था कि वह एक बार छत पर गया था और स्कूल की हैड मिस्ट्रैस ने शिकायत की थी।"

मैंने सोचा कि स्कूल के समय में, मैं दफ़्तर में रहूँगा। यूँ भी नौकरी मिलने के बाद गाँव में मेरे रिश्ते की बात होने लगी थी। मैं छत पर जाकर क्या करूँगा।

अगली सुबह मैंने भगवान को प्रणाम किया, पुजारी जी के चरण छुए और अपना मुख़्तसर-सा सामान लेकर शान्ति देवी के घर जा पहुँचा। पहले तो उसने मुझे पहचाना ही नहीं, जब पुजारी का हवाला दिया तो उसे याद आ गया। मुझे दरवाज़े पर छोड़कर वह अन्दर चली गई। फिर बाहर वाले कमरे का दरवाज़ा खुला और मुझे अन्दर बुला लिया गया।

छोटा-सा कमरा था। छत से बिजली के तार से बल्ब होल्डर ख़ाली लटक रहा था। यानी बल्ब का इन्तज़ाम मुझे करना था। गली ही की तरफ़ से खुलने वाली एक छोटी-सी खिड़की थी। बिना किवाड़ के अलमारी थी। और बस— मुझे इससे ज्यादा की ज़रूरत भी नहीं थी।

शान्ति देवी ने मेरा सामान देखा, दरी में लिपटा बिस्तर, एक पुरानी-सी अटैची, तीन-चार किताबें और साइकिल। मैं उसकी मौजूदगी में बड़ी उलझन-सी महसूस कर रहा था। मैंने जेब से पचास का नोट निकाल कर दिया तो खुरदरे और अजनबी-से लहजे में बोली—"चारपाई का बन्दोबस्त कर लेना।" इतना कहकर वह बीच के दरवाज़े से अन्दर चली गई और दरवाज़ा बन्द हो गया। और निहायत पुरइसरार सन्नाटा-सा छा गया।

मैंने बाहर निकल कर दरवाज़े की कुंडी लगाई। ताला तो मेरे पास था ही नहीं। सामने के मकान वाली बुज़ुर्ग औरत से कमरे का ध्यान रखने के लिए कहकर, मैं बाज़ार चला गया। बल्ब तो एक बिजली-मिस्त्री की दुकान से मिल गया। चारपाई और ताला नहीं मिल सका क्योंकि इतवार की छुट्टी थी।

कमरे में आकर बल्ब तो लगा दिया, लेकिन बैठने की जगह नहीं थी। अन्दर बदस्तूर सन्नाटा छाया हुआ था। फिर शान्ति देवी की खड़ाऊँ की खटर-पटर

सुनाई दी। कोई दरवाजा चरचरा कर खुला, कुछ बर्तन बजे, नल से पानी गिरने की आवाज़ आई। स्टोव फकफकाने लगा। फिर वही गहरा सन्नाटा छा गया। मैं कमरे से निकल कर स्कूल के पिछवाड़े से होता हुआ रेलवे लाईन पार करके खेतों में चला गया। सारा दिन वहीं गुजार दिया। रात का खाना खाकर लौटा तो शान्ति देवी उस बूढ़ी औरत से बातचीत में व्यस्त थी। उसने मुझे जैसे नाराज़गी से देखा। मैं चुपचाप अन्दर सटक गया।

जब मोहल्ले में ख़ामोशी छा गयी तो बीच वाला दरवाजा आहिस्ता से खुला और शान्ति देवी दहलीज़ के पार खड़ी नज़र आई।

—"कमरे का ताला लगाकर क्यों नहीं गए?"

—"था नहीं, बाज़ार से भी नहीं मिला।"

—"सोओगे ज़मीन पर?"

उसने कमरे का जायजा लेते हुए कहा ''।

मैं चुप रहा। वह दरवाजे से हट गई। दूसरे ही पल खजूर की एक झाड़ू पटाख़ से आ गिरी और दरवाज़ा बन्द हो गया। मैंने फ़र्श बुहारा और बिस्तर ज़मीन पर लगा दिया। रात को ख़्वाब में एक बार पुजारी जी दिखाई दिये और फिर ताले और चारपाइयाँ घूमती रहीं।

अगले दिन मैं ताला ले आया। जब दफ़्तर के लिए निकला तो मोहल्ले की औरतें मुझे इस तरह देखने लगी जैसे पहले कभी पूरा मर्द देखा ही न हो। दिन-भर दफ़्तर में काम किया। शाम को अपने एक साथी को कमरे, शान्ति देवी और उसकी शर्तों से आगाह किया तो उसने कहा कि ऐसे कमरे मे रहने से तो बेहतर है कि रेलवे प्लेटफ़ार्म पर रहूँ या फिर फ़ौरन भगवान की शरण मे चला जाऊँ।

—"लेकिन यार, भगवान की शरण मे आदमी हमेशा तो नहीं रह सकता!"

—"क्यों नहीं रह सकता? ख़ुद भगवान ने गीता मे ऐसा कहा है।"

—"गीता में कहा है, पुजारी जी से तो नहीं कहा। कोई और हल तलाश करो।" फ़ैसला यह हुआ कि वह अपने घर से एक तख़्त जो वहाँ बेकार पड़ा था भिजवा देगा। और मेरे लिए किसी और मुनासिब जगह का इन्तज़ाम करा देगा।

जब शाम को कमरा एक कुँआरे के लिए तैयार हो गया तो मैंने इत्मीनान की साँस ली, लेकिन मैं दफ़्तर से सीधा घर नहीं आ सकता था क्योंकि दीवारों से बात करना मुझे अच्छा नहीं लगता था। रात के खाने से निपट कर नौ बजे के बाद कमरे में लौटता, कुछ देर पढ़ता और सो जाता।

शान्ति देवी किराया और अपनी झाड़ू वापस लेकर मुझे भूल चुकी थी। लेकिन अगली पहली को बीच का दरवाजा खुला और शान्ति देवी दहलीज़ से उधर नहीं, इधर आ खड़ी हुई। मैंने उसे किराया दिया तो वह रुखाई और

निस्संगता से बोली—

"पांच रुपये बिजली के !"

मैंने वे भी अदा कर दिये। वह एकदम गयी नहीं। खड़ी कमरे में देखती रही। दीवार के साथ तख्त, बिस्तर पर फूलदार चादर, बेड-कवर, प्लास्टिक का गुलदान, ट्रांजिस्टर और सस्ता-सा मिर्जापुरी कालीन। इसमें रिश्वत की आमदनी का रंग भी शामिल था और यह उम्मीद भी कि जाने कब किसी लड़की के बाप-भाई मुझे देखने आ जाएं। दीवार पर बड़ा-सा कैलेन्डर लटक रहा था—आर्टिस्ट ने तमामतर तवज्जो औरत की आंखों पर केन्द्रित कर दी थी और नीचे आंखों और शराब की सम्बद्धता से हिन्दी और उर्दू दोनों जुबानों में एक ख़ूबसूरत शेर दर्ज था। शान्ति देवी की आंखें इस तस्वीर पर गयीं। वह शेर पढ़कर गम्भीरता से बोली—

"घरों में देवी-देवताओं की तस्वीरें लटकानी चाहिए।"

"यह कोई गन्दी या नंगी तस्वीर तो है नहीं," मैंने कहा।

शान्ति देवी ने पटाक से दरवाज़ा बन्द कर लिया। मैं अपने जवाब के तीखेपन पर ख़ुश था कि मुझे शान्ति देवी का अपनी ज़ाती ज़िन्दगी और पसन्द-नापसन्द में इस कदर दख़ल अच्छा नहीं लगता था। मोहल्ले की औरतें मुझे वैसे ही इश्तिहार की तरह पढ़ती रहीं और मैं सबसे निर्लिप्त रहा।

एक शाम दफ़्तर से लौटते हुए पुजारी जी से मुलाक़ात हुई। रिक्शा रुकवा ली। बहुत ख़ुश नज़र आ रहे थे। उन्होंने मेरी बरख़ुरदारी और शराफ़त की तारीफ़ की। उनकी ज़ुबानी मालूम हुआ कि शान्ति देवी मेरे रहन-सहन, ख़ामोशी और शराफ़त से ख़ुश और सन्तुष्ट थी। जब रात को मैं कमरे में पहुंचा तो बीच का दरवाज़ा खुला और शान्ति देवी कमरे में आ गई। मैंने हैरत से देखा वह बहुत आगे आ गई थी। वह शायद तेज़ ख़ुशबूदार साबुन से नहाकर चली आ रही थी। धुले हुए बाल पीठ और शाने पर बिखरे हुए थे। नरमी से बोली—"आने-जाने वालों के लिए एक-आध कुर्सी ही रख छोड़ो।"

—"पुजारी जी ने कमरे में किसी को भी लाने को मना किया है।"

—"मैंने ही कहा था", उसकी आवाज़ में मिठास थी—"मुझे हुल्लड़बाज़ी अच्छी नहीं लगती। कोई शरीफ़ों की तरह रहे तो आना-जाना बुरा नहीं लगता।" वह कमरे की चीज़ों को देखने लगी—"तुम तो रेडियो बहुत नीची आवाज़ में सुनते हो। सुराही वगैरह नहीं रखी?"

—"ले आऊंगा।"

—"पुजारी जी कह रहे थे कि तुम्हें नहाने वगैरह की तकलीफ़ है, बाहर जाना पड़ता है। तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा? मैं किसी का घर में आना-जाना पसन्द नहीं करती, लेकिन···तुम अन्दर ही नहा लिया करो।"

मैं सोच रहा था कि पुजारी जी से मैंने ऐसी कोई बात नहीं की थी।

अगली सुबह मैंने बीच के दरवाज़े पर दस्तक दी तो वह अपने आप खुल गया। मैं ख़ुद को समेटे, निगाहें झुकाए, गुसलख़ाने में दाखिल हो गया। शान्ति देवी शायद अभी-अभी नहा कर निकली थी। गुसलख़ाने में अजीब-सी महक रची थी। और वह सेहन में तार पर गीले कपड़े फैला रही थी। मैंने झट से गुसलख़ाने का दरवाज़ा बन्द कर लिया।

मैं दफ़्तर जाने लगा तो वह आ गई।

—"सुराही याद से लेते आना और दफ़्तर से सीधे घर आना।"

मैं ख़ामोश रहा, तो जैसे रूठी-सी बोली—' दफ़्तर पाँच बजे बन्द होता है। तुम घर नौ बजे के बाद आते हो। ये बीच के चार घन्टे कहाँ रहते हो ?" उसके लहजे में शक के साथ दबदबा भी था। जी में आया, कहूँ—श्रीमती जी, आप यह सब पूछने वाली कौन होती हैं ? कमरे में आकर क्या दीवारों से सर मारूँ ? लेकिन ख़ामोश रहा। 'सीधे घर आ जाना', कहकर वह चली गई। बीच का दरवाज़ा बन्द करना भी भूल गई।

शाम को मैं फिर देर से आया। मेरी आवाज़ सुनते ही कमरे में आ गई, और बोली—

"ठीक है, मैं मकान मालकिन हूँ, लेकिन तुम सराय में तो नहीं रह रहे हो ?"

मैं बिना कुछ कहे हाथ-मुंह धोने चला गया। वह भी पीछे-पीछे आ गई।

—"सुराही लाये ?"

मैं चुपचाप कमरे में आ गया, वह भी चली आई।

—"किसी ने तुम्हें सिखाया-पढ़ाया नहीं ? इतना वक़्त बाहर बर्बाद करते हो, घर में···।"

—"यहाँ आकर क्या करूँ ?" मैंने झुंझला कर कहा।

एक पल को वह मुझे जैसे निगाहों में तौलती रही, फिर नर्मी से बोली—"आराम किया करो। दिन-भर काम करके थक नहीं जाते ?"

वह मुझे देखे जा रही थी—"मुझसे तो पुजारी जी ने कहा था, इसलिए कह रही हूँ।"

मुझे ख़ामोश देखकर वह नाराज़-सी चली गई। दूसरे दिन मैं दफ़्तर से सीधा घर आ गया। देखा एक कोने में सुराही भरी रखी थी, काँच का गिलास भी था। शान्ति देवी दो-चार मर्तबा दरवाज़े के सामने से गुज़री। न तो कुछ बोली, न ही अन्दर आई। आख़िर मैंने ही आवाज़ दी। वह दरवाज़े के सामने रुकी, फिर कमरे में आ गई।

—"इस सुराही वग़ैरह के कितने पैसे हैं ?"

—"ठीक है, तुम मेरे किरायेदार हो और मैंने ठेका भी ले रखा है कि तुम्हारी हर सहूलियत का ख्याल रखूं। तुम्हारी माँ, बहन, किसी को चाहिए था कि आकर रहना सिखा जाती। भेज दिया है घर से, जाओ लोगों का सर खाओ।" वह कलैन्डर देखने लगी, फिर कहने लगी—

"अब तुम मुझे डेढ़ रुपये दोगे ? मैंने तुम्हें शरीफ़ जानकर···खैर ले लूंगी इसकी भी कीमत।" वह पाँव पटकती चली गई।

मुझे उसका यह अन्दाज़, चरित्र की तब्दीली, अजीब-सी लगी।

जब कई मिनट गुज़र गए, न शान्ति देवी आई न उसकी आवाज़, तो मैं अन्दर चला गया। वह अपने कमरे में सर थामे बैठी थी। मैं कुछ पल खड़ा उसे देखता रहा। फिर आहिस्ता से बोला—

"अगर आप कहें तो मैं कमरा ख़ाली किए देता हूँ।"

—"मेरे सर में दर्द है। मुझे तो ब्लड प्रेशर भी रहता है।" मैं ख़ामोश खड़ा रहा।

—"बैठ जाओ। फिर कहोगे बैठने के लिए भी नहीं कहा।"

—"मैं दवा ले आऊँ ?" उसके जवाब का इन्तज़ार किए बग़ैर अपने कमरे में आया और चुपचाप बाज़ार से सरदर्द की दवा ले आया।

उसने उठकर चाय बनाई। मैं अपने कमरे में आ गया था। चाय का गिलास लिए वह भी वहीं आ गयी।

—"बैठिए ना", वह बिस्तर के कोने पर बैठ गई।

—"आप किसी डॉक्टर से सलाह क्यों नहीं लेती ?"

—"दिखा चुकी हूँ। किसी की समझ में कुछ नहीं आता। अजीब दर्द है। अपने आप शुरू हो जाता है और कई दिन तक रहता है।"

—"अस्पताल में दिखाया ?"

—"चण्डीगढ़ जाने की सलाह देते है डॉक्टर। अब अकेली कैसे जाऊँ ?" वह उदासी से बोली।

—"अगर आप कहे तो मैं दफ़्तर से छुट्टी लेकर चलूँ ?"

—"तुम तो अभी सुराही के पैसे दे रहे थे ?" वह मुस्कुरा दी। फिर सर थामकर कराह उठी।

—"वह अलग बात है।"

उसके चेहरे पर बेचैनी के आसार नुमायाँ हो रहे थे। वह दोनों हाथों से सर इस तरह दबाए हुए थी जैसे उसे फटने से रोक रही हो। फिर निढाल-सी बिस्तर पर गिर पड़ी। उसकी एक टाँग बिस्तर से नीचे लटक रही थी और वह दर्द की शिद्दत से कराहे जा रही थी। मैंने उसकी टाँग आहिस्ता से बिस्तर पर सीधी कर दी और उसका सर दबाने लगा। आहिस्ता-आहिस्ता जैसे उसे आराम होता

गया। उसने आँखें खोल दीं और एकदम उठकर बैठ गयी।

—"अब तबियत कैसी है ?"

"वह निगाहें झुकाये बैठी थी। धीरे से बोली—

"क्या हुआ था मुझे, शायद···।" वह उठकर चली गयी।

रात देर तक मैं उसकी बीमारी के बारे में सोचता रहा।

सुबह जब मैं नहा कर निकला तो वह बरामदे में बैठी आलू छील रही थी। बोली—

"रात मैं एक बात बताना तो भूल ही गयी। पुजारी जी तुम्हारी बात कर रहे थे। कह रहे थे बाज़ार का खाना खाकर कहीं तुम बीमार न हो जाओ। मैं घर पर ही···।"

पुजारी जी से मैंने यह कब कहा था और वह क्यों मुझ पर इस क़दर मेहरबान हो गये थे! मैं यही सोच रहा था कि वह फिर बोली—

—"मैं बना दिया करूँगी।"

—"आप क्यों इस बखेड़े में पड़ेंगी ?"

—"तुम रात क्यों भागे गये थे बाज़ार। मेरे साथ चण्डीगढ़ जाने की बात क्यों कर रहे थे ?"

मैं लाजवाब हो गया।

—"अब नाश्ता करके जाना। दोपहर का खाना घर आकर खाओगे या दफ़्तर के लिए साथ दे दूँ? और हाँ, रात को क्या पकाऊँ ?"

मैंने सोचा महँगाई के ज़माने में वह अपनी आमदनी में इज़ाफ़ा करना चाहती है। इसमें बुराई भी क्या थी ? पेइंग गेस्ट भी तो होते हैं।

—"इसके लिए मुझे क्या देना होगा ?"

—"मैंने पैसों के लिए तो नहीं कहा।"

—"ख़र्च तो होगा ही।"

—"जो तुम मुनासिब समझो", वह ख़ाली उदास-सी आवाज़ में बोली। मैंने उसे दो सौ रुपये माहवार देना मंज़ूर कर लिया।

अब बीच का दरवाज़ा खुला रहने लगा था। मैं भी ख़ुद को अजनबी महसूस नहीं करता था। शाम को दफ़्तर से लौटता तो गर्म प्याली चाय के साथ एक-आध बिस्कुट भी मिल जाता और शान्ति देवी (जो कम बोलने वाली मशहूर थी) की दिलचस्प बातें भी सुनने को मिलतीं—मोहल्ले की फलाँ लड़की फलाँ लड़के से छुप कर मिलती है—स्कूल में फलाँ लड़की का ख़त पकड़ा गया। एक रात खाने के बाद उसने निहायत राज़दाराना लहजे में बताया कि उसके पड़ोसी गोकुल की बीवी के नाजायज़ ताल्लुक़ात अपने देवर के साथ हैं। मैं सुनकर हैरान होता रहा। उस कम बोलने वाली औरत के अन्दर क्या-कुछ छुपा था।

एक शाम मैं दफ़्तर से लौटा ही था कि एक मर्द और दो औरतें मेरा पता पूछते आ गये। मैंने उन्हें अन्दर बुलाया। शान्ति देवी ने अपनी बैठक से कुर्सियाँ और मेज लाने की इजाज़त दे दी। कुछ देर बैठकर वे लोग चले गये। जब मैं कुर्सियाँ और मेज रखने गया तो शान्ति देवी ने पूछा—

"तुम्हें देखने आए थे ?"

—"लगता तो ऐसा ही है।"

—"क्या बातें हुई ?"

—"कोई ख़ास नहीं। पिताजी ने एक लड़की की तस्वीर भेजी थी, शायद उसके माँ-बाप थे। आपको कैसे लगे ये लोग ?"

—"लड़की पसन्द आई तुम्हें ?"

मेरा सवाल नज़र-अन्दाज करके उसने सजीदगी से पूछा—"तुमने क्या कहा उनसे ?"

—"लड़की तो मैंने पहले ही देख रखी है। ख़ूबसूरत है। मैंने कह दिया, जो फ़ैसला मेरे माँ-बाप करेंगे मुझे मंजूर होगा। वैसे उन्हें भी यह लड़की और खानदान पसन्द है।"

वह ख़ामोश हो गयी। मैं अपने कमरे में आ गया। उसे फिर सरदर्द होने लगा था। देर तक मैं उसे कराहते सुनता रहा। मैं एक-दो बार गया भी, लेकिन उसने मुझे जाकर सो जाने के लिए कहा।

अगले दिन पुजारी जी ने मुझे मन्दिर बुलाया। दफ़्तर से सीधे मन्दिर गया। पुजारी जी गाव-तकिये का सहारा लिए बैठे थे। मुझे भी बैठने के लिए कहा। कुछ देर कागजात उलट-पुलट करते रहे। फिर मुझे गौर से देखते हुए बोले—

"तुमने अच्छा नहीं किया।"

—"जी···!" मैं हैरान था।

—"तुम्हें छत पर नहीं जाना चाहिए था। स्कूल की हैड मिस्ट्रेस ने शिकायत की है। शान्ति देवी दोपहर मेरे पास आयी थी।"

—"लेकिन···।"

—"बस तुम वह कमरा ख़ाली कर दो···।" पुजारी जी उठकर आरती के लिए मन्दिर में चले गये।

मैं उठकर आ गया। मुझे पूरा यकीन है कि पहला किरायेदार भी कभी छत पर नहीं गया होगा।

(अनु०—एम० उस्मानी)

# कन्नड़

डॉ० शान्तिनाथ देसाई

बोलुवारु मुहमद कुंई

## शांतिनाथ देसाई

जन्म —22 जुलाई, 1929' हलियाल (कर्नाटक) में। शिक्षा-हलियाल, धारवाड़, वम्बई और लीड्स (ग्रेट ब्रिटेन) मे। पी-एच० डी० के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पर 'लागू पुरस्कार'। 32 वर्ष से अध्यापन। 1972 मे शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर मे अंग्रेजी विभागाध्यक्ष।

प्रकाशित ग्रंथ—(अंग्रेजी) 7-आलोचना ग्रंथों का सपादन अथवा सहसम्पादन। (कन्नड़) 6 कथा-सग्रह. 'राक्षस' राज्य साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। 5 उपन्यास, 'मुक्ति' नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित-प्रकाशित। रेडियो नाटक। 'भारतीय ज्ञानपीठ' की भाषा परामर्श समिति के भूतपूर्व सदस्य। अनेक विदेश यात्राएं।



● विद्यानगर, कोल्हापुर—416004 (महाराष्ट्र)

## बोलुवारू मुहमद कुंई

जन्म—1953। व्यवसाय-सिंडीकेट बैंक मे ग्रामीण प्रचार अधिकारी। प्रकाशित रचनाएं-लगभग 150 कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में। 2 कथा-संकलन और। उपन्यास। दूसरा कथा-संकलन 'देवरू गल राज्य दाल्ले' 1983 में कर्नाटक साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। कतिपय रेडियो कहानिया एवं रेडियो नाटक भी। अपने नाटकों का निर्देशन भी।

कर्नाटक सास्कृतिक जगत में एक विलक्षण आन्दोलन का प्रवंतन। फ़िल्म सोसायटी और कर्नाटक राज्य समुदाय समन्वय समिति के अध्यक्ष। प्रगतिशील तथा दलित साहित्कारों की युवा पीढ़ी मे अग्रगण्य। साहित्य को समाज-परिवर्तन-क्षमता के प्रति आश्वस्त।



● 'सुषमा' इन्नासी उरवि, डी० के० (कर्नाटक)—576102

# प्रतिकृति

●

डॉ० शान्तिनाथ देसाई

हमारे विश्वविद्यालय के परिसर मे संध्या होते ही एक और ही कान्ति छाने लगती है। ऑफ़िस के लोगों को शहर ले जाने वाली बसें उन्हे भर-भर कर ले जाने लगती हैं तो कंपस की सड़कें वीरान होनी शुरू हो जाती हैं। वर्षा-काल, जुलाई का महीना था। शाम होते ही पर्वतो के ऊपर से बादल उमड़-घुमड़ कर आ रहे थे। हवा सांय-सांय कर रही थी। मैं उस दिन किसी प्रकार घर पहुँच जाना चाहता था। कंपस की दक्षिण दिशा मे स्थित मेरा क्वार्टर डिपार्टमेंट से छह फर्लांग दूर है। वैसे तो बस से जा सकता था। पर उस दिन मैं किसी से मिलना नही चाहता था। कैंटीन भी जा नही सका था, इसलिए जरा भूख भी लगी थी। चाय की तलब तो बहुत ज्यादा थी। तिस पर चार-पाँच बार लोगों पर बरस पड़ा था। उसके कारण थे—हमारे प्रिय प्रो० देशमुख और उनकी प्रिय छात्रा रत्ना अलूरकर।

धत्, मुझे कहानी कहनी नही आती। मैं रिसर्च पेपर लिख सकता हूँ। शुरू में मैं इतिहास विभाग में अध्यापक था। बाद मे छपी 'उत्तर-कर्नाटक मे जैन मन्दिर' विषय पर लिखी मेरी थीसिस, जिस पर डॉक्टरेट मिलने के बाद मैं रीडर बना। इस बात को भी दस साल बीत गये। फ़िलहाल यू० जी० सी० से एक प्रोजेक्ट की स्वीकृति मिली है। पहले चरण के लिए उन्होंने तीस हजार रुपए दिये हैं। उत्तर कर्नाटक के सभी धर्मों और मन्दिरो के बारे मे एक विशेष थीसिस लिखने का प्रोजेक्ट है। यानी यह काम मेरे सेवानिवृत्त होने पर ही संभव होगा। अभी मेरे हैड के रिटायर होने में पाँच साल हैं। उसके बाद ही मेरे हैड बनने की उम्मीद है। अगर वह अकस्मात कही फॉरेन-वॉरेन चला गया, अथवा हार्ट फेल होने से चल बसा तो वह दूसरी बात है। देशमुख उस दृष्टि से बड़ा लकी है। हम दोनों लगभग एक ही उमर के हैं— यानी इक्यावन या बावन के होंगे। पचास के बाद आयु का हिसाब लगाने मे

ज़रा मानसिक कष्ट होता है। वह अमेरिका जाकर समाज विज्ञान में डॉक्टरेट कर आया है, वह भी लड़कियों के साथ डेटिंग करते-करते। विदेश से लौटते ही दो-तीन वर्षों में यानी बयालिस की आयु में—प्रोफ़ेसर भी हो गया क्योंकि उसका हैड अकस्मात चल बसा। उसी के बारे में कहानी कह रहा हूँ। पर मैं कहानीकार नहीं हूँ, इतिहासकार हूँ। एक दृष्टि से तो सारा इतिहास कहानी ही तो होता है। कोई एक खाका बना कर, एक दृष्टिकोण लेकर घटी घटनाओं में कुछ को चुनकर इतिहासकार इतिहास लिखते हैं। मैं अपनी थीसिस लिखते समय इतिहासकारों की शैली को अपनाता हूँ। यह तो सच है, पर देशमुख की यह कहानी कहते समय कोई भी नियम नहीं है। इसमे कोई कहानी भी नहीं है।

मेरा नाम प्रकाश जोशी है। यह मेरा असली नाम नहीं है। इस कहानी में किसी का भी नाम असली नहीं है। क्योंकि असली नाम देकर अपने ज्ञान का आधा-अधूरा सत्य कहने चले तो बेचारे दूसरे लोगों के साथ अन्याय होता है। मैं जो कह रहा हूँ वह मेरा परिचित, मेरा कल्पित, मेरा आधा-अधूरा सत्य है। सब का सत्य ऐसा ही होता है। अतः जो मैं कह रहा हूँ उसमें प्रतीत लिहाज नहीं है। वैसे इस कथा मे आने वाला कोई भी पात्र अपनी कहानी कह सकता है। यदि मेरी पत्नी पद्मजा यह कहानी कहती तो अपने को ही इसकी नायिका बना सकती थी। हमारे बी० सी० साहब यह कहानी कहते तो इसे अपने प्रशासन की सफलता के एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते। देशमुख तो इसे एक खेल के रूप मे मिर्च-मसाला लगा कर सुना सकता है...।

देशमुख देखने में बड़ा काइयाँ लगता है। बावन का हो जाने पर भी उसके मुँह पर एक अजीब-सी तरुणाई दिखाई देती है। शरीर में लचक है। जब भी मैं उसे देखता हूँ मेरे दिल पर साँप-सा लोट जाता है। वैसे तो वह और मैं एक ही साल इस विश्वविद्यालय में आए थे। इसलिए तभी से दोस्ती है। उसके सामने मैं सदा बूढ़ा हूँ, मास्टर हूँ, मूर्ख हूँ। वह मौके-बेमौके मेरा मजाक उड़ाता ही रहता है—'पढ़ कर लिखते-लिखते घिस गया। मास्टर साहब, अपनी गाइडेंस बन्द करो। बेचारा! उसने तो मेहनत करके लिखा है। शाबाशी देकर पीठ थप-थपा कर भेजो। बेकार मे उससे चर्चा करने क्यों बैठ गए? पी-एच० डी० के बाद चाहेगा तो अपने आप रिसर्च करेगा, भाई जान! औरत मे अब तुम्हारी रुचि जाती रही। समझ लो कि अब तुम बूढ़े हो गए। पद्मजा भाभी को भी जल्दी बूढ़ी मत बना देना।'

उस दिन संध्या को देशमुख आया और बाहर से ही आवाज दी —"डॉक्टर साहब घर मे हैं?" उसका बहुवचन का व्यंग्य मुझे छू गया। मैंने सोचा—अरे आज अखबार में इसके बारे मे इतना निकला है फिर भी बढ़िया सूट पहन कर सजा सज-धज कर निकला है। यों तो जो अखबार मे निकला था और उसने जो

कपड़े पहने थे उनमें आपस में कोई सम्बन्ध नहीं था, फिर भी पता नहीं क्यों मुझे ज़रा आश्चर्य ही हुआ। यानी ऐसा लगा कि कोई अनौचित्य हुआ है।

—"क्यों भाई प्रकाश, तुम आज सीधे घर आ गए! मेरा बहिष्कार करने का विचार है क्या?" कहते, चारों ओर देख कर मेरे सामने वाली कुर्सी पर वह बैठ गया।

मैंने कहा — "अरे ऐसी कोई बात नहीं। वर्षा आने को थी''' इसलिए ज़रा जल्दी आ गया।" वह मेरे झूठ को ताड़ गया।

—"क्यों अख़बार में मेरे बारे में कुछ छप गया, बस इसीलिए मुझसे बात किए बिना चले आना चाहिए था?"

यह नहीं कि देशमुख के स्वर की तीक्ष्णता मुझे छुई न हो, फिर भी मुझे ऐसा नहीं लगा कि मैंने कोई अपराध किया हो। क्योंकि अख़बार में जो आया था वह भी कोई साधारण बात नहीं थी और निरर्थक भी नहीं थी। बल्कि वह अत्यन्त घातक बात थी। एक धब्बा थी देशमुख के नाम पर। उसके भविष्य पर भी उसका असर पड़ सकता था। डॉ० मोने ने उस दिन फोन पर मुझसे पूछा था—'आपके मित्र डॉ० जोशी इस्तीफ़ा देने वाले हैं क्या?' मैंने भी उतने ही व्यंग्य से पूछा था—'क्या बात है? आप उसको सेलीब्रेट करना चाहते हैं क्या?'

मैंने कहा—"अरे भाईजान, मैंने सोचा था कि तुम आज डिपार्टमेंट गये ही नहीं।"

देशमुख ने हँसते हुए कहा—"क्यों, डिपार्टमेंट नहीं जाता तो और कहाँ जाता? घर में बैठ कर रोना था क्या? उस रंडी के गाल पर थप्पड़ जमा कर उसे साथ लेकर भाग जाना था?"

मैंने कहा —"देखो देशमुख, मेरे लिए तो यह सब तुम्हारी व्यक्तिगत बातें हैं।"

—"मैं भी वही कहता हूँ। पर वह अख़बार में जो आ गया। इसके अलावा उसी ने पुलिस स्टेशन जाकर उल्टी-सीधी शिकायत की है।"

—"तो पुलिस ने तुम्हें भी बुलाया होगा?"

—"बुलाकर ले गयी थी। कल रात आठ बजे। मैंने भी कस कर एक स्टेटमेंट दिया।"

मैंने कहा—"यह बात है? तुमने क्या कहा?"

—"यह सच है कि रत्ना मेरी विद्यार्थी थी। पर मैंने कुछ ऐसा-वैसा नहीं किया। साफ़-साफ़ कह दी यह बात।"

देशमुख का आत्मविश्वास, उसकी यह बेशर्मी, उसका यह दिखावा। मानो कुछ हुआ ही न हो। यह सब देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। उसके ढंग से ऐसा लगा कि उसमें अब भी अक्खड़पन है। उसने कहा—"देखो प्रकाश, मुझे इस विषय में

तुम्हारी सहायता चाहिए।"

मैं देशमुख के उस झगड़े में पड़ना नहीं चाहता था। उसके साथ मेरा नाम भी बदनाम होता, भला उसकी लत के लिए मैं क्यों शिकार बनूं! मेरे भी बाल-बच्चे हैं।

मैंने कहा—"देशमुख, इस मामले में मुझे ज़रा भी नहीं डालना, प्लीज़!"

मैं *अपनी बात की तीक्ष्णता से ख़ुद घबरा उठा।* मुझे एकदम सिगरेट पीने की इच्छा हुई। परन्तु सिगरेट छोड़े दो वर्ष बीत चुके थे। फिर भी कभी-कभी सिगरेट पीने की हुड़क उठती है, तो पी लेता हूँ। वह भी पद्मजा के घर पर न होने पर। यदि वह घर पर होती तो बस, सिगरेट का पैकेट सीधा कूड़ेदान में पहुँच जाता है। मैंने पूछा—"तुम्हारे पास सिगरेट है क्या?"

देशमुख ने हँसते हुए पूछा—"क्यों, पद्मजा भाभी घर पर नहीं हैं क्या?" उसने ज़ोर की आवाज़ दी—"पद्मजा भाभी, ए भाभी!"

—"उसे क्यों बुला रहे हो?"

—"देखो, अब मेरे घर की इज्ज़त डूब रही है। ऐसे मौके पर मेरे मित्र, तुम सब लोगों को मेरी मदद करनी चाहिए। यही मैं पद्मजा भाभी से कहना चाहता हूँ।"

मुझे गुस्सा आया। मैंने सोचा हरामी ने जो मन में आया कर लिया। ख़ूब मौज लूटी। अब मुसीबत आने पर हमारे पांव पकड़ने आया है। मैंने कहा—"तुम्हें उससे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। उसके आने का समय हो गया है। चलो, कहीं किसी होटल में चलते हैं। वहां बियर पीते-पीते चर्चा करेंगे।"

—"चर्चा क्या करेंगे, अपना सिर! कहते हैं न, दाढ़ी में आग लगने पर···! देखो प्रकाश, अब मैं बच नहीं सकता। मालूम है मैंने अपने बयान में क्या कहा है? मैंने कहा है कि कांड के दिन यानी जिस दिन रत्ना ने शिकायत दर्ज कराई, मैं तुम्हारे घर में बैठा था। मैंने यह बात कही है। इसलिए ज़रूरत पड़े तो तुम्हें और पद्मजा भाभी को गवाही देनी पड़ेगी। वही बात बी० सी० के सामने भी कहनी पड़ेगी। हां, यदि वह पूछें तो!"

मैं और घबराया। घबराहट से गुस्सा आया। मैंने उठकर घर की सारी बत्तियां जला दीं। बेटे श्रीकांत के इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश लेने के बाद घर के छोटे-मोटे काम मैं ही करने लगा हूं। चिन्ता हो रही थी कि बेटी शैलजा अब तक घर क्यों नहीं आयी। देखमुख का गुस्सा ज़रा कम हुआ।

—"अरे भाई, एक मित्र की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए ज़रा झूठ बोलना चल जाता है। हम कोई धर्मराज थोड़े ही हैं!" देशमुख ने मेरा धर्मराज का-सा चेहरा देख कर कहा—"हमारे पाप-पुण्य का हिसाब लिखने चित्रगुप्त तो नीचे उतर कर नहीं आएगा।"

मैं रसोई में जाकर गैस पर दो कप चाय के लिए पानी चढ़ा आया। बाहर आकर कहा—"देशमुख, तुमने तो हमारा नाम ले ही दिया है। अब काम खत्म हो गया। मैं इन्वॉल्व हो चुका हूँ। जरा सोचता हूँ। मेरी पत्नी से अभी कुछ कहने की जरूरत नहीं है। ऐसे विषयों पर पत्नियों की प्रतिक्रिया बहुत विचित्र होती है।" यह कह कर मैं फिर भीतर गया।

देशमुख भी मेरे पीछे-पीछे आया। "तुम्हारी मर्जी। सॉरी, आज मैं तुम्हारे साथ नहीं आ सकता, बियर आदि पीने के लिए। यह समस्या···।" कहते हुए उसने मेरी दी हुई चाय का एक घूँट भरा।

—"यह समस्या तुम्हारी पैदा की हुई है।" मैंने भी एक घूँट चाय पी। मन ही मन मैंने कोसा—इस समस्या में हमें क्यों घसीटते हो, महाराज!

—"थैंक्स प्रकाश, मुझे जाकर बी० सी० से मिलना है। हम कल मिलेंगे। मुझे छोड़ मत देना, समझे!" कह कर हंसता हुआ देशमुख बाहर के अँधेरे में अदृश्य हो गया। कुछ देर बाद उसकी कार के सर्र से गुजरने की आवाज सुनायी दी। मैं सदा की भांति उसे छोड़ने गेट तक भी नहीं गया, यह बात मेरे ध्यान में आयी।

देशमुख द्वारा मेरे फ्लैट में छोड़ दी गयी समस्या के बारे में सोचता, उसके चाय के प्याले पर रखे अधूरे पिये सिगरेट का कश लेता आराम से पाँव पसार कर बैठ गया।

पद्मजा अपनी चिटफ़ंड की मीटिंग से जरा ख़ुश-ख़ुश लौटी—"देखिए मुझे पहली बार ही एक हजार रुपये मिले।" कहकर उसने बड़े उत्साह से अपना हैंड-बैग दिखाया।

उसका वह खेल मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। फिर भी मैंने उस दिन 'गुड, कांग्रेचुलेशन्स' कहा।

—"कल जाकर मैं बर्तन ले आती हूँ।"

—"गुड!"

—"आज आपकी ओर से विरोध क्यों नहीं हो रहा है? हाँ, पता चल गया। बैठे सिगरेट पी रहे थे, अपने को रोक नहीं सके। चोरी-चकारी एक न एक दिन बाहर निकल ही आती है। हाँ जी, क्या बात है? आज शहर-भर में आपके फ्रेंड की ही चर्चा है!"

मैंने कहा—"हाँ, वह हीरो है न! आज शहर का हीरो वही है।"

—"जी हाँ, आप भी ऐसा हीरो बनना चाहते हैं क्या? आपको कभी-कभी ऐसे सपने आते तो हैं।"

पद्मजा स्मार्ट होने पर भी ख़ास ख़ूबसूरत नहीं है। पर उस दिन सफ़ेद तारों की हरी रेशम की साड़ी में बहुत आकर्षक लगी। उसके व्यावहारिक ज्ञान के सामने मैं सदा नतमस्तक रहता हूँ। उसकी महत्वाकांक्षा अपने पति को प्रोफ़ेसर

के रूप में देखना है। इसलिए मैं सोचने लगा कि उसके मन में देशमुख के प्रति सहानुभूति कैसे पैदा करूँ।

मैंने ज़रा चिंतित होकर पूछा—"अब भी शैल आयी नहीं ?"

—"बेचारे बच्चे ही तो हैं। उन्हें सिनेमा नहीं जाना चाहिए ? वह अपनी सहेली के साथ सिनेमा गयी है। अभी आ जाएगी। उसकी चिन्ता आप क्यों करते हैं ? आप अपने दोस्त की बात बताइए।" पद्‌मजा का कुतूहल सदा भूखा ही रहता है। वैसे वह दो दिनों में कम से कम एक उपन्यास पढ़ ही जाती है।

—"वह बाद में बताता हूँ। चलो, पहले खाना खाएँ। आज मुझे तो चावल-वावल नहीं चाहिए, सिर्फ चपाती से काम चल जाएगा। पद्‌मजा, शाम को देशमुख आया था। उसे यहाँ से गये अभी आधा घंटा हुआ होगा।" मैंने यह कहकर उसका कुतूहल जगाया। अपने कुतूहल को रोकने का प्रयास करते हुए आँखें विस्फारित करके मेरी ओर देखते हुए कहा—"आँ।"

मैंने गम्भीरता से कहा—"हूँ, वह तुमसे मिलने आया था।"

—"मुझसे क्यों ? हाँ, जानती हूँ। उसकी पत्नी को समझाना होगा। बेचारी को कैसी लगी होगी पति की ऐसी हरकतें।"

—"हूँ, बेचारी सरला बहिन का मन पहले ही मक्खन-सा कोमल है। इन महाशय की हरकतें···!" मैंने अपना वाक्य बीच में छोड़ दिया।

—"हाँ तो उस पागल लड़की के पीछे क्यों पड़ा था ?"

—"कुछ लोगों को मक्खन नहीं भाता। खट्टा दही ही बहुत पसन्द आता है।"

—"अरे आपने कहानी-उपन्यास लिखने वालों के समान बातें शुरू कर दीं।'

—"देखो, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मानें तो बड़ा संकीर्ण होता है।"

—"कुछ साँड़ तो ऐसे होते हैं, यह ठीक है, पर मनुष्य जो समझदार है, अनुभवी है, ऐसे बखेड़े में क्यों पड़े !"

—"ऐसी चर्चा से कोई मतलब नहीं निकलता पद्‌मजा ! क्योंकि मनुष्य जैसा कि तुम कहती हो, वैसा ही होता तो इतिहास का निर्माण ही नहीं होता। हम सब देवी-देवता हो जाते अथवा जानवर बनकर किसी नैतिक समस्या के बिना जीवन चलाते। अब ख़ास बात यह है कि हमारा एक देशमुख नामक मित्र सूट-बूट पहनने वाला व्यक्ति मुसीबत में फँस गया। इसलिए हमें उसके पास जाकर ज़रा उससे बात-चीत करके आना चाहिए।" यह कह कर मैंने जताया कि बात करने का मौक़ा आये तो मैं उससे पीछे नहीं हूँ।

भोजन करने से पहले मैंने पूछा—"हाँ पद्‌मा। मेरे बारे में अख़बार में ऐसी ख़बर आती तो तुम क्या करती ?"

—"आप का सिर फोड़ देती !"

—"इसलिए तो देशमुख का सिर फूटने से पहले हम जाकर···।"

उसने व्यंग्य से जोडा—"तसल्ली देनी चाहिए।"

—"देखो पद्मा, देशमुख को बचाना है कि नही ? बेचारी सरला बहिन की जरा-बहुत मदद करनी है कि नही ?"

—"एक दृष्टि से करनी चाहिए, पर वह सब करने के लिए दूसरे लोग हैं। उन्हें किस बात की कमी है। और उनके बहुत-से सगे-सम्बन्धी यूनिवर्सिटी मे है। सुना है उनके सम्बन्धियों में कोई मिनिस्टर है। हम क्यो बेकार का झंझट मोल लें। चुपचाप मुंह बन्द करके घर में बैठिये।" पद्मजा का सामाजिक विवेक एकदम जाग्रत था।

—"फिर भी हम दोनों को एक बार जाकर मिल आना चाहिए।"

—"मैं तो कभी अपने मन से नही जाऊँगी'''। ऐसे लोगो को इस प्रकार जान पर बन आने पर ही अक्ल आती है। ऐसे गैर-जिम्मेदार लोग अपने हाथ मे सत्ता है समझ कर, मन-मर्जी करते हैं, बन्दर की तरह नाचते हैं।" पद्मजा जी के मन में समाज मे व्याप्त गंदगी के प्रति छायी भावना किस-किस के प्रति थी, यह तो मानव ही बता सकता है। मेरी समस्या यह थी कि उसके मन में देशमुख के प्रति सहानुभूति किस प्रकार पैदा की जाये।

—"तुम स्त्री हो, अतः रत्ना के प्रति सहानुभूति होना सहज है।"

—"यहाँ रत्ना की बात कहाँ से उठी ?"

—"मैंने यों ही कहा। वह लड़की है कैसी, आदि बातें मालूम ही है न ! इसलिए मेरी सहानुभूति देशमुख से है।"

—"हमारी सहानुभूति लेकर उन्हे क्या करना है। उन्हें अपने पाप का फल भोगने दीजिये। सही रास्ता छोड़ कर चलने वाले बदचलन लोग'''!"

—"अरे तुम कितनी भयकर भाषा का प्रयोग कर रही हो। बेचारे देशमुख को कितना दुख हो रहा होगा, मालूम है ?"

—"और उस लड़की को जिसने ख़ुद जा कर पुलिस मे कम्पलेंट की, उसका दुख कितना भयंकर होगा। शायद उसे गर्भ रह गया होगा !"

—"उसने पुलिस मे क्या-क्या कहा होगा, किसे मालूम ?"

—"आपने देशमुख जी से पूछा नही ?"

—"डीटेल्स पूछने में क्या रखा है ? और अख़बार वालो का तो कहना ही क्या ? उन्हें तो ऐसी कोई ख़बर मिलना तो गिद्ध को सड़ी लाश मिलने की तरह है। मेरा कहना है कि ऐसी ख़बर मिलते ही अख़बार वालों को चाहिए था कि पहले वी० सी० से पूछते, हमारे जैसे चार जनों से चर्चा करके असलियत जानने के बाद कोई बात अपने अख़बार मे छापते। अगर देशमुख मुझ से ही बता देता तो मैं ख़ुद उस सम्पादक, कुलकर्णी से मिलकर सारी बात रफ़ा-दफ़ा करा देता।"

मेरी आत्म-प्रशंसा सुन कर पद्मजा जी को मजा आया होगा। वह हँसती

हुई बोली—"चाहे एक और सिगरेट पी लीजिये ! यू डिजर्व इट।"

बाहर शैलजा के आने की आहट हुई। मैंने अब तेवर बदल कर कहा—"अब यह चर्चा बन्द। शैलजा के सामने इसका ज़िक्र मत करना।"

• • •

मुझे लगता है कि मैं देशमुख के बारे में कहानी लिखना शुरू करके अपने बारे में लिख रहा हूं।

इतनी-सी एक घटना के बारे में लिखने में इतनी दिक़्क़त है तो बेचारे इतिहासकार इतिहास कैसे लिखते होंगे ? उसमें सत्य कितना होगा और झूठ कितना ? उनकी कल्पना कितनी महान् होती होगी ? एक दृष्टि से इतिहास सत्य और झूठ का अस्थि-पंजर ही सही। फिर भी संस्कृति नाम की प्रक्रिया इतिहास पर आधारित है। हम जैसे लोगों का अस्तित्व भी इतिहास पर निर्भर है।

दूसरे दिन मैंने छुट्टी के लिए आवेदन भेजा, क्योंकि टीचर्स एसोसिएशन वाले देशमुख के विरोध में एक जुलूस निकालने वाले थे। मुझे उसमें सम्मिलित होना चाहिए था, लेकिन देशमुख का मित्र होने के नाते उसे बचाना मेरा कर्त्तव्य था। अपने को उस जुलूस से दूर रखने के लिए मैं कृष्णपुर के काली मन्दिर के शिल्प के अध्ययन में डूब गया।

दोपहर को पद्मजा ढेर सारी खबरें लाई थी। उसे यूनिवर्सिटी पॉलिटिक्स में बड़ी रुचि थी। वी० सी० सिंडीकेट के कुछ सदस्यों के दबाव के कारण देशमुख को सस्पेंड करने वाले हैं। सोशियोलॉजी के रीडर डॉ० क़ांटे ने तो देशमुख के विरोध में एक पत्रिका ही छपवा कर बांट दी है। रत्ना आलूरकर कहीं लापता हो गई। इत्यादि'''।

कल भूगोल के प्रो० मिश्रा आये। उन्होंने सदा की भांति समाज के ढांचे का विश्लेषण शुरू कर दिया—"हमारे समाज में रेप क्यों होते हैं ? मुझसे पूछा जाये तो—हमारा सारा भारत देश डेनमार्क हो गया है। हमारे यहां सृजनशीलता कम हो गई है। मूल्यों में श्रद्धा नहीं है। तब हम अपनी नैसर्गिक प्रवृत्तियों के अधीन हो जाते हैं। जब मूल्य नहीं रहे, तो पैसे की ही क़ीमत रह गई। एक ढंग से यह सारी दुनिया की समस्या हो गई है'''।" उनके सोशल ॲनेलेसिस को अत्यंत कुतूहल से सुनने वाली मिसेज़ मिश्रा ही थीं। उनका विचार है कि वी० सी० बनने की योग्यता केवल उनके पति में ही है। बड़े समझदार, पंडित और चतुर हैं इत्यादि। उनका यह भी मत था कि उनके पति का नाम प्रति वर्ष पैनल पर होने के बावजूद चुनाव नहीं होता क्योंकि वह बाहर वाले थे।

मैंने मिसेज़ मिश्रा के सामने बिस्कुट की प्लेट कर पूछा—"भाभी, देशमुख की इस दुखद घटना के बारे में आपका क्या विचार है ?"

—"देखो, अगर देशमुख साहब मिस रत्ना से शादी कर लें तो बखेड़ा ख़त्म

हो जायेगा।" उन्होंने अपनी गोल-गोल बाहें हवा में हिलाते हुए आगे कहा—"चाहे तो मैं मिसेज़ देशमुख को समझा दूंगी।"

मैंने कहा—"पर रत्ना को भी तो तैयार होना चाहिए न !"

—"मुझे लगता है कि ये लड़कियाँ समय पर शादी न करके एम० ए०, पी-एच० डी० आदि करने आती हैं। आने पर ये सब गलतियाँ होती हैं। लड़कियाँ फ्रस्ट्रेटेड रहती हैं और प्रोफ़ेसर लोग भी बुढ़ापे की ओर झुकते, कुछ न कुछ साहस करना चाहते हैं।" मिसेज़ मिश्रा ने अपने पति की ओर देख कर—'यही बात है न जी ?" कह कर मजाक़ उड़ाया।

मिश्रा ने हँस कर कहा—"ऐसे प्रोफ़ेसरों को विदेश जाना चाहिए।"

मैंने कहा—"मुझसे पूछा जाए तो देशमुख को अमेरिका से लौटना ही नहीं चाहिए था। देखिये, उनका जीवन-दृष्टिकोण ही दूसरा है।"

प्रो० मिश्रा ने गंभीरता से कहा—"किसी प्रकार देशमुख साहब को इस संकट से पार करना चाहिए। उसके लिए एक ही रास्ता है। वह यह कि रत्ना केस वापस ले ले।"

मैंने कहा—"पर यह सब अख़बार में आ चुका है और इस जुलूस को कैसे रोका जा सकता है।"

—"अरे ! कौन ? डॉ० जोशी ? आप ही एक आर्टीकल लिखकर अख़बार में छपवा दीजिये। यह तो नैतिक सक्रमण का ज़माना है, जो चाहे चल सकता है अगर कोई चलाना चाहे तो !" प्रो० मिश्रा ने यह कह कर अपनी जेब से सूंघनी की डिब्बी निकाली।

वी० सी० और प्रो० मिश्रा में दोस्ती होने से मैंने ज्यादा बात नहीं चलायी।

• • •

अब देशमुख को बचाने के लिए एक ही रास्ता था। मुझे उसके कहने के मुताबिक़ सब के सामने यह कहना है कि उस दिन शाम को वह हमारे घर था। उसी प्रकार पुलिस के सामने भी बयान देना है। पद्मजा यह सुनकर आग-बगूला हो गयी। शिक्षक होते हुए ऐसा हीन कार्य कर सकते हैं ? जान-बूझकर झूठ बोल सकते हैं ? यह कह सकते हैं कि रत्ना झूठी कहानी रचने वाली विकृत मन की लड़की है ? मैं अपने को क़ाबू में न रख पाकर बोला—"पद्मजा, तुम किस युग में हो ? गांधी युग को बीते बहुत दिन हो गये। अब गांधी जैसा एक भी व्यक्ति भारत में है ? यह जानने के लिए गांधी सिनेमा देखकर विश्वास करना चाहिए। अब जो भी हो देशमुख ने कह दिया है, वह उस दिन हमारे यहाँ था।"

उसने कठोर स्वर में कहा—"जो भी हो, मैं आप को झूठ नहीं बोलने दूंगी।"

—"यह अस्पष्टता का ज़माना है।"

—"इसलिए मैं स्पष्ट कहती हूँ, आप चाहे तो देशमुख साहब को किसी दूसरे

ढंग से बचाइये। या तो वह जा कर क्षमा माँगे, या फिर मैं ही जा कर उस हरामी से पूछूँगी कि हकीकत क्या है ?"

शाम को वी० सी० ने बुलवाया। पद्‌मजा ने कह दिया कि वह घर मे नही हैं। उसने मुझ से कहा—"आप अगर गये तो कुछ न कुछ घपला करके ही आयेंगे, इसलिए कहला दिया कि आप घर मे नहीं हैं।"

—"अब तुमने झूठ बोल दिया, यह ठीक है ?"

—"यह झूठ कुछ और है, वह झूठ कुछ और।"

रात को देशमुख और उसकी पत्नी सरला बहिन हमारे घर आये। सरला बहिन देखने मे तो सुन्दर नही है पर बडी सीधी-सादी है। बड़े घराने की है। केवल मैट्रिक तक पढी है। पति के प्रति उसमें बड़ी भक्ति है। अगर पति कहे कि सूरज पश्चिम मे उगता है तो वह उसी को सत्य मान लेगी। उसने आते ही आँखों में आँसू भर कर कहा—"देखा पद्‌मजा दीदी, क्या-क्या हो गया है! शशि की शादी कराने की सोच ही रहे थे कि यह एक बदनामी की बात उठ खड़ी हुई है। हमारे घराने की इज्जत हो जाती रही।" वह ईमानदारी से अपनी बात कहने लगी—'देखिये, पद्‌मजा दीदी, उस दिन से वह लड़की हमारे घर फटकी तक नही। और वह भी आपके घर ही आये थे। पता नही किस-किस ने मिलकर क्या-क्या कुचक्र रचा है। वे लोग यही चाहते हैं कि किसी तरह से यह विश्वविद्यालय से निकल जाएँ। पद्‌मजा दीदी, मुझे तो दो दिन हो गये। यह बात शुरू होने के बाद मैं घर से बाहर निकली ही नही। शर्म आती है किसी को मुंह तक दिखाने मे। इनके ज़ोर देने पर, वह भी आपका घर होने से चली आयी।"

पद्‌मजा और सरला बहिन को ड्राइंग रूम में छोड़ कर मैं और देशमुख बेड-रूम मे जाकर चर्चा करने लगे।

मैंने पूछा—"उससे मुलाकात हुई ?"

—"नहीं, मैंने एक पत्र भेजा है।"

—"क्या लिखा है ?"

—"लिखा है, कृपा करके भगवान के लिए अपनी कम्पलेन्ट वापस ले लो।"

—"आगे क्या हुआ। कोई उत्तर आया ?"

—"वह होस्टल के कमरे मे नहो है। सुना है कि सुखाड़िया के साथ कहीं गयी है। शी इज़ ए बिच। यू सी, बिच !"

—"अगर हम उसी को प्रूव कर दें तो ?"

—"यानी मैं ही सच बता दूं?···प्रकाश, यु नो, तुम जानते हो कि मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ। मेरी समझ में नही आता कि उसने ऐसा क्यो किया। मेरे लिए तो उसका व्यवहार एक समस्या हो गयी है। उस दिन सन्ध्या को उसने मेरे गले लगकर, प्यार करके कहा—'आप मुझे भूल जाइए।' मैंने कहा—'यह सभव

नहीं है। मेरा व्यवहार भी एक सिरफिरे जैसा रहा होगा। शायद, उसे डर लग गया होगा। मैंने यह भी कहा था—मैं तुम्हारी हत्या कर दूंगा और बाद में आत्महत्या कर लूंगा। सुखाड़िया, उसका नाम याद है? मैंने उसके बारे में उसका मज़ाक़ उड़ाया, यह भी कहा था कि उसे पिटवाऊँगा!"

देशमुख और सरला बहिन चलने लगे तो मैंने कहा—"भाभी, आप चिन्ता मत कीजिए। सब ठीक हो जायेगा। देखिये, अब हमारा समाज काफ़ी बदल रहा है। ऐसा होता ही रहता है। वी० सी० साहब की इनके प्रति बड़ी सहानुभूति है।...चिन्ता न कीजिए।"

• • •

प्रातःकाल उठकर गेस्ट हाउस जाकर मैंने सुखाड़िया को जगाया। वह विभाग दिल्ली से विज़िटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में समाज शास्त्र विभाग में तीन मास के लिये आये थे। अब तक दो मास बीत चुके थे।

चाय का घूंट भरते हुए डॉ० सुखाड़िया ने कहा—"मैं जल्दी लौट कर जाना चाहता हूँ। यहाँ कोई बहुत काम नहीं है।" बात-चीत के दौरान मैंने उनके बारे में काफ़ी जानकारी प्राप्त की। अमेरिका में रहते समय उनकी वहाँ एक अमेरिकन लड़की से शादी हुई थी। बाद में वह भारत लौटे थे। हमारी बात-चीत रत्ना की ओर मुड़ी। स्पष्ट हुआ कि उसके बारे में उनकी काफ़ी रुचि है।

सुखाड़िया ने कहा—"अरे रत्ना और डॉ० देशमुख के बारे में कुछ सुनने में आया?"

भारतीय सदर्भ में ऐसे सारे संबंध रोमांटिक और प्लाटॉनिक स्तर पर रहते हैं। नहीं तो उसे क्या पुलिस में जाकर इनके विरोध में शिकायत करनी थी। रत्ना बड़ी अच्छी लड़की है। फ़र्स्ट क्लास! स्मार्ट है।

मैं घर लौटा तो रत्ना पद्मजा के साथ बात कर रही थी। उस दिन वह पहले से ज्यादा सुन्दर लग रही थी। ऐसा विश्वास होने लगा कि कभी-कभी चिन्ता, दुख, व्याकुलता, ये सब स्त्री के लिये आभूषण के समान होते हैं। रत्ना ने अपनी कहानी यों सुनाई...

"मैंने यह नहीं सोचा था कि यह मामला ऐसा रूप ले लेगा। प्रोफ़ेसर पिछले एक साल से मेरे पीछे पड़े थे। एम० ए० परीक्षा के बाद वह एक सिरफिरे के समान व्यवहार करने लगे। परिणाम निकलने के बाद तो 'यू० जी० सी० से फ़ैलोशिप लेकर रिसर्च करो' कहकर मेरे पीछे ही पड़ गये। मैं लेक्चरार बनकर अपनी मां के साथ जल्दी सेटल होना चाहती हूँ। आप को मेरी पृष्ठभूमि मालूम नहीं है। पिता बड़े अमीर हैं। बिजनेस करते हैं। मेरी मां उनकी उपपत्नी है। मैं स्वतन्त्र होकर अपने पाँव पर खड़ी होना चाहती हूँ। आगे कोई योग्य सुशिक्षित वर मिले तो उसके साथ विवाह करने का विचार है। मेरे लाख समझाने पर

प्रोफ़ेसर नहीं माने। उन्हें तो मेरी ही जरूरत थी। अंत में मुझे यही एक रास्ता दिखायी दिया। उस दिन शाम को उन्होंने अपने घर बुलाया। घर में कोई नहीं था। मुझे डर लगा, मैं डर कर बाहर भागी। गेस्ट हाउस गयी। वहाँ डॉ० सुखाड़िया ने पूछा, मैंने संक्षेप में बता दिया। उन्होंने कहा, जाकर पुलिस में कम्पलेंट कर दो। मैंने जाकर शिकायत दर्ज कराई। सॉरी सर, वह अच्छे प्रोफ़ेसर हैं। अच्छे आदमी भी है।"

आगे आराम से मैंने रत्ना से पूछा—"डॉ० सुखाड़िया के बारे मे तुम्हारा क्या विचार है?"

—"वह बहुत अच्छे आदमी हैं।"

—"वह तुम्हें पसंद करते है···तुम भी उन्हें पसंद करती हो?"

—"मुझे कुछ समझ में नहीं आता। आप मुझे गाइड कीजिये, सर।"

• • •

मैंने गाइड किया। डॉ० सुखाड़िया और रत्ना दो दिन में लापता हो गये। अब देशमुख-रत्ना की कहानी की केवल याद-भर ही रह गयी है। वह भी बहुत उलझी हुई राजनीति में बदल गयी है। देशमुख अब राजनीति मे डूब गया है। "हलो प्रकाश, राजनीति भी सेक्स जैसी ही मजेदार है," कह कर हँसता है। वह कहानी कुछ और है।

(अनु०—वी० आर० नारायण)

# रूखिया



## बोलवारु मुहमद कुंई

रूखिया ने दो बार सचेत करते हुए कहा था—"अँधेरा होने से पहले न आना, किसी को पता न चले।"

खादर जब चला तब रोशनी जरा ज्यादा ही थी। पूर्णतः निमग्न को भला सर्दी कहाँ ! रात बीतते-बीतते दिन निकलने से पहले कुछ न-कुछ निर्णय हो जाना चाहिए। कब तक यह बात छिपा कर रखी जा सकती है।

किसी ने रास्ते में रोककर कुछ पूछा नहीं। पर स्कूल की दीवारों पर जो लिखा गया था, क्या वह काफ़ी नहीं है ? अद्दुकाका की चाय की दुकान पर कैसी-कैसी भद्दी बातें सुनने में नहीं आईं ?

पहाड़ी उतराई, मिट्टी का रास्ता ! रास्ते के दाईं ओर छोटा-सा झरना। वर्षा के दिन होने से झरना प्रवहमान था। पास धान के खेत, चारों ओर हरियाली का राज्य ! मुझे और किसका भय, यह सोचता हुआ वह लम्बे-लम्बे डग भरता छाती तानकर चलता रहा। सामने के टीले पर बने स्कूल पर सूर्य की ठंडी और लाल किरणें पड़ रही थीं। अँधेरा होने में अब भी आधा घण्टा था। शायद मैं ज़रा जल्दी चल पड़ा।

दरवाज़ा खुला ही था। टीन के दरवाजे से भीतर जाने के लिए ज़रा सिर झुका कर ही पाँव रखने पड़े। चप्पलें उतारते समय उसने दोनों तरफ़ का जायज़ा लिया। किसी ने उसे नहीं देखा।

दहलीज़ लाँघने पर उसे आश्चर्य हुआ, वहाँ कोई नहीं था। तीन कमरों की झोपड़ी-छप्पर पत्तों से छायी गयी ड्योढ़ी थी। उसके बायीं ओर छोटी-सी सोने की कोठरी थी। ड्योढ़ी के बीच एक चार हाथ की छोटी मुंडेर थी, जिसके एक ओर रसोई बनाई गयी थी।

वह धीरे-से दायीं ओर गया। वहीं सोने की कोठरी थी। झांका। चटाई बिछी थी। उस पर चादर भी बिछी थी। उसने सोचा—वह

कहाँ गयी होगी ?

पिछवाड़े का दरवाजा अधखुला था। खादर ने रसोई में कदम रखा। चूल्हे में आग थी। अल्यूमिनियम की पतीली में अब भी पानी उबल रहा था। लगा कि वह कहीं आस-पास ही होगी।

पिछवाड़े के दरवाजे से चार कदम रखते ही फ़कीर साहब का सुपारी का बगीचा आ जाता है। बगीचे के दूसरे सिरे पर उनका पक्का मकान है।

खादर ने दरवाजा धकेला। कर्र-सी आवाज हुई।

बगीचे की तरफ़ से कोई दौड़ता दिखाई दिया।

रूखिया, खादर रुक गया।

लम्बा कद, आकर्षक उठान, सुनहरा रंग। हँसने पर गालों पर आकर्षक गड्ढे, शरारती बड़ी-बड़ी आँखें। वही रूखिया अद्‌दुकाका की चाय की दुकान पर चटखारे ले-लेकर बात करने वालों के लिए एक विषय-वस्तु। उस अकेली लड़की को देखकर मुस्तुफ्वाड़ी के युवकों के दिल की धड़कन रुक जाती।

वह केवल चार महीने फ़कीर साहब के खास नौकर उस्मान की बीवी रही! पत्थर-सी सख्तजान। उस्मान एक सुबह बिना किसी से कुछ कहे-सुने चुपचाप चल बसा। सत्रह वर्ष की उम्र में ही रूखिया विधवा हो गई। विवाह से एक मास पूर्व सुपारी के पेड़ की जड़ साफ़ करते समय उस्मान के पाँव में कुदाली का लग जाना बहाना बना था। रूखिया ने जब देखा था, तब घाव का निशान मिटने को था। वह चार मास का जीवन ही रूखिया के लिए स्वर्ग था। पेट-भर भोजन और प्रेम करने वाला पति। इसके अतिरिक्त और क्या चाहिए था उसे! वह अपने को संसार में सबसे सुखी मानती थी। पर केवल मास-भर ही तो! एक दिन सुबह उस्मान जागा ही नहीं। उसका मुँह विकृत रूप से खुला था, कमर टेढ़ी हो चुकी थी और वह मर चुका था। रूखिया के रोने-चिल्लाने की आवाज सुनकर सारा गाँव दौड़ आया था। रोती-बिलखती रूखिया के सौन्दर्य का पान करने वाले युवकों का निर्णय था कि उसने अपने पति को विष दे दिया।

उस्मान 'धनुर्वायु' से मरा, कृष्ण पंडित के इस कथन को स्वीकार करने को कोई तैयार न था। लोगों ने कह दिया—'बूढ़े का दिमाग़ ख़राब हो गया है।'

इसके बाद रूखिया का जीवन पक्के घर वाली फ़ातिमा-बी के प्यार के कारण ही बच गया। फातिमा-बी ने दो मास तक उसे घर में रखा। उसकी सेवा की और प्यार से शराबोर कर उसे अपनी मरी माँ की फिर से याद दिला दी। शायद इसीलिए जब उसका दूर का भाई उसे लेने आया तो उसने जाने से इंकार कर दिया। रूखिया ने अपना जीवन फ़ातिमा-बी की इकलौती बेटी हलीमा की बड़ी बहिन और फ़कीर साहब के बाग और घर की सेविका के रूप में चलाना शुरू किया।

यह सब खादर के मुत्तुप्पाडी में मास्टर बन कर आने से सात-आठ वर्ष पूर्व की बातें थीं।

दौड़कर आती रुखिया ने पिछवाड़े का दरवाजा थाम कर हांफते हुए पूछा—

"सर, आपको आये बहुत देर हो गयी क्या?"

खादर ने जवाब दिया—"नहीं तो। अभी-अभी आया हूँ।" रुखिया के मुख पर छायी घबराहट की रेखायें देख कर वह सोचने लगा कि रुखिया उसके लिए कितनी चिन्ता करती है। रुखिया ने पूछा—"आप को आते हुए किसी ने देखा तो नहीं, सर?"

खादर ने उदासीनता से उत्तर दिया—"देख लेने से क्या हो जायेगा रुखिया, अब इज्जत बचाने जैसी तो कोई बात ही नहीं बची।"

रुखिया की आँखें छोटी हो गईं—"मुझे माफ़ कीजिएगा, सर! मुझे उसी दिन मर जाना चाहिए था। मैंने आपको बदनाम कर दिया!" इसके आगे उसके गले से शब्द न निकले।

खादर ने अपना दिल पत्थर करके सिर झुकाए जलती आग की ओर देख कर कहा—"वह सब तो हो चुका। अब आगे का देखना है। फ़ातिमा-बी आयेंगी या नहीं?"

रुखिया ने उत्साह से कहा—"आयेंगी कैसे नहीं? आप यहीं भीतर बैठिए। मैं अम्मी को बुला कर लाती हूँ। पूरा अँधेरा होने से पहले वह आएँगी नहीं।" यह कहते हुए रुखिया ने खादर के पास से निकल कर अगला दरवाजा बन्द करके चिटकनी लगा दी। खादर वहीं रखे पटरे पर बैठ गया।

पिछवाड़े का दरवाजा बाहर से धकेलते हुए रुखिया ने पूछा—"आपको डर तो नहीं लग रहा है, सर?"

खादर ने खिसिया कर हँसते हुए कहा—"मुझे काहे का डर?"

झोंपड़ी के भीतर ज्यों-ज्यों अँधेरा छाता गया, त्यों-त्यों चूल्हे के अंगारे और स्पष्ट दीखने लगे।

अँधेरे में अकेले इस तरह बैठना ठीक नहीं, यह सोचकर खादर छटपटा उठा। पर वह कर भी क्या सकता था। इस गाँव में काम पर लगने के बाद यह सब हो जाएगा, यह किसे पता था। अगर मेरी किस्मत में यही लिखा है तो उससे बचने वाला मैं कौन हूँ? सब ख़ुदा पर छोड़ देना चाहिए, सोचते हुए उसने जेब से सिगरेट निकाली, मुँह में लगाकर दियासलाई जलायी। कमरा एक बार को चमक उठा। टीचर्स ट्रेनिंग करके पूरे आठ साल बेकार रहने के बाद मुत्तुप्पाडी में उच्चतर माध्यमिक पाठशाला में काम लगने पर उसे लगा था जैसे उसकी क़िस्मत खुल गयी हो। मुख्य रास्ते के पोस्ट ऑफ़िस के पास ही एक कमरा

किराये पर ले रखा था। उसे कच्चे रास्ते से अपनी पाठशाला जाते हुए रुखिया की झोंपड़ी के आगे से गुजरना पड़ता था।

रुखिया से पहली भेंट से पहले ही अद्दुकाका की चाय की दुकान पर उसके बारे में खादर काफी-कुछ सुन चुका था। पर उसे रास्ते में रोक रुखिया ने जिस ढग से बात की, उसे देखकर उसने निर्णय कर लिया कि उसके कानों में जो भी बातें पड़ी थी, सब झूठ है।

लगभग चार मास पहले की बात है। तब खादर को मुत्तुप्पाडी आये कोई चार मास बीते होंगे। एक शाम स्कूल के काम के बाद अद्दुकाका की चाय की दुकान में काफी गपशप करने के बाद वह अपने घर जा रहा था कि रुखिया ने उसे अपने घर के सामने रोक लिया था।

तुरन्त उसने महसूस किया कि उसने उसके सौंदर्य के बारे में जो कल्पना की थी, वह उससे कही ज्यादा सुन्दर है। उसकी बड़ी-बड़ी शरारती आँखों का सामना न कर पाकर उसने अपना सिर नीचा कर लिया था। पाँव अपनी जगह पर स्थिर नही हो पा रहे थे।

—"सर, एक उपकार करेंगे?" रूप से भी अधिक मादक था उसका स्वर। खादर एकदम उसका शरणागत हो गया।

अपनी अध्यापकीय वृत्ति की गम्भीरता बचाए रखने का प्रयास करते हुए खादर ने आगे-पीछे देखा। यह अनुभव करने के बाद कि उनकी ओर कोई देख नही रहा है, उसने अपने को जरा हल्का महसूस किया। वह यह निर्णय नही कर सका कि हाथों को ढीला छोड़ दे या छाती तान कर हो हाथों को पीछे बाँध कर खड़ा रहे। दाएँ हाथ से भौह खुजलाते हुए—"क्या बात है? कहिए," इतना ही कह सका।

अपने दोनो हाथो को कमर पर टिका कर गर्दन और कंधे को जरा बायीं ओर झुका कर उसने खादर की ओर आँखे फाड़कर देखा। खादर को ऐसा लगा मानो उसके दिल की धड़कन बन्द हो गयी हो। उसे सन्देह हुआ कि उससे कोई गलती तो नही हो गयी। यह तो सच था कि अद्दुकाका की दुकान में जब उसकी चर्चा हो रही थी तब उसने रस लेकर सुना था। उसके बारे मे हर शब्द सुनते समय उसने उस ओर पूरी तरह कान लगा दिए थे। पर अब तक उसके बारे मे उसे कुछ मालूम न होने से उसके मुँह से एक शब्द नही निकला था। तो उसे क्यों डरना चाहिए? खादर लम्बी साँस भरता खड़ा हो गया।

—"सर, यह कैसी बात है, सर? आपसे मैं छोटी हूँ कि नही? तो भी आपने यह आप-आप क्या लगा रखा है?" रुखिया बड़ी-बड़ी आँखें और बड़ी कर खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

खादर की जान में जान आयी। शरीर की नसें जरा ढीली हुईं। आराम से

खड़े होकर उसने उसकी ओर आत्मीयता से देखा।

अपने दायें हाथ में छिपा कागज का टुकड़ा खोल कर, उसकी तहों पर बार-बार हाथ फेरती हुई वह उसे खादर के सामने कर खड़ी हो गयी। खादर जब उसे लेने लगा तो राग से बोली—"सर, इसमें ग़लती हो तो बताना, अभी नया-नया सीखना शुरू किया है, हाँ !"

खादर ने उस पर्ची पर आँखें दौड़ायी। टेढ़े-मेढ़े 'अ' से लेकर 'उ' तक छह अक्षर बड़े प्रयास से लिखे गये थे। उसने मुँह उठा कर रुखिया को देखा। उस भरी जवानी को आँखें भर कर देखने की हिम्मत नहीं हुई। मैली। महीन गीली धोती, चिपका काला ब्लाऊज़, बिखरी काली केश-राशि कमर तक फैली। आँखों के नीचे, नाक के पास पसीने की बूंदें हल्की धूप में चमचमा रही थीं।

—"अक्षर वाक़ई ख़ूबसूरत हैं। और अभ्यास किया जाये तो और ख़ूबसूरत बन जायेंगे।" खादर ने ख़ूबसूरत शब्द पर जरा ज्यादा बल देकर उसकी चमकती आँखों की ओर देखा। उस पर्ची को लौटाते हुए हकलाते हुए 'वैरी गुड' कहा।

रुखिया ने पहले वाले अन्दाज में फिर प्रश्न किया—"तो फिर से एक बार लिख कर दिखाने को कहूँ ?"

खादर ने आश्चर्य से पूछा—"किससे कहोगी ? यह तुमने नहीं लिखा ?"

—"सर, आप भी अच्छा मज़ाक करते हैं। मैं क्यों लिखूं ? मैं कोई साहूकार की बेटी हूँ ? लिखने वाली कोई और ही है।" रुखिया अपना निचला होंठ चबाती हुई भौंहें चढ़ा कर खादर के मुँह पर हुआ परिवर्तन पढ़ने लगी।

खादर को अजीब-सा लगा। उसे कुतूहल हुआ कि रुखिया का उद्देश्य क्या हो सकता है। उसने ज़रा खीज कर ही पूछा—

—"लिखने वाली को ही आकर क्यों नहीं दिखाना चाहिए ?"

—"सर, आप कितनी जल्दी गुस्सा कर लेते हैं, ऐसे सामने आना संभव होता, तो क्या आती नहीं ? सर, क्या आपकी समझ में इतना भी नहीं आता ?" यह कहते रुखिया का मुँह उतर गया था।

खादर को रुखिया की बात का सिर-पैर समझ में नहीं आया। यह भी समझ में न आने से कि क्या करना चाहिए, वह आँख मिचमिचा कर देखने लगा।

रुखिया ने देखा कि खादर की आँखों में चमक कम हो रही है। उसकी जगह उत्साहहीनता ले रही है।

—"सर, आपको बुरा लग गया क्या ? यदि मेरी ज़ुबान लम्बी हो गयी हो तो माफ करें। मैं आपकी तरह पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। मुझ जैसी बर्तन माँजने वाली की बात भला और कैसी हो सकती है ? सर, आप गुस्सा मत कीजिए, कल लिखने वाली को ही आकर दिखाने को कहती हूँ। मैं नहीं आऊँगी। ठीक है न ?"

—"तुम भी आ जाना, रुखिया।" यह कह कर उसने ज़ुबान काट ली।

रुखिया के गाल लाल होते जा रहे थे, यह खादर को देखने का मौका नहीं मिला। वह अपने घर की ओर भाग गयी थी।

सुख का बोझ लादे घर लौटे खादर को रात के खाने में स्वाद नहीं आया। बिस्तर में पड़ा तो कानों में रुखिया की आवाज गूंजती रही। आँखें मूंदने पर रुखिया की ही सूरत दिखायी दे रही थी। धमनियों में रक्त के बदले सुख ही दौड़ता महसूस किया।

अगले दिन खादर शीशे के सामने ज्यादा देर खड़ा रहा। उसने बार-बार बाल ठीक किये। पाँव में चप्पल की जगह बूट पहने। रोज़ से दस मिनट पहले ही स्कूल के लिए निकल पड़ा। रास्ते में लोगों का आना-जाना नहीं के बराबर था। रुखिया का घर समीप आते ही उसके दिल की धड़कनें सौ-गुना बढ़ गयी।

घर का सामने का दरवाजा बन्द था। रुखिया वहाँ कहीं दीखी नहीं। उसने यह तो नहीं कहा था कि सुबह मिलेगी, मन में यह सोचकर खादर ने अपने को तसल्ली दी।

घर के सामने वाला आंगन। घर के बायों ओर सुपारी के बाग की बाड़ थी। बाड़ के भीतर झांकते हरे-हरे केलों के पौधे, उसके बराबर ही आम का पेड़—इन सब को बार-बार देख कर वह आराम से क़दम रखता चला गया। घर के पीछे छूटते ही हर छह-सात क़दम के बाद मुड़-मुड़ कर देखता रहा। वहीं पास के बड़े पत्थर पर पाँव टिका कर बूट के तस्मे खोल फिर से बाँधे। रुखिया का कहीं अता-पता न था। सामने पड़े एक छोटे रोड़े को ठोकर मार कर उछाल दिया। निराशा से खादर ने स्कूल की ओर पांव घसीटे। स्कूल में अपने घर से काम न करके आने वाले बच्चों की रोज से अधिक पिटाई की। शाम को अद्‌दुकाका की दुकान में पहली बार चाय अच्छी नहीं कह कर शिकायत की।

शाम को भी रुखिया प्रतीक्षा करती दिखी नहीं।

अगले दिन, उससे अगले दिन और उससे भी अगले दिन भी रुखिया दीखी नहीं। खादर को उस पर बड़ा गुस्सा आया और उसने हर क्षण उसे भुलाने का प्रयास किया।

चौथे दिन दोपहर को यानी शनिवार के दिन जलती धूप में घर लौटते खादर को झोंपड़ी के साथ वाली बाड़ के पास वाले आम की छाया में बैठी रुखिया दिखाई दी। पिछले चार दिन की निराशा याद आने से खादर मुंह फुलाकर गंभीरता से यह सोचकर जा रहा था कि अगर वह हाथ पकड़कर भी रोके, तो भी नहीं रुकेगा।

झोंपड़ी के पास आते-आते उसके पाँव फिसलने लगे। और दस कदम आगे निकलते ही वह भी पीछे छूट जाएगी।

रुखिया अपनी जगह से उठकर आंगन के सिरे पर आ खड़ी हुई। दो क़दम

आगे निकलते ही रुखिया पीछे छूट जाएगी। पर खादर के पाँव धरती से चिपक गये। उसने 'ठहरिए' भी तो नहीं कहा था। लेकिन खादर रुक चुका था। पहले वही बात शुरू करे, इस हठ से सिर नीचा कर होंठ कस कर खादर खड़ा हो गया। सूर्य गर्दन का पिछला हिस्सा जलाए डाल रहा था।

खादर ने पूछा—"धूप में क्यों खड़ी हो?"

—"घर में बैठे रहने पर सर मिल जायेंगे क्या?" जवाब तैयार था।

—"बुलाने पर सर घर के भीतर भी आ सकते हैं।" खादर के मुँह से ये शब्द निकल गये। तब उसे यह महसूस हो गया था कि उसके मुँह से कुछ ज्यादा ही बात निकल गयी थी।

रुखिया ने हड़बड़ा कर इधर-उधर देखा। बड़ी-बड़ी आँखों के चारों ओर घबराहट ने जगह बना ली थी।

खादर ने अपने मुँह से निकले शब्दों को होशियारी से आगे बढ़ाया—"क्यों रुखिया, मैं तुम्हारे घर के भीतर आ नहीं सकता?" यह दिखाने के लिए कि उसके मुँह के शब्द अत्यन्त सहज रूप से निकले हैं, उनमें उसने आत्मीयता व्यक्त की थी।

रुखिया धीरे-से बोली मानो कोई रहस्य की बात कह रही हो—"सर, आप आज शाम को नदी पर कपड़े धोने आयेंगे न! मैं वहाँ मिलूँगी। अब मुझे जाना है।"

खादर के लिए यह बात अत्यन्त अनपेक्षित थी। रुखिया बाड़ की ओर सिर झुका कर जा रही थी। सामने के अश्वत्थ वृक्ष के मोड़ पर दो जने आते दिखाई दिये। खादर ने अपने घर की ओर क़दम बढ़ाये। चार कदम जाने के बाद जब खादर ने मुड़कर देखा तो ऐसा लगा कि रुखिया बाड़ के उस पार खड़ी किसी को इशारा कर रही है। निरुत्तर प्रश्नों के एक बोझ को उठाकर उसने धीरे से आगे क़दम रखे।

ऐसा लगता है कि यह सब कल-परसों की घटनाएँ हैं।

रुखिया ने उसी शाम नदी के किनारे सब पहेलियाँ बुझा दी थीं।

रुखिया बिजली की लता-सी थी। उसने चाँदनी के गुच्छे के समान हलीमा का खादर से उसी शाम को परिचय कराया।

—"सर, यह आपसे बात करना चाहती है।" यह कहते समय रुखिया की आँखों में निराशा, निरुत्साह अथवा ईर्ष्या क्या रही होगी?

खादर ने एक और सिगरेट सुलगाई।

अंगारे के प्रकाश में नाचते धुएँ ने कुछ और ही दृश्य उपस्थित कर दिया।

सध्या के समय अगला दरवाजा खोलने वाली रुखिया से खादर ने पूछा—"हलीमा नहीं आयी, रुखिया?"

रुखिया ने मजाक करते हुए पूछा—"सर, आप रास्ता भूल कर तो नहीं आ गये ?"

खादर ने घबरा कर रुखिया का मुंह देखा।

दीवार से टिके पटरे को खादर के लिए सरका कर कहीं और देखते हुए रूखिया अनमने स्वर में ऐसे बोली मानो अपने आप से कह रही हो—"हलीमा बड़े घर की बेटी है। ऐसे भाग आने के लिए वह कोई नौकरानी है ?"

खादर ने बेताब होकर पूछा—"रूखिया। तुम्हें क्या हो गया है ? उसे भाग आने जैसा काम करने का कारण तुम नहीं हो।"

रुखिया खिलखिला कर हँस पड़ी—"सर, गुस्सा नहीं कीजिए, देखिए, वह आ ही गयी। पिछवाड़े का दरवाज़ा लांघ कर वह आयेगी।" रुखिया की शरारत बढ़ गयी।

खादर ने सिर खुजलाया।

अब सब उलटा-पुलटा हो गया है।

खादर ने चौथी सिगरेट सुलगाई।

• • •

फ़ातिमा-बी ने साफ़-साफ़ कहा था—"ठीक अँधेरा होने के बाद ही आना रूखिया ! रोशनी रहते मैं तेरे घर आ नहीं सकती। किसी को भी पता न चले। हाँ, हलीमा तक को नहीं।"

पर खादर को घर में बिठा कर बगीचे के बीच में से जब वह बड़े घर पहुँची तब भी रोशनी थी। पिछला दरवाज़ा बन्द होने से वह अँधेरे की प्रतीक्षा करती सीढ़ियों पर बैठ गयी।

उस बड़े-से घर में कुल तीन जने रहते थे। भू-सुधार क़ानून लागू होने से पहले फ़क़ीर साहब के पास काफी ज़मीन-जायदाद थी। क़दम-क़दम पर लोग उन को सलाम बजाते थे। इकलौती बेटी थी। च्यूटी काटने पर भी ख़ून निकल आता। ऐसी थी उनकी बेटी हलीमा। अगले रमज़ान में वह सत्रहवाँ साल पूरा कर लेगी। रुखिया जब उस्मान की पत्नी बन कर आई थी तब यह लहंगा पहना करती। उस्मान के गुज़रने के बाद रुखिया वहीं रहने लगी। वह हलीमा की बड़ी बहन ही नहीं, बल्कि सहेली भी हो गई। अन्तरंग भावनाओं को भी बाँटने वाली सहेली बन गई।

यदि रुखिया दूसरी शादी करना चाहती तो ख़ुद फ़क़ीर साहब आगे खड़े हो कर वह काम कर देते। उन्होंने दो-एक बार फ़ातिमा-बी से इस विषय में कहलवाया भी था। पर पता नहीं क्यों रुखिया ने उस प्रस्ताव को विनम्रता से ठुकरा दिया था। यदि रुखिया शादी के लिए मान जाती तो मुत्तुप्पाड़ी में ही कई मर्द शादी करने को तैयार हो जाते। अकेले ही जीवन चलाने वाली रुखिया के

कानों में उसी के बारे में उस गाँव के लोगों की बातें पड़ चुकी थी। लोग कहानी बनाने में हिचकिचाते नही थे। इसलिए सारी पुरुष जाति के प्रति उसके मन मे तिरस्कार उत्पन्न हो गया।

हलीमा यदि जोर नही देती तो वह ख़ुद कभी खादर से बात-चीत करने मे आगे नही होती।

अपने गाँव के स्कूल में अपनी जाति का ही एक युवक अध्यापक होकर आया है, यह ख़बर रूखिया को हलीमा ने ही दी थी।

अब्बा जब तक बाजार नही जाते तब तक उस घर मे फ़ातिमा तो क्या हलीमा भी आँगन मे पाँव तक नही रखती थी। अब्बा को ढूंढते हुए आने वाले आँगन में ही बैठ कर गपशप लगाते। उस समय भीतर का हरा पर्दा हटा कर देखना भी गलत होता। अतिथि यदि खास होते तो उनके वास्ते चाय आदि के लिए अब्बा ख़ुद भीतर जा कर कहते। चाय तैयार होने के बाद पर्दे की घंटी बजने पर अब्बा ख़ुद भीतर जा कर चाय की ट्रे बाहर ले आते। आगन्तुक यदि देर तक बैठते तो चाय की ट्रे खाली होने के बाद अब्बा ख़ुद ही भीतर ले जाते। पाँच-छह महीने पहले की बात है।

किसी बैंक से नोटिस आया था इसलिए अब्बा बड़बड़ाते हुए सुबह-सुबह ही पगड़ी बाँधकर चले गए थे। अब्बा पगड़ी बाँध कर यदि जाते तो दोपहर को खाने के लिए लौटते ही नही थे। यह सदा की बात थी। मुत्तुप्पाडी में यदि कोई काम होता, तो फ़कीर साहब नंगे सिर ही चले जाते। गाँव मे वह शुक्रवार की नमाज अदा करने के लिए दिन में ही पगड़ी पहन कर निकलते।

हलीमा स्नान कर कपड़े बदल कर बाल सुलझाती आँगन मे आयी। आँगन में रखे आदमकद शीशे के सामने अपने को देखती बैठ जाती तो उसे वक़्त का गुज़रना पता ही न चलता।

जब शीशे में अपना अक्स देखकर वह आगे-पीछे मुड़ती हुई ख़ुश हो रही थी कि तभी दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। उसने अपना पल्लू सम्भाला।

कौन हो सकता है, सोच कर बाल पीछे करके हलीमा ने साड़ी की चुन्नट सँवार सामने के दरवाज़े से चिटकनी खिसका कर दरवाज़ा खोला।

बायें हाथ में गत्ते की एक मोटी पुस्तक लिए, दाये में एक चमकते पैन के सिरे से नाक खुजलाते खड़े एक युवक को देखकर हलीमा शरमा गयी और तब वह और सुन्दर दीखने लगी।

बॉर्डर की काली साड़ी में से चाँदी के गुच्छे-से बाहर निकलते सौंदर्य को आँखों से निगलता आगन्तुक अपना काम भूल कर खड़ा का खड़ा रह गया।

हलीमा पहले सँभल गयी।

रूखिया के साथ सात-आठ वर्ष रहने से वह काफ़ी कुछ सीख गयी थी। हँसी-

मज़ाक़ में तो वह रूखिया से भी एक क़दम आगे थी। भद्दी बातें कहने में भी वह हिचकिचाती नहीं थी। बगीचे में काम करने आने वाले सभी पुरुष रूखिया-हलीमा की नोक-झोंक की बातें सुन खुश होते और मज़ा लेते। खुद फ़ातिमा-बी भी एक बार अपनी छोटी बेटी की शरारती बातें सुनकर दंग रह गयी थीं। नौकर-चाकर खिलखिला कर हँस पड़े थे।

हलीमा ने गंभीरता से पूछा—"आपको क्या चाहिए ?"

युवक ने हड़बड़ा कर कहा—"घर में कोई नहीं है ?"

—"तो मैं क्या शैतान हूँ ?" हलीमा ने आँखें बड़ी करके मुँह फुलाकर युवक को घूरा।

युवक एकदम पसीना-पसीना हो गया। पुस्तक के पन्ने उलटते हुए युवक ने हकला कर कहा "···मैं···मैं···।"

"यह पुस्तक है। मैं जानती हूँ! आपको वास्तव मे क्या चाहिए ?" यह कह कर हलीमा फिर से गम्भीर हो गयी थी।

लम्बी सांस लेकर युवक एक-एक शब्द जोड़ता हुआ बोला—"मैं इस गांव के स्कूल का मास्टर हूँ। जनगणना के काम पर आया हूँ। आपके घर में कितने लोग हैं ?"

हलीमा ने शरारती हँसी हँस कर पूछा—"पुरुष या स्त्री ?"

युवक जरा खीज कर बोला—"दोनो !"

हलीमा हारी नही। "हम-तीन हैं।"

युवक ने सुस्त होकर पूछा—"पिताजी घर में नहीं हैं ?"

"वह होते तो क्या मैं बाहर आती ?"

—"नाम क्या है ?"

—"किसका ?"

—"पिताजी का ?"

—"फ़कीर साहब।"

—"माता जी का ?"

—"फ़ातिमा-बीबी !"

—"बच्चे कितने हैं ?"

—"एक।"

—"लड़का या लड़की ?"

हलीमा ने गम्भीरता से पूछा—"आपको क्या लगता है ?"

युवक ने सिर उठा कर हलीमा को पूर्ण रूप से और आत्मीयता से देखा। अगले दरवाजे से सट कर दहलीज पर खड़ी हो साहस से बात करने वाली उन छोटी-छोटी आँखों के सौंदर्य को उसने गर्व से निहारा।

युवक ने बिना किसी उद्वेग के पूछा—"खूब बातें बना लेती हो। तुम्हारा नाम क्या है ?"

"हाँ", कहकर हलीमा ने कहना आरम्भ किया किन्तु युवक की निस्संकोचता से घबरा कर वह अपनी बात आगे बढ़ा नहीं सकी। उसने गडबड़ा कर पूछा—"आपका नाम क्या है ?"

युवक ने इत्मिनान से कहा—"खादर।"

हलीमा ऐसे उछल पड़ी मानो साँप पर पाँव पड़ गया हो।

"ओ माँ, कोई आये हैं"—कहते हुए वह भीतर के कमरे में पर्दे के पीछे गायब हो गयी। उस अनपेक्षित घटना से घबरा कर भीतर से आयी फ़ातिमा-बी ने बात-चीत कर आवश्यक विवरण दे कर खादर को भेज दिया था।

उस शाम नदी किनारे हलीमा और रूखिया हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी थी। रूखिया ने छेड़ते हुए पूछा था—"खूबसूरत है क्या ?"

—"हूँ। एक प्रकार से।"

—"किसके जैसे दिखते है ?"

"उस जैसे"—कह कर नदी के किनारे कीचड़ में लोट लगाते भैंसे की ओर इशारा कर हलीमा खिलखिला कर हँस दी।

दो-एक दिन में एक बार सूरज ढलने के बाद खादर का रूखिया के घर घुसना और हलीमा का रूखिया को आगे कर गप्पें मारना शुरू हो गया। दिन क्षणों की भाँति उड़ चले।

दशहरे की छुट्टियों में खादर एक महीने के लिए घर गया। उसे गये एक हफ़्ता भी नहीं बीता था कि अनहोनी हो गयी।

अँधेरे की प्रतीक्षा करती बड़े घर की सीढ़ियों पर बैठी रूखिया के शरीर पर से एक नाग सरक गया। रूखिया काँप उठी।

खादर छुट्टियाँ बिता कर लौटा।

जिस दिन आया उसी दिन शाम को उसने रूखिया के दरवाजे पर दस्तक दी।

दरवाजा खोल कर रूखिया ने उसे आँखें फाड़ कर देखा पर उसके मुँह से 'आइए' न निकला। रूखिया के व्यवहार से खादर हैरान हो गया।

"क्यों रूखिया, मेरा आना अच्छा नहीं लगा ?" यह प्रश्न करते हुए उसने वहीं रखे पटरे को खींचा और बैठ गया।

चूल्हे पर रखा भात का बर्तन उतार कर एक ओर रखने के बाद अंगारों पर पानी डाला तो सुई-सी कर्कश ध्वनि खादर के कानों को चुभी। उसके साथ ही रूखिया के मुँह से रूखे शब्द भी निकले—"सर, आप आगे से इस घर में मत आइए।"

खादर झट से उठ खड़ा हुआ। उसकी टाँगें बुरी तरह काँप रही थीं। वह

आवेश से चिल्लाया—"क्यों ? ऐसा क्या हो गया ?"

रुखिया अपने बैठने की भंगिमा तनिक भी न बदल कर बोली—"सर, यही एक बात मत पूछिए, आपकी भलाई के लिए कह रही हूँ। सर, आगे से आप यहाँ आइए ही मत।"

रुखिया ने सुबकना शुरू कर दिया। खादर ने स्तब्ध होकर देखा। बात-बात पर खिले फूल की तरह हँस देने वाली रुखिया को आज खादर ने पहली बार रोते देखा।

खादर किसी तरह क़दम घसीटता हुआ उसके पास पहुँचा और उकड़ूँ बैठ गया। उसके सिर पर हाथ रखा। उमड़ते आँसुओं को प्रयास पूर्वक रोक कर उसने प्रश्न किया—"रुखिया, ज़रा बताओ तो मैं यहाँ क्यों न आऊँ ?" रुखिया उठ खड़ी हुई। पिछवाड़े के दरवाज़े से सट कर बगीचे में कुछ खोजती-सी बोली—"सर, अब आपको जाना ही होगा। जब तक मैं आपको बुलाऊँ नहीं, आप यहाँ मत आइये। कृपा करके चले जाइये।" उसके स्वर में दृढ़ता थी।

खादर क्षण-भर को वैसे ही बैठा रहा, बाद में उठ कर चला गया। रुखिया सारी रात बिलख-बिलख कर रोती रही।

रुखिया ने यह नहीं सोचा था कि हलीमा की जिद पर शुरू किया गया यह खेल-तमाशा ऐसा रंग लाएगा। खादर उसके घर हलीमा के लिए आता था, उसे आने के लिए उसी ने प्रेरित किया था। रुखिया को यह स्पष्ट नहीं था कि खादर के बारे में उसके मन में कैसी भावना है। एक विधवा को एक विद्वान युवक के लिए किसी भी प्रकार की भावना मन में लाने का क्या अधिकार है ? हलीमा के लिए ऐसा नहीं था। वह बड़े घर में रहती है। उसका बाप एक अमीर आदमी है। उसके बाग-बगीचे की वही भावी वारिस है। उसे तो जीवन-भर उस बड़े घर की नौकरानी के रूप में खटते ही रहना है।

अपनी झोपड़ी के सामने से दिन में दो बार गुज़रने वाले युवक को रुखिया ने फिर से पहली बार देखा।

गेहुएं रंग वाला गठीला जवान, घनी काली मूँछे, घुंघराले बाल, सबसे बड़ी बात तो यह कि वह उसी की जाति का अध्यापक था। इस गर्व से वह उसको आँखों से ओझल होने तक देखती रही। शाम को उसके लौटते समय उसने उसे ध्यान से देखा। उस रात सात-आठ वर्ष पूर्व गुज़र चुके उस्मान ने बड़ा सताया। सुबह स्नान करते समय मैंने कोई पाप कर दिया, इस भाव से ठंडा पानी हुंडे की तली दिखायी देने तक डालती चली गयी। अगले तीन-चार दिन रुखिया ने घर का बड़ा दरवाज़ा खोला ही नहीं। तीसरे दिन सुबह पिछवाड़े के दरवाजे से घुस आयी हलीमा को देखकर रुखिया को आश्चर्य हुआ।

कुतूहल से रुखिया ने पूछा—"क्यों री हलीमा, अम्मी ने बुलाया है ?"

हलीमा उदासीनता का नाटक करते हुए बोली—"अम्मी ने भी नहीं बुलाया, तिम्मी ने भी नहीं बुलाया, बोरियत महसूस हुई तो चली आयी।"

शायद ऐसा ही होगा। सोचकर रूखिया ने अपना रसोई बनाने का काम आगे बढ़ाया।

"यहाँ तो जरा भी हवा नहीं आती"—कहते हुए जब हलीमा अगला दरवाजा खोल कर पटरा खींच कर वहाँ बैठ गयी, तब रूखिया को उसके बोर होने का कारण समझ में आ गया। इसमें उसका कोई नुकसान नहीं, सोच कर वह मौन रही।

दो दिन और बीत गये।

—"रूखिया, हम मास्टर जी से बात करें?"

रूखिया ने घबरा कर पूछा—"यह कैसी बात है?"

हलीमा ने पीछे पड़ते हुए कहा—"कोई न कोई बहाना निकालेंगे!"

रूखिया ने साफ़-साफ़ कह दिया—"मुझसे यह नहीं हो पायेगा। तुम ख़ुद उनसे बात कर लो।"

हलीमा दो दिन रूखिया से बोली नहीं।

रूखिया हार गयी, क्योंकि वह हलीमा के बड़े घर की नौकरानी थी। उसी शाम बग़ीचे के पम्प हाउस के पास घंटों चर्चा करने के बाद मास्टर जी से बात करने की योजना बनी।

अगले दिन चरवाहे लड़के केशव से एक पर्चे पर कन्नड़ के चार-पाँच अक्षर लिखवा लिए जायेंगे और रूखिया उन्हें ले जाकर मास्टर को रास्ते में पकड़ कर उसे देगी। हलीमा बाड़ के पीछे से छिप कर उसे देखेगी। यही योजना थी। बाद में क्या होगा, इसकी किसी को भी स्पष्ट कल्पना न थी। उन्होंने इतना ही सोचा था कि चलो, यह अच्छा मजाक़ रहेगा।

योजना आराम से कार्यान्वित हुई। पर उसी दिन केशव का बाप आकर उसे किसी काम से लिवा ले गया। फिर अगले तीन दिन तक किससे अक्षर लिखवाये जायें, लड़कियाँ इसी सोच में पड़ी रहीं। चौथे दिन यानी शनिवार को इन लड़कियों ने नदी किनारे सीधे मिलने की साहसिक योजना बनायी।

चादर का शनिवार शाम को कपड़े धोने के लिए नदी किनारे जाना उन्हें मालूम था। गाँव की लड़कियाँ सुबह ही वहाँ जाया करतीं। संध्या के समय वहाँ और कोई नहीं आता था। फ़कीर साहब के सुपारी के बगीचे से जरा आगे वाला जंगली टीला चढ़ कर उतरते ही नदी मिल जाती। मुख्य रास्ते से आने वालों के लिए दूसरा ही रास्ता था।

एक शनिवार को आरम्भ हुआ यह खेल दूसरे शनिवार भी जारी रहा। बाद के और शनिवारों को वही बात रही। बातूनी हलीमा, हँसी की फुहार छोड़ने

वाली रूखिया, उन्हें देखकर खादर की धमनियों का ख़ून गरम होकर तेजी से दौड़ने लगता। बहते पानी वाला वह नदी का किनारा तीनों के अलौकिक सुख का आगार बन गया था। परस्पर घनिष्ठता बढ़ने के बाद से सप्ताह में छह दिन मुलाक़ात के लिए इन्तजार करना बड़ा दुखद व्यापार था। बाद में नदी के किनारे के उस खेल-तमाशे का स्थान रूखिया के घर ने ले लिया।

गांव में अपने बारे में हो रही कानाफूसी के बारे में रूखिया ने अपना मगज खराब नहीं किया। "औरत जात अकेली कहीं भी रहे ऐसी बातें उठती ही हैं," कहकर ख़ुद फ़ातिमा-बी ने भी उसके सिर पर हाथ फेर कर तसल्ली दी थी। क्या लोगों ने इसके और फकीर साहब के बारे में कहानी नहीं बनायी थी? हंसे नहीं थे? पर वह सब झूठ है, यह बड़े घर के तीनों जनों को मालूम था। रूखिया को अब कोई डर नहीं था। उसकी दुनिया बड़े घर तक ही सीमित थी। बाक़ी लोग चाहे कुछ भी बकें, भला उसे क्या?

पर मास्टर के और उसके बीच में कोई सम्बन्ध है, यह जो ख़बर उड़ी उसका मुकाबला कैसे किया जाए? यह सच है कि गत चार-पांच महीनों में खादर सप्ताह में चार-पांच बार आये। फ़क़ीर साहब पूछें तो किस जुबान से झूठ बोले? आए थे, पर यह कैसे कहा जाए कि हलीमा के लिए आए थे! सबके लिए वह ख़ुद कारण है, कह दे तो? हलीमा तो अब्बा के सामने सांस तक नहीं लेगी, अम्मी को बताये तो कैसे? उन्हें बताने का रास्ता कौन-सा? अब वह क्या करे?

रूखिया और खादर के नाम स्कूल की दीवारों पर एक साथ लिखे गये, रूखिया को यह खबर देने वाली भी हलीमा ही थी। यह हादसा दशहरे की छुट्टियों में हुआ था। खादर के छुट्टी बिता कर आने से पहले।

ढोर चरा कर लौटे लड़के ने गोठ में शाम को हलीमा के कानों में बड़े रहस्य से बातें कही थीं। गांव में तो यह ख़बर पन्द्रह दिन में बासी हो गई थी। रातों-रात रूखिया की झोंपड़ी में दौड़कर आई हलीमा उसे गले लगाकर रोई थी। रूखिया पर गाज गिर पड़ी।

अब क्या करे?

मास्टर जी और एक सप्ताह बाद आ रहे हैं। रूखिया ने आतंकित होकर पूछा—"अब्बा को यह ख़बर पता है?"

हलीमा ने अनुमान लगाया—"पता होता तो शोर नहीं मच जाता?"

—"अम्मी को मालूम है?"

—"नहीं, मैंने उनसे नहीं कही।"

रूखिया ने जरा सोचते हुए प्रश्न किया—"हलीमा, चलो सारी बातें अम्मी से कह दें।"

हलीमा ने तुरन्त उत्साह नहीं दिखाया।

अम्मी से क्या कहूँ। अब्बा को पता चल जाये तो क्या वह ज़िंदा छोड़ देंगे? चार दिन ऐसे ही बीत गए। फ़ातिमा-बी के सामने रुखिया की ज़ुबान खुल नही सकी।

पाँचवें दिन सुबह उसने कहने का निश्चय किया, फिर उस दिन शाम को कहना चाहा।

उसी दिन शाम को खादर लौट आया। रुखिया के घर में घुसने से पहले यदि वह स्कूल की दीवारें देख आता तो वह रुखिया के परिवर्तन को समझ जाता।

खादर को घर से निकाल कर रुखिया सारी रात सो नही पाई थी।' दूसरे दिन सुबह ही फातिमा-बी को बाहर पम्प हाउस तक बुलाकर उसने सारी कहानी सुनाई।

फातिमा-बी यह सुनते ही खड़े-खड़े ढह गईं।

सब का कारण रुखिया है। इस रंडी को रंगरेलियाँ मनाने के लिए एक मर्द चाहिए था। इसी ने हलीमा को अपना मोहरा बनाया। नही तो हमारी सीधी-सादी बच्ची ऐसी गन्दी हरकत में कैसे हिस्सा ले सकती है?

यह सोचते-सोचते फ़ातिमा-बी उठकर रुखिया का झोंटा पकड़ कर गरज पड़ी। रुखिया परकटे पक्षी-सी तड़प कर रह गयी।

उन्होंने उसकी पीठ पर ख़ूब धड़ाधड़ मुक्के जमाये। रुखिया के लुढ़क कर गिर जाने पर वह ख़ुद उस पर गिर गयी और बिलख कर रो पड़ीं।

बड़े घर के पिछवाड़े से छिप कर देखती हलीमा भय से थर-थर काँप उठी।

रुखिया ने ज़ुबान तक न खोली। फ़ातिमा-बी का प्रत्येक आरोप सत्य हो सकता है, यह ख़याल आने से वह बौखला-सी गई।

खादर के साथ गप्पें मारते समय मुझे आनन्द नही आ रहा था? सध्या होते ही उनकी प्रतीक्षा मे तड़पती नही थी? 'कल मैं नही आ सकता हलीमा, स्कूल मे मीटिंग है।' कहने पर मुझे बुरा नही लगा था? हलीमा की मूर्खता पर खादर के मज़ाक़ करने पर मैंने आवश्यकता से ज्यादा हँस कर हलीमा को दुखी नही किया था? विधवा होने के कारण बड़े घर की हलीमा के साथ स्पर्धा करना संभव नही, सोच कर दुखी नही हुई थी? अगर खादर 'मुझसे शादी करोगी रुखिया,' पूछते, तो मैं हलीमा के दुख की परवाह करती? यह सच है।

पर मुझे प्रेम करने का हक़ कहाँ है? बड़े घर का नमक खाया है। मेरे लिए हलीमा को धोखा देना कैसे सम्भव है? उसी के लिए तो मैंने इतना धैर्य धारण किया? नदी के किनारे के पत्थर पर बैठकर हलीमा जब खादर से बतियाती थी, तब क्या मैं रेत पर बैठकर यह ध्यान नही रखती थी कि कोई आ न जाये? क्या मैं यह ईमानदारी से नही कर रही थी? घर मे बैठकर जब वे हँसी-मज़ाक़ करते

थे, तब मैं गोठ में बैठ कर अम्मी के आने-जाने पर नज़र नही रखती थी? पम्पशेड की दीवार से सट कर रुखिया ने फ़ातिमा-बी को आँखें उठा कर देखा।

आँसू उमड़ आए। "मेरे ऊपर भी शक है अम्मी?"—कहते रुखिया ने उनके कधे पर हाथ रखे।

फ़ातिमा-बी ने धीरे से सिर उठाया। तब ऐसा लगा मानो उनकी दोनो आँखें पानी की गोलियाँ हों।

"जो भी तू कह रही है वह सब सच है क्या?" प्रश्न मे यातना थी। रुखिया ने "जी हाँ" कह कर सिर नीचा कर लिया।

"वह लड़का शादी के लिए तैयार है?" रुखिया ने निश्चित स्वर में कहा—"उसमे सन्देह करने की जरूरत नही, अम्मी!"

—"लड़के को तो मैंने देखा है। पर हलीमा के अब्बा मान जायेंगे?"

रुखिया ने जवाब नही दिया। भला वह क्या उत्तर देती?

—"लड़के के घर के बारे मे कुछ मालूम है?"

"हाँ है। ऐसा याद आता है कि उन्होने कहा था कि उनके अब्बा नही हैं। उनका अपना घर है। खेत भी है।" रुखिया ने जितनी बातें याद थी बताई।

फ़ातिमा-बी चुपचाप बैठ कर सोच रही थी।

अब क्या करना चाहिए?

चुपचाप बैठे रहे तो अनर्थ हो सकता है। रुखिया और बदनाम हो जाएगी। हलीमा के नाम पर कीचड़ उछलेगी। यह सोचते-सोचते दोनो हाथों से सिर पकड़कर बैठ गई। उन्होने प्रश्न किया—"रुखिया, एक काम करोगी?"

रुखिया ने बिलखते हुए कहा—"कहिए अम्मी, मुझे क्या करना है? बड़े घर के सुख के लिए मैं तालाब मे कूदने को भी तैयार हूँ।"

—"कल लडके को तुम अपने घर पर बुलाकर ला सकती हो?"

रुखिया ने हैरान होकर पूछा—"क्यों?"

—"मैं ही एक बार उससे बात करूँगी।"

उसने घबरा कर पूछा—"बाद में?"

—"बाद में हम सब हलीमा के अब्बा से मिलेंगे। कल उनको मंगलूर से आने मे रात के नौ बज सकते है। उससे पहले हम दोनो लडके से बातें करेंगे। यह हलीमा को मत बताना।"

रुखिया ने ज़ोर से कहा—"जी"!

बड़े घर के ढोर के सीग मारने पर भी उसने कभी उसे नही मारा था।

फकीर साहब पौ फटते ही इस ढँग से घर से चले थे, लगता था कि वह सदा की तरह रात के नौ से पहले घर नही आएंगे। उनके लिए वह दिन बहुत बुरा रहा था। पहले ज़माने मे यदि वह किसी दफ्तर के दरवाजे पर दिखाई देते तो

बाबू लोग उन्हें अदब से सामने की कुर्सी पर बिठाते और खातिरदारी करते। अब वही लोग उनसे क़ायदे-क़ानून और रूल्स की बातें करने लगे थे। उन्हें किसी प्रकार टालने लग गए थे।

किसी प्रकार छह हजार मिल जाता तो सभला जा सकता है। सुपारी के पेड़ों की जड़ें साफ करानी है। नयी मिट्टी न डलवाई जाये तो कोई फ़ायदा नहीं। पम्प सेट कभी का खराब हो चुका है। बैंक के क़र्ज़े का सूद पहाड़-सा बढ़ता जा रहा है।

सोसाइटी के चौकीदार से लेकर सेक्रेटरी तक सबसे अपनी यह कहानी कहते फ़क़ीर साहब को ऐसा लगा कि वह धरती में धस जायेंगे।

बाजार जाने पर जनाब कभी भी बिना मल्लिका के फूल खरीदे बस में नही चढ़ते। अभ्यासवश वह वहां पहुंच गये थे। पर दिल पत्थर बना कर वह उस दिन खाली हाथ ही बस में चढ़ गए। शायद उनके मन के किसी कोने मे यह बात बैठी थी कि उनके दर्द को घर वाले भी जरा महसूस करे।

चिल्लर न होने से उन्होने लाल बस के कंडक्टर से ज़रा ज्यादा ही बहस की थी। डेढ़ घंटे की बस-यात्रा उन्होने देश-क़ानून, बस, वर्षा का अभाव आदि पर खार खाते काटी। मुत्तुप्पाडी के पुल के पास उतरने पर सूर्यास्त हो चुका था।

डाकखाने के पास संकु सेठ की दुकान से दो सेल खरीद कर टार्च जला कर उन्होने अकेले ही अपने घर की ओर धीरे-से क़दम बढ़ाए।

नदी पर जाने के रास्ते से दाईं ओर चढ़ते वह टार्च जलाते-बुझाते सोचने लगे कि पैसे के लिए क्या किया जाये? मिट्टी के रास्ते के बाईं ओर उतराई मे काले-से दिखायी देने वाले खेतपर रोशनी डालने पर उन्हें रोना-सा आ गया। भू-सुधार कानून लागू होने से पहले वह अस्सी बीघे से ज्यादा जमीन के मालिक थे। अब उनके पास सिर्फ़ तालाब के पीछे का बग़ीचा और ज़रा-सा खेत-भर रह गए हैं। मुआवज़े का पैसा भी हाथ नही लगा, आज और कल के वायदे ही चल रहे हैं। उनका जोर से रो देने को मन हुआ।

अश्वत्थ वृक्ष का मोड़ लाँघते समय फ़क़ीर साहब को रुखिया का ख़याल आया। अचानक गुज़रे उस्मान की भी याद हो आयी। रुखिया पर एक बार तरस आया। पर तुरन्त तेवर चढ़ गये। ख़ून गर्म हुआ। उसे उसी दिन भगा देना था। उसे पालना घर मे नाग के पालने के समान हुआ। यह सोचते उन्होंने 'थू' कहकर थूका। उसके बारे मे रोजाना एक-न-एक कहानी सुनने को मिलती है। अगर सच न भी हो तो भी भला ऐसी बातें सुनने मे क्यो आनी चाहिए?

अब दो सप्ताह से स्कूल की सारी दीवारो पर एक कहानी सड़ रही है। उस मास्टर को भी यही रडी चाहिए। इज्जत से मांगता तो क्या कोई लड़की नही देता? जवान आंखों को बूढ़ी भैंस भी पसद आती है।

रुखिया पर आग-बगूला होते अपने सुपारी के बगीचे की बाड़ पर रोशनी फेंकते हुए वह रुखिया की झोपड़ी के पास आए। वहां उन्होंने बंद दरवाजे पर रोशनी फेंकी।

याख़ुदा !

फ़कीर साहब साँप देखने वाले के समान चौंक उठे। धरती पर खंबे की तरह खड़े हो गये।

रुखिया की दहलीज के बाहर एक जोड़ी चप्पल !

बिना आहट किए वह दबे पाँव चोर के समान दहलीज के पास पहुँचे।

भीतर से फुसफुसाहट सुनाई दी। मर्द की आवाज।

दहलीज पर जा कर एक चप्पल उठाई। टार्च चमका कर देखा, मर्द की चप्पल है। रुखिया को गला घोंट कर मार डाला जाये, तो भी कोई हर्ज नहीं। ऐसी औरत से सारी जाति का अपमान होता है। उन्होंने हाथ की चप्पल को दूर फेंका। मुँह से निकला—"धत्, दो कौड़ी की औरत कहीं की !"

अब क्या करें ?

फ़कीर साहब ने आगे-पीछे देखा तो स्कूल की तरफ़ से कोई टार्च पकड़ कर इसी तरफ़ आता दिखाई दिया। और एक आदमी साथ हो तो बेहतर, सोचकर वह बीच रास्ते में खड़े हो गये।

आने वाले अद्दुकाका थे।

फ़कीर साहब को पहचान कर आश्चर्य से उन्होंने पूछा—"अरे यहाँ कैसे ?" फकीर साहब दो कदम आगे बढ़े। उसकी बाँह थाम कर रास्ते की दाईं ओर ले गये। दो शब्दों में सारी बात समझाई।

अद्दुकाका रोमांचित हो उठे। उन्हें ऐसा लगा कि ख़ुद अल्लाह ही फ़कीर साहब के रूप में खड़े हैं। गत पाँच-छः वर्षों से रुखिया को मानसिक रूप से नग्न करके सुख लूटने वाले अद्दुकाका को लगा मानो स्वर्ग ही हाथ फैला कर अपनी ओर बुला रहा हो।

अद्दुकाका उनकी सहायता के लिए तन-मन से तैयार हो गये।

अद्दुकाका आँगन के पास खड़े हो गये।

फ़कीर साहब ने धैर्य से दरवाजा खटखटाया।

भीतर की फुसफुसाहट रुक गयी। चिमनी का दिया बुझ गया। दो क्षण रुक कर उन्होंने फिर से दरवाजा खटखटाया।

दरवाजा खुलेगा सोचने वाले फ़कीर साहब को आश्चर्य और निराशा हुई।

"दरवाजा खोलोगी···या लात मार खोलना पड़ेगा ?"—कह कर चीख़ते हुए उन्होंने हाथ से दबादब दरवाजा पीटा।

दरवाजा खुला नहीं।

"कमीनी, रंडी कहीं की !"···कहते चीख़कर उन्होंने ज़ोर से लात मारी। टीन का दरवाज़ा चरमरा कर धप्प से गिर गया।

'आओ अद्दु', कहते हुये फ़कीर साहब भीतर घुसे। एक साथ दोनों टार्चें चमक उठीं।

रुखिया खंबे से सट कर खड़ी थी।

और कोई नहीं था।

पिछला दरवाज़ा खुला पड़ा था।

वह गरज उठे—"बता, भीतर कौन है रंडी ?"

आँखों को चुंधियाती रोशनी से डर कर वह उनकी ओर पीठ करके खड़ी हो गयी।

—"तेरी कमर ही तोड़ दूंगा। ये चप्पलें तेरे किस यार की है ?"

रुखिया बुत बनी खड़ी थी। कोई आवाज नहीं निकली।

—"जुबान खुलती नहीं क्या, रंडी कहीं की !" कह कर, चीख़कर दो क़दम आगे रखकर उन्होंने हाथ की टार्च से ही रुखिया को दो जमाये।

"हाय अम्मी," चीख़ कर रुखिया जड़ से कटे पेड़ के समान गिर पड़ी। उसी क्षण सोने के कमरे का दरवाज़ा धड़ाम से खुल गया।

घबरा कर फ़कीर साहब के दाईं ओर मुड़ने से पहले खादर ने तीर के समान कूद कर उनके हाथ से टार्च खींचकर उनके मुँह पर सीधी रोशनी की।

घबराहट से आँखें मूँद कर "कौन, कौन ?" कहते वह अद्दुकाका के पास जा कर खड़े हो गये।

खादर ने गंभीर स्वर में कहा—"आपने गलती कर दी साहब···।" फ़कीर साहब ने उसे पहचान लिया।

"ओह, तुम हो ?" व्यंग्य से प्रश्न करते हुए फिर से आवाज ज़रा ऊँची करके—"सूअर कहीं का, गलती मैंने की या तुमने ? मेरे बगीचे के कमरे में घुस कर मुझ से ही कहता है, बेटे !" कहते हुए वह खादर की ओर लपके। पर अद्दुकाका ने डर कर ज़ोर से उन्हें पकड़ लिया।

"छोड़ो अद्दु," कह कर छुड़ाने के यत्न में वह गरजे। "मैं देखे लेता हूँ, इस बदचलन के घमंड को ! यह इस गाँव में क्यों आया, पढ़ाने के लिए आया न !बच्चों को दो अक्षर सिखाने आया। पर इसकी करतूत ? बदमाश कहीं का !"

"साहब, आपने मुझे गलत समझा—" खादर के मुँह से इतने शब्द मुश्किल से निकल पाये। पर आगे क्या कहे, यह उसकी समझ में नहीं आया।

"मुँह बंद कर, सूअर—" कहते अद्दुकाका की पकड़ से अपने को छुड़ा कर वह खादर के हाथ से टार्च खींच कर उसी पर फेंक कर मारना चाहते थे। खादर उछल कर पीछे हट गया, मानो वह इसकी प्रतीक्षा में था। अब चुप रहे तो अनर्थ हो जायेगा, सोच कर अद्दुकाकाने आगे बढ़कर उन्हें ज़ोर से पकड़ लिया। उन्हें

पीछे खींचते हुए दहलीज तक ले गये।

कुछ न सूझने पर खादर खड़े-खड़े धंस गया। खादर की ओर से आक्रमण की प्रतीक्षा करने वाले फ़क़ीर साहब को बात समझ में नहीं आई।

"चलिए साहब," कहते अद्दुकाका आँगन में उतर गये।

टार्च चमकाते फ़क़ीर साहब ने दीवार से टिक कर सिर झुका कर बैठे खादर को और खंबे के पास औंधी पड़ी रूखिया को एक क्षण के लिए देखा। अद्दुकाका के बुलाने की भी परवाह न करते हुए वह रूखिया के पास गये। ज़मीन पर पड़ी रूखिया को बाँहों से पकड़कर उसे खड़ी करने का असफल प्रयत्न किया। उसे वहीं ज़मीन पर धकेल कर उन्होंने ऊँची आवाज़ में कहा—"तुझसे यही मेरी आख़िरी बात है। कल सुबह से अगर तेरा मुँह यहाँ दिखाई दिया तो ऐसा कर दूंगा कि तू पैदा ही नहीं हुयी थी, हाँ···!"

रूखिया ने उठने की कोशिश की। दायाँ हाथ टिका कर ज़रा बाँह उठाई। 'ओ अम्मी' कहकर दर्द से तड़प कर वहीं गिर गयी।

पता नहीं फ़क़ीर साहब को कैसा लगा होगा। "आओ अद्दु, चलें," कहते बाहर निकल गये। अद्दुकाका पहले ही रास्ते पर पहुँच गये थे।

आँगन में खड़े होकर उन्होंने खादर को सुनाते हुए अद्दुकाका से कहा—"कल मैं देख लूंगा, यह बदमाश कैसे पढ़ाता है! इस गाँव में लड़कियाँ इज्जत से रहें कि नहीं। इसका फ़ैसला कल हो जाना चाहिए।"

खादर ने सिर उठा कर दरवाज़े की ओर देखा। एकदम अँधेरा था। उसने मुँह को घुटनों के बीच रख कर आँखें बन्द कर लीं।

सब सुखांत होगा, सोचते समय कैसा मोड़ आ गया। फ़ातिमा-बी की इच्छानुसार सब हो जाता तो फ़क़ीर साहब से आज रात को मिल कर बात-चीत की जा सकती थी। किसी ने कल्पना तक नहीं की थी कि उनका सामना ऐसे होगा।

दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ सुनते ही फातिमा-बी उठकर खड़ी हो गयी थी। यह पता चलते ही कि दरवाज़ा खटखटाने वाला उनका घरवाला ही है, उनकी साँस रुक-सी गयी। पिछले दरवाज़े से कूद कर पत्थर, कांटों की परवाह किये बिना उन्होंने अपने घर जाकर ही दम लिया।

रूखिया को कुछ सूझा नहीं। खादर को छोड़कर वह भाग नहीं सकती। खंबे को पकड़कर खुद खंबे-सी बन गयी।

सोने के कमरे में घुस कर खादर दरवाज़ा बंद करके फँस गया। बाद में जो हुआ सब दुःस्वप्न-सा था। सोचने का अवकाश ही नहीं था।

खादर पागल-सा हो गया।

अब क्या करना चाहिए?

गर्दन उठाई। अँधेरे के साथ आँखें जमाने का यत्न किया।

पिछला दरवाजा खुला पड़ा था।

रुखिया के लिए बड़े घर का दरवाजा सदा के लिए बन्द हो गया था।

दस मिनट तक केवल मौन, अँधेरा।

रुखिया की सांस की भी कोई ध्वनि नहीं थी। खादर को डर लगा। उसने धीरे से आवाज दी—"रुखिया।"

कोई उत्तर नहीं मिला।

अगला दरवाजा टूटा पड़ा था। रुखिया के लिए उस गांव में सहारा नहीं था।

खादर ने और एक बार पुकारा—"रुखिया।"

"हूँ"—अँधेरे के गर्भ से उत्तर मिला।

खादर बैठे-बैठे खिसक कर अदाजे से रुखिया के पास पहुँचा।

उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए 'रुखिया' कहा।

उसने पड़े-पड़े 'ऊँ' कहा।

खादर ने जेब से दियासलाई निकाल कर चिमनी का दिया जलाया।

हल्दी-से प्रकाश में रुखिया की बड़ी-बडी आंखें भयानक लगी। खादर उन्हीं को देखता बैठ गया।

पाँच मिनट गुजरे। बगीचे के बीच में से मेढकों का टर्राना सुनाई दे रहा था। रात की नमाज की अजान अँधेरे में तैरती आ रही थी। खादर उन बड़ी आँखों में अपनी आँखें गाड़े बैठा रहा।

रुखिया ने बिलख कर पूछा—"सर, आप मुझे माफ़ करेंगे?"

खादर ने आँखें फैला कर रुखिया के मुँह का भाव पढ़ा। बाद में उसने निश्चित स्वर में कहा—

"चलो, रुखिया चलें।"

(अनु०—बी० आर० नारायण)

कश्मीरी

अवतारकृष्ण 'रहबर'

हृदय कौल 'भारती'

## अवतार कृष्ण 'रहबर'

जन्म— 1933, श्रीनगर (कश्मीर) में। शिक्षा – एम० ए० बी० एड० कश्मीर विश्वविद्यालय से। प्रकाशित पुस्तकें—'तवरुक' (कहानी-संग्रह), 'मोख्त अलर' (बाल साहित्य), 'काशिरि अदबच तवारीख़' (साहित्य का इतिहास), 'कोशुर नसर' (सकलन-



सपादन)। कश्मीरी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार, नाटककार एवं कहानीकार। सम्प्रति—आकाशवाणी श्रीनगर में प्रोड्यूसर।

● नर परिस्तान, श्रीनगर कश्मीर

## हृदय कौल 'भारती'

जन्म—1936, सोपुर, कश्मीर में। पढ़ाई पूरी कर आकाशवाणी के समाचार विभाग में नौकरी।



14 वर्ष बाद नौकरी से त्यागपत्र देकर स्वतंत्र लेखन। कश्मीरी के विख्यात कहानीकार। दो बार आकाशवाणी के राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित।

● आल्मान पुरा, रावल पुरा, श्रीनगर (कश्मीर)

# जड़ें

## अवतारकृष्ण 'रहबर'

उसके मन-प्राण विकल, विचलित थे।

जिस अनुपात से कलकत्ते मे गर्मी की प्रचडता तेज से तेज़तर होती जा रही थी उसी अनुपात से उसकी विकलता भी बढती जा रही थी और एहसास गहरा होता जा रहा था कि वह समय दूर नही जब उसका दम घुट जायेगा, आखिरी सांस भी उखड़ जायेगी और उसे अपनी इस अभागी काया को छोड़ना पड़ेगा।

इस महानगर मे लोगो की भीड-भाड़ एक अव्यवस्थित, अनुशासनहीन जनधारा उसे काट खाने को आती थी। एक अजीब भाग-दौड़, भागती-दौड़ती छायाएं। हर आदमी दूसरे आदमी से आगे जाने को बेताब, किसी को किसी का इन्तज़ार नही। यह सारा कोलाहल उसके कान के पर्दों को फाड़ता था। सारे वातावरण मे उसे अजीब तरह का परायापन अनुभव होता था। महानगर की विचित्रता-विविधता, रगारंगी या सांस्कृतिक गतिविधियां उसे तनिक भी अपनी ओर नही खीचती थी। मन करता था कि उड़कर अपने घर, अपने कश्मीर वापस चला जाये। मगर यह बात भी सम्भव नही थी। उसका सारा अस्तित्व जैसे कहीं खो गया था। पिछले पचास वर्षों तक कश्मीर मे सतत गतिशील उसकी जिन्दगी जैसे यहाँ आकर जड़ हो गयी थी। इतने सारे वर्ष कश्मीर मे भी एकही रग मे या एक ही ढंग पर नही बीते थे। पहले डोगराशाही थी। फिर आज़ादशाही आयी थी। वितस्ता के किनारों के बीच तब से अब तक बहुत सारा पानी बहा था। समय-समय पर कुछ बाते उसे अप्रिय भी लगी थी। परसों की ही बात है जब वह अपना वोट डालने बूथ पर पहुँचा था तो एक आदमी ने उससे कहा था—"पंडित जी, आपने तकलीफ क्यों की? आपका काम हमने खुद निपटा दिया। क्या करे, बुजर्गों का खयाल तो रखना ही पड़ता है!"

श्रीकण्ठ को बहुत बुरा लगा था। मगर कोई प्रतिवाद करना

उसने उचित नही समझा। अनायास ही उसका हाथ अपनी पगड़ी की ओर गया। पगड़ी को सिर पर ठीक तरह से सँभाल कर वह धुएँ से डरे चूहे की तरह बेशर्मी से घर लौट आया था।

फिर भी श्रीकण्ठ को विश्वास और संतोष था कि उसकी अपनी एक ज़िन्दगी है, अपना एक अलग व्यक्तित्व है, अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, अपनी एक अलग पहचान है। आलिकदल के पुराने मुहल्ले से सिविल लाइन्स तक जाते उसे लगता था कि श्रीकण्ठ चल रहा है। वह वही है, कोई और नही। हर गली में, हर नुक्कड़ पर उससे दुआ-सलाम होता था। मगर कलकत्ते मे उसे अपने में और एक मक्खी मे कोई अन्तर ही नही दिखाई देता था। अगर वह मर भी जायेगा तो एक मक्खी की मौत ही मरेगा। कौन जानेगा कि कौन मर गया? यदि कश्मीर में मरेगा तो कई दिन तक सारे नगर में चर्चा होगी कि श्रीकण्ठ का स्वर्गवास हो गया। श्मशानघाट तक कितने ही लोग, उसके सबधी, उसके पड़ोसी—हिन्दू और मुसलमान दोनों, उसकी शव-यात्रा मे शामिल होगे।···उसे एक पेंटिंग याद आ रही थी जिसमे शाखाएँ, डालियाँ फैलाए एक विराट वृक्ष को चित्रित किया गया था मगर नीचे से उस वृक्ष की सारी जड़ें कट गई थी। जाने क्यों वह पेंटिंग बार-बार उसकी आँखो के सामने आ जाती थी।

श्रीकण्ठ का एक बेटा जयपुर मे था, दूसरा बगलूर मे। और यह तीसरा और सबसे छोटा यहाँ कलकत्ते मे था। बेटियाँ तीन थी। बड़ी की शादी कश्मीर मे हो गई थी। मँझली शिमला में थी और छोटी अमरीका मे। बेटे ऊँचे महत्त्वपूर्ण पदों पर नही थे। हाँ, जैसे-तैसे गुज़ारा कर ही लेते थे। उनकी दशा लक्ष्यहीन, दिशाहीन बटोहियों जैसी थी। आज यदि यहाँ थे तो मालूम नही था कि कल कहाँ होगे! उनके बाद भी उनकी संतान कहाँ-कहाँ ठोकरे खायेगी! उनकी कमाई का आधा भाग मकान का किराया देने मे ही चला जाता था। और वहाँ कश्मीर मे अपना सात कमरों का खुला-चौड़ा मकान सो साल पुराना होकर भी बिना मुसाफ़िरों की सराय-सा ख़ाली पड़ा था। ठीक है, अब उसकी छत टूट गयी थी। तीसरी मंजिल की दीवारें वर्षा के आघातों को सहते-सहते कमज़ोर पड़ गयी थी। लेकिन समय की सारी चपेटों को सहता वह अब भी वैसे ही खड़ा था। राम कौल का हवेली जैसा मकान सारे मुहल्ले में अपनी मिसाल आप था। पुरानी, महाराजाई दौर की ईंटो की चुनाई श्रीकण्ठ के पिता राम कौल की प्रतिष्ठा और शानो-शौकत की गवाही दे रही थी। तहसीलदार होने के कारण एक बहुत बड़े इलाके का असली महाराजा तो वही था। उसके मकान के साथ मुहल्ले के प्रत्येक निवासी का निकट का सबध था। जिस किसी के यहाँ शादी-ब्याह हो, राम कौल का हवेलीनुमा घर उसके काम आता था। पंडितो और मुसलमानों की कितनी ही बरातें उस बड़े घर मे दावतें उड़ा चुकी थी। राम कौल की हवेली मुहल्ले

एक स्कूल मास्टर था, जो कश्मीर मे ही रहता था। उसके पेंशन पाने में अभी पाँच-छह वर्ष बाकी थे और ट्यूशन आदि करके अपने परिवार की गाड़ी को जैसे-तैसे हांक रहा था।

दो साल पहले श्रीकण्ठ की पत्नी का देहांत हो चुका था। तब से वह नाथजी के यहाँ ही खाता-पीता था और किसी न किसी बहाने छोटे भाई को अपने ऊपर खर्च होने वाली रकम पहुँचाता था। एक दिन जब दोनों भाई तीसरे पहर की चाय पी रहे थे, श्रीकण्ठ ने नाथजी से कहा—"सुनते हो? मैं आज टिकट ले आया। परसों जम्मू रवाना हो जाऊँगा और वहीं से दूसरे दिन कलकत्ता।"

—"क्यों? वहाँ सब ठीक है?" नाथजी ने तनिक घबरा कर पूछा।

—"हाँ, सब ठीक है! मगर सच पूछो तो कुछ भी ठीक नहीं है।"

—"मतलब?"

श्रीकण्ठ ने कोई जवाब नहीं दिया। केवल ठंडी आह भरी।

—"आप साफ़-साफ क्यों नहीं कहते कि बात क्या है?" नाथजी ने व्यग्र होकर पूछा।

—"आज कलकत्ते से छोटे साहबजादे का चौथा खत आ गया कि मैं जल्द से जल्द वहाँ पहुँच जाऊँ।"

—"तो ठीक है। जाड़ों मे सहर्ष चले जाइये। अभी तो वहाँ प्रचंड गर्मी होगी" नाथजी ने अपना मत प्रकट किया।

—"मेरा भी कुछ ऐसा ही ख़याल था। मगर उसने जो कुछ लिखा है उसे पढ़कर लगता है कि मुझे जाना ही पड़ेगा।"

—"आखिर ऐसी भी क्या एमर्जेंसी है?"

—"तुम नहीं जानते। दोनों पति-पत्नी मुँह-अन्धेरे ही घर से निकलते हैं। वह ख़ुद फ़ैक्टरी चला जाता है और वह किसी प्राइवेट स्कूल मे पढ़ाने जाती है। रहा नन्हा, उसे उन्होने किसी क्रेच में डाला था जहाँ उन्हे महीने के डेढ़ सौ देने पड़ते थे। शाम को काम से लौटते समय वे नन्हे को भी वहाँ से घर ले आते थे।"

—"तो ठीक है। इसमें बुराई क्या है?"

—"आजकल तो यह बुराई दूर बात मे हर काम मे घुस गयी है। साहबजादे ने लिखा है कि क्रेच वाले बच्चों को जाने कौन-सी दवाई खिला देते हैं जिससे बच्चे दिन-भर के लिए गहरी नींद में डूब जाते हैं और वे उनकी चीं-चीं, चों-चों से बच जाते हैं। लिखा है इससे नन्हे की बहुत बुरी हालत हो गयी थीओर उन्होने उसके बच जाने की आशा ही छोड़ दी थी।"

"आश्चर्य है", नाथजी ने कहा—"अब उन्हे नन्हे को किसी दूसरे क्रेच मे डालना चाहिए था। सभी तो एक जैसे नहीं हो सकते।"

—"नहीं, सभी एक-से हैं। अब यदि माँ नौकरी छोड़ दे तो सात-आठ सौ

में कैसे गुज़ारा चला लेंगे ? चार-सौ तो घर का किराया ही होगा। नहीं, मुझे जाना ही पड़ेगा। चाहे इस बुढ़ापे में बच्चे पालने की चाकरी ही करनी पड़े।"

इसके बाद दोनों एक-दूसरे को बस देखते रहे। कुछ देर के लिए कोई कुछ नहीं बोला।

—"असल में ग्यारह घरों के कश्मीर का ज़माना दुबारा आने लगा है।" श्रीकण्ठ ने फिर ज़ुबान खोली—"यदि उसे भी कश्मीर में कोई नौकरी मिली होती तो वह सब नहीं देखना पड़ता। मैंने कितने ही लोगों के पांव पकड़े मगर सब व्यर्थ ! थोड़ी-सी भूमि बची थी, उसे भूमि-सुधार के बहाने छीन लिया। हम भी सुधार के पक्ष में है। पर सुधार हुआ नहीं, सिर्फ़ हमारा सर्वनाश हो गया। परसों ही मैं अपनी शीला की ससुराल गया था। चारों भाई सपरिवार नथुने-से सँकरे घर में किस प्रकार रहते है, यह देखते ही बनता है। बेचारों के पास बीस-पचीस कनाल ज़मीन थी। वह सारी की सारी हड़प गये। घर बनाने तक के लिए बेचारों के पास ज़मीन नहीं छोड़ी। यह सब किससे कहें ? कौन सुनेगा ?"

बोलते-बोलते श्रीकण्ठ की विचित्र दशा हो गयी। सारा क्रोध और आक्रोश चेहरे पर उमड़ आया।

—"····और वह मँझला ? बंगलूर में सड़ रहा है। सोचता हूँ, अभागा करता क्या होगा ? दो जवान बेटियां घर में पड़ी है। कैसे उनके हाथ पीले करेगा। सच पूछो तो जीवन की इस अन्तिम घड़ी में बहुत परेशान हूँ। जयपुर वाला तो कोई चिट्ठी-पत्री ही नहीं लिखता। सोचता होगा कि अगर चिट्ठी लिखी तो बुड्ढा आ धमकेगा। हालांकि मैं किसी के ऊपर बोझ नहीं हूँ। जब तक ज़िन्दा हूँ, मेरे लिए मेरी पेंशन काफ़ी है।"

श्रीकण्ठ को भावुक होते देखकर नाथजी ने बात-चीत का विषय बदलना ही उचित समझा—"आपने चाय पी ली ?"

—"हाँ भई, पी ली ! चाय ही नहीं, ज़हर भी पी चुका हूँ।" श्रीकण्ठ की बोली में कड़ुवाहट बढ़ती ही गयी—"मैं एक दूसरी बात सोच रहा था। असल में तुमसे वही कहना चाहता था।"

—"कौन-सी बात ?" नाथजी ने हैरान होकर पूछा।

—"सोच रहा था कि यह मकान अब बेच ही डालें। वह दिल्ली वाला अभी तक चुप है। मालूम नहीं उसने अपने हिस्से के बारे में क्या सोचा है ? आज या कल मुझे अपना शरीर छोड़ना ही होगा। अपने ख़ून को तो मैं बहुत अच्छी तरह पहचानता हूँ। अभी मेरा तेरहवां भी पूरा नहीं हुआ होगा कि वह एक-दो-तीन करके मेरे हिस्से को नीलाम कर देंगे। इसीलिए सोचता हूँ कि अगर मेरे जीते-जी यह झमेला ख़त्म हो जाये तो बेहतर रहेगा। डरता हूँ कि मेरे बाद मामला बढ़ न जाये और ये बिच्छू वहाँ आकर भी मुझे डस न लें।"

श्रीकण्ठ की वातें सुनकर नाथजी अवाक् रह गया। अपने भाई का यह फैसला उसे कुछ वेतुका लगा—आकस्मिक और कुछ-कुछ एक अप्रिय और कड़वा यथार्थ भी ! उसे लगा कि अचानक किसी साँप ने उसे डंक मारा और अब जहर उसके अँग-अँग में फैल रहा है। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि मिट्टी के कच्चे वर्तनो से भरी भट्ठी जैसे परिवार को लेकर वह कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरेगा।

श्रीकण्ठ सब समझ रहा था। उसने एकाउण्टेंट जनरल के दफ्तर में काम किया था। जिन्दगी-भर घास नहीं खोदी थी।

—"मुझे तुम्हारी मजबूरियों का एहसास है।" श्रीकण्ठ ने दूरदर्शिता दिखाते हुए कहा—"मगर जरा सोचो। यदि हम एक साथ ही पूरे मकान को वेचें, तो डेढ़-दो लाख मिल ही जायेंगे। इसके विपरीत यदि हम अपने-अपने हिस्सों को अलग-अलग वेचेंगे तो पचास हज़ार से एक पाई भी अधिक नही मिलेगी। आजकल कौन साझेदारी के मकान मे रहना पसन्द करता है! तिस पर, जब कमरों के बीच का गलियारा साँझा हो, सीढियाँ साँझी हो, दहलीज साँझी हो और कमरों के बीच की दीवारे साँझी हों?"

—"वह सब तो ठीक है।" नाथजी ने नम्रता और आदर से कहा—"दो-चार साल और सही। मालूम नही मेरे इन बच्चो को रोजी-रोटी किस दिशा किस देश में लिखी होगी। तब तक मैं भी रिटायर हो जाऊँगा और मुझे भी बोरिया-बिस्तर बाँध कर उनके पीछे-पीछे जाना होगा।"

—"तुम बिल्कुल सही कहते हो।" श्रीकण्ठ बोलने लगा—"लेकिन मुझे लगता है कि मैं तब तक जीवित नही रहूँगा। खैर, मुझे अपनी कोई चिन्ता नही है, पर डरता हूँ कि कहीं राम कौल का नाम बदनाम न हो जाये। मान लो मेरा हिस्सा किसी ऐसे-वैसे आदमी ने खरीद लिया, तब तुम क्या करोगे?"

नाथजी जड़ बना बैठा रहा। दस-पन्द्रह मिनट तक उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। श्रीकण्ठ ने उठकर फिरन की सिलवटें ठीक की और नाथजी से कहा—"सोच लो! फुर्सत से सोच लो। दोनों मियाँ-बीवी देख लो कि ठीक क्या रहेगा। मैं परसों जा रहा हूँ। वहाँ पहुँचने के सप्ताह-भर बाद तुम्हें पत्र लिखूँगा। मेरी नजर मे दोनो तरह के खरीदार हैं। एक तो पूरे का पूरा मकान खरीदने को तैयार है। दूसरा सिर्फ मेरे हिस्से के पचीस हज़ार दे रहा है। दोनों मुसलमान हैं। मैं दिल्ली वाले को चिट्ठी लिख रहा हूँ कि उसको अपने हिस्से का क्या करना है?"

इतना कहकर श्रीकण्ठ चलने लगा।

"आप कहाँ चले? खाना तो खाइए।" नाथजी ने बहुत जोर लगाकर अपनी जीभ को फिर से चालू किया—"बैठिए! खाना खाइए, जो भाग्य मे लिखा होगा वह होकर रहेगा।"

—"हाँ, होनी को कौन टाल सकता है ? लेकिन मुझे जरा भी भूख नहीं है। सिर दुख रहा है। मैं सोना चाहता हूँ।"

इतना कहकर श्रीकण्ठ अपने कमरे में आया। दरवाज़ा बन्द करने के बाद उसने रोशनी गुल कर दी और बिस्तर में जा घुसा।···वही मौन तस्वीर। वही पेंटिंग फिर उसके सामने मुखर हो उठी। एक विराट वृक्ष परन्तु जड़हीन। अनेक छोटी-बड़ी आरियाँ उन बची-खुची जड़ों को भी काट रही है, जिनके सहारे वृक्ष अभी तक टिका है।

श्रीकण्ठ ने बचपन में सुना था कि उसके शहर श्रीनगर की शंकराचार्य पहाड़ी वास्तव में एक सुपुप्त ज्वालामुखी है जो किसी भी क्षण फूटकर सदियों से अपने भीतर छिपे लावे को वहाँ बिखेर कर सर्वनाश का कारण बनेगा। मगर इन साठ वर्षों में यह ज्वालामुखी नहीं फूटा, हालाँकि समय-समय पर इससे लावे की धारा रिसती रही। लेकिन आज पहली बार उसे लग रहा था कि शंकराचार्य पहाड़ी फट गयी है और भीतर छिपा सारा लावा बहकर दूर-दूर तक फैल गया है और सारे आकाश को धुएँ और विषैली हवाओं ने घेर लिया है।

आज भी उसके नाम कोई पत्र नहीं आया। मन हुआ कि बेटे से कह दे कि कश्मीर वालों को तार दे दो। मगर वह बेटे और बहू के सामने कश्मीर का नाम तक लेने से डरता था। कश्मीर का ज़िक्र आते ही पति-पत्नी उसे बावले कुत्तों की तरह काट खाने को दौड़ते—"आग लग जाये उस कश्मीर को जो हमारा नहीं रहा।"

श्रीकण्ठ ख़ुद ही बोझल क़दमों से तार घर तक गया और तार दे दिया—"वरीड। वायर वेलफ़ेयर। श्रीकण्ठ।"

जैसे-तैसे तीन दिन बीते। ये तीनों रातें उसने काँटों पर लोट-लोट कर काटीं। अजीबो-गरीब विचार उसके मन में आते रहे। कहीं ऐसा तो नहीं कि भाई-भावज ने ख़ुद जहर खाकर मुझे जीते-जी नरक में डाल दिया ? मुझे यह कठोर निर्णय लेना ही नहीं चाहिए था। मेरे मरने के बाद जो होता सो होता।···उसकी दशा कुछ-कुछ पागलों जैसी हो गयी। उसने सोचा कि यदि और कुछ दिन तक भाई का जवाब नहीं आयेगा तो वह उसे लिखेगा कि उसने अपना फ़ैसला बदल दिया।

तार का जवाब आ ही गया। बहुत ही संक्षिप्त। तार देखते ही वह बहुत ख़ुश हुआ मानो उसे कोई ख़ज़ाना मिल गया हो। लिखा था—'सब सकुशल हैं। विस्तृत पत्र पाँच दिन पहले डाला है।'

तार की यह इबारत पढ़कर वह निश्चित नहीं कर पाया कि उसे ख़ुश होना चाहिए या उदास ! वह फिर सोचने लगा कि नाथजी ने क्या किया होगा ? क्या लिखा होगा। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। तभी डाकिया नाथजी का ख़त लेकर आ गया।

श्रीकण्ठ ने उसके हाथ से लिफ़ाफ़ा ले लिया। हाँ, पत्र नाथजी का ही था। उसकी ही लिखावट थी। छोटे भाई की फ़रमाँबरदारी देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। मन में उसके प्रति स्नेह कुछ ज़्यादा ही उमड़ आया। मगर लिफ़ाफ़ा खोलते समय जैसे सारा शरीर काँपने लगा। दिल की धड़कन तेज़ हो गयी। आँखों के आगे अँधेरा-सा छाने लगा। लिफ़ाफ़ा खोलकर जब उसने पत्र बाहर निकाला तो पल-भर के लिए वह उसे कोरा कागज़ लगा। मगर नहीं, यह उसका भ्रम था। श्रीकण्ठ ने अपनी ऐनक साफ़ की। पहले उसे कागज़ पर कुछ धुँधली आकृतियाँ दिखाई दीं। पर जल्द ही सारे अक्षर स्पष्ट होकर बोलने लगे। श्रीकण्ठ दम साध कर एक-एक अक्षर, एक-एक शब्द ध्यान से पढ़ने लगा।

"भाई साहब,

नमस्कार। आपकी शतायु की कामनाएँ करता हूँ।

मैं आपकी लाचारी और मजबूरी भली-भाँति समझता हूँ। मुझे इस बात का एहसास है कि जिस भाई ने अपने बेटे की तरह मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया, सोचना सिखाया, उसकी बात ही सही होगी, वज़नदार होगी। परन्तु आप भी ज़रा सोचिये कि मैं अपना कच्चा परिवार लेकर कहाँ जाऊँ?

आप बेशक अपना हिस्सा बेचें। जिसे चाहें, उसे बेचें। आप मेरी चिन्ता क्यों करते हैं? यदि खरीदार मुसलमान है तो मुझे क्या फ़र्क़ पड़ेगा? जिस मुहल्ले में मैं रहता हूँ, वहाँ कौन लोग रहते हैं? मेरा सारा दिन किन लोगों के बीच गुज़रता है? मेरा दूध वाला कौन है? सब्ज़ी किसके यहाँ से लाता हूँ? माँस-मछली किन लोगों से खरीदता हूँ? मेरा मल-मूत्र और मेरे घर का कचरा-कूड़ा कौन उठाता है? और जो फूल मैं अपने देवता पर चढ़ाता हूँ, उन्हें कौन उपजाता है? जिस दाई ने मुझे माँ के पेट से पैदा किया, वह भी मुसलमान ही थी। और जब मर जाऊँगा तो मेरी चिता रचने वाला दाहकर्ता भी मुसलमान ही होगा।

आप मेरे लिए विचलित न हों। ईश्वर आपको सकुशल रखे।

आपका अपना

नाथजी

श्रीकण्ठ ने पत्र दो बार, तीन बार पढ़ा। उसकी आँखें लाल हो गयीं। नथुने फड़कने लगे और मुख से घृणा और अवसाद भरे ये शब्द अपने आप निकल पड़े—"ब्लडी फूल। दिमाग खराब हो गया है पाजी का!" उसने खत के पुर्ज़े-पुर्ज़े करके उसे खिड़की से बाहर फेंक दिया। उसकी साँस तेज़-तेज़ चलने लगी। दिल ज़ोरों से धड़कने लगा—'हाँ, वही पेड़। दूर-दूर तक अपनी शाखें-टहनियाँ फैलाए हुए। किन्तु जड़ों के बिना कब तक धरती पर टिका रहेगा? वह अभी गिर पड़ेगा—अभी—बिल्कुल अभी...।'

श्रीकण्ठ का सिर चकराया और वह खुद ही नीचे गिर पड़ा। लगभग दो घंटे

बाद उसे होश आया। पर होश में आने के बाद भी उसकी हालत सुधरने की जगह बिगड़ती ही गयी।

कई दिन बाद शीला के पति अर्थात् उसके दामाद ने सारे कागजात मुकम्मल करके जब उसे चेक भेजा तो उसके साथ उसने एक चिट्ठी भी नत्थी की थी। चिट्ठी में लिखा था कि ऐसा ही एक चेक उसने श्रीकण्ठ के दिल्ली वाले भाई को भी भेजा है। साथ ही यह सूचना भी दी थी कि सप्ताह-भर बाद ही नाथजी ने भी अपना हिस्सा उसी क़ादिर-जू के हाथ बेच दिया जिसने श्रीकण्ठ और उसके दिल्ली वाले भाई का हिस्सा ख़रीदा था। नाथजी अब अपने परिवार सहित कहीं किराये के घर में रह रहा है।

पत्र पढ़कर श्रीकण्ठ की बुझी हुई आँखें दो कोटरों में बदल गयीं और भीतर का सारा मवाद, दहकता लावा बनकर उनके रास्ते बाहर आने लगा।

(अनु०—हरिकृष्ण कौल)

# एक लम्बी दास्तान : क़िस्तों में

हृदय कौल 'भारती'

*अब तक की क़िस्तें :*

'''और जनतन्त्र आ गया और 'इलहाक़' हो गया। और लाउड-स्पीकर लगे और नारे लगे। जलसे हुए और सम्मेलन हुए। और हमारे लिए हमारी 'आइडेंटिटी' की तलाश कर ली गई, हमें जागरूक किया गया और प्रोत्साहित किया गया और 'इन्सेंटिव' दिये गये'''

'''और हमने झगड़े-फसाद किये। एक-दूसरे का ख़ून बहाया। एक-दूसरे की हड्डी-पसली तोड़ डाली। न कोई किसी की माँ रही और न कोई किसी की बहिन। और हम बेहाल हुए। बेहाल होकर बुझ गये। और माइक में से महाघोष हुआ कि महान् क्रांतियों में यह सब होता ही रहता है !!! और तब हम एक बार फिर बड़ी बेदिली से एक-दूसरे के मुकाबले में आ खड़े हुए।

*आज की क़िस्त :*

मेरी दशा देखकर शायद उसे दया आ गई या फिर वह भयभीत हो गया। मैं निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। लेकिन यह ज़रूर है कि उसने जान-बूझ कर मुझ पर ऐसा वार किया जिसे सम्भालना मेरे लिए कठिन न था। मैंने भी बेदिली से ही उस पर जवाबी हमला किया। मगर उससे वह भी बर्दाश्त नहीं हुआ। शायद वह किसी मज-बूरी के कारण ही मेरे मुकाबले में उठ खड़ा हुआ था। मैंने उसकी इस मजबूरी की उपेक्षा नहीं की। उसने मेरी यह सद्भावना समझ ली और मुझ पर कोई नया वार नहीं किया। उलटे मेरी ओर एकटक देखते हुए वह मेरे वार की प्रतीक्षा करता रहा। किन्तु मेरा हाथ ही नहीं उठा। मेरी तनी बाँहें धीरे-धीरे ढीली पड़ गयी और आँखें सजल हो गयी।

उसने तनिक मुस्कुरा कर पूछा—"हो गये निढाल ?"

"हाँ।"मैंने जैसे हथियार डालते हुए कहा।

सहसा उसकी बाँहें उठी और दूसरे ही क्षण हम आपस में आलिंगनबद्ध थे। तमाशा देखने वालों को यह बात पसन्द नहीं आयी। वे 'हमारे पैसे वापस करो' चिल्लाने वाले ही थे कि उसने रुपये-पैसों की थैली निकाल कर उनकी ओर फेंक दी। मैंने भी जोश में आकर वे दो नाशपातियाँ और ठण्डे पानी का गिलास वापस किया जो मेरा पारिश्रमिक था। तमाशबीन भूखे-बावले कुत्तों की तरह उन सिक्कों पर टूट पड़े और हम दोनों अपना-अपना दामन बचाते, मेड़-मेड़ चलते उन लोगों से बहुत दूर, यहाँ तक आ गये।

इस समय हमारे पाँव उसी रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं जो घूम-फिर कर वापस उसी अखाड़े की ओर जाता है, जहाँ से हमने शुरू किया था। हम दोनों भयाक्रांत हैं कि कहीं हम पुनः उसी नरक में न पहुँच जाएं जहाँ तमाशबीन अब भी तमाशे का इन्तज़ार कर रहे हैं।

(अनु०—हरिकृष्ण कौल)

# गुजराती

भगवती कुमार शर्मा
ऊजमशी परमार

## भगवती कुमार शर्मा

पूरा नाम—शर्मा भगवती कुमार हर गोविन्द। जन्म—31 मई, 1934, सूरत, गुजरात में। शिक्षा—बी० ए०। व्यवसाय—पत्रकारिता। गुजराती दैनिक 'गुजरात मित्र' के सम्पादक-मंडल के अध्यक्ष। प्रकाशित रचनाएं—पहली कहानी 1953 में प्रकाशित। 12 उपन्यास, 'ऊर्ध्वमूल' पर गोवर्धन पुरस्कार। 8 कहानी-संग्रह। काव्य-संकलन। ललित निबंधों का संग्रह 'शब्दातीत'। हिन्दी से गुजराती में अनुवाद 'आषाढ़ का एक दिन'। गुजराती से हिन्दी में अनुवाद : 'एक अस्थापित राजनीतिक दल का मसौदा'। 7 पुस्तकें राज्य पुरस्कार से सम्मानित। के साहि-



त्यिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र की एक प्रमुख हस्ती। रेडियो और दूरदर्शन कवि सम्मेलनों एवं कार्यक्रमों में अनेक बार सम्मिलित।

● 10/1740, देसाई पोले, एन बेसन्ट रोड, सूरत—395003(गुजरात)

## ऊजमशी परमार

जन्म—23मई, 1944, लिम्बड़ी, जिला—सुरेन्द्रनगर, गुजरात। शिक्षा—मैट्रिक, ड्राइंग टीचर्स तथा पेंटिंग का कोर्स। कहानी-लेखन का प्रारम्भ 1962 से। कहानी के अतिरिक्त गीत, गज़ल, अछांदस कविताओं की रचना भी। प्रकाशित रचनाएं—2 कहानी-संग्रह। प्रथम कहानी-संग्रह 'ऊंची जार बीचां मानपी' संदेश सुवर्ण पदक तथा गुजरात राज्य के द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित। लोक कला व चित्र कला



में गहरी दिलचस्पी। कई सचित्र लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। व्यवसाय—गांधी नगर सिंचाई विभाग में ड्राफ्ट्समैन।

● 117/8, सेक्टर—29, गांधी नगर—382029 (गुजरात)

# अननुभूत

भगवती कुमार शर्मा

भानुभाई को कई सालों से ऐसा लग रहा था कि सारी यह जिन्दगी किन्हीं ख़ास अनुभवों के बिना ही बीत गई थी और पचास साल तो गुज़र भी चुके थे। कोई रोमांच, उत्तेजना, उतार-चढ़ाव का हवाई-झूला, चोटी से तल तक गिरने का धमाका, उत्तर-दक्षिण के हिचकोले, उखाड़-पछाड़, चुनौती, छलांग, उड़ान, धमधमाहट, दिल की धड़कन को ही रोक देने वाला सन्नाटा, छाती फट पड़े ऐसा आघात, कलाई पर रोंगटे खड़े हो जाएँ ऐसी कपकपी, हवा में उड़ने की चाह जगाने वाली भीतर से उठ रही हिलोरें, नस-नस में तनाव लाने वाला व्यापार का ऐसा संकट कि दिवालिया हो जाने की नौबत आ जाए, लाटरी का खुलना जिससे रात-रात में करोड़पति बन जाने से मारे खुशी के दिमाग़ फिर जाने का भय जागे—इनमें से कुछ भी तो नहीं हुआ था। निरा स्थगन, सपाट ज़िन्दगी, बुलबुले तक नहीं—भंवर की तो बात ही क्या? ऊंची-ऊंची विशाल मौजें तक नहीं, ज्वार की तरगें नहीं, भाटे का ख़ालीपन नहीं, वह नदी नहीं जिसमें जलाती-सुलगाती गर्मी के मौसम में सूख जाने की पीड़ा और बारिश में किनारे की सीमा से बाहर धकेलने वाला रेला हो, झील न ही कहें, ज्यादा से ज्यादा तालाब'''।

फटाफट पढ़ाई हो गई। एकाध डिग्री सिर पर आ गिरी। कभी फेल होने का आघात तक नहीं। न ही फ़र्स्ट-क्लास फ़र्स्ट आने की उत्तेजना का अनुभव किया। न सीना तानकर स्कूल के समारोहों में कुछेक इनाम पाए और न ही कभी क्लास-टीचर ने धौल-धप्पड़ ही मारे! स्कूल या कालिज में कभी कक्षा के प्रतिनिधि या मंत्री भी न चुने गए। घर से दूर हॉस्टल में रहकर बेफ़िक्र ज़िन्दगी बिताने का मौक़ा भी न मिला। लेट्रिन में नौकर या दोस्तों के साथ बीड़ी-सिगरेट के दम खींचने का कभी साहस भी नहीं किया। अंडे तोड़कर आमलेट भी नहीं खाया। और टेक्स्ट-बुक में छिपाकर पीली जिल्द वाली चिकनी

किताबें नही पढी । कुछ किया तो केवल इतना ही कि रास्ते पर कालिज आती-जाती लडकियो की ओर देख-भर लिया, और वह भी तिरछी नजर से। गला फाड़कर कभी किसी को गाली न दी । केवल मन-ही-मन कुछ गालियों को चॉकलेट की तरह मुंह मे गोल-गोल घुमा लिया । दो उँगलियाँ मुँह में डाल कर और जीभ को मरोड कर सीटी भी न बजाई । हां, कभी होठों से हल्की-सी सीटी लपका दी जिसकी आवाज अपने तक भी मुश्किल से पहुँची । यही विडम्बना थी —कही, कही भी पहुँचने की ।

पड़ोस में सोलह साल की वह जया रहती थी जो दो चोटियाँ बनाती थी और बालो मे ढेर सारा तेल डालती थी । उसे पत्र लिखने का बहुत दिल होता था । तीन-चार पत्र लिखे भी थे, लेकिन फाड़ डाले थे । जया की बड़ी-बड़ी आँखों में कुछ निमंत्रण भी होता था । लेकिन वे पत्र, जिन्हें वह मन-ही-मन 'लव लेटर्स' कहते थे, उन्हे जया तक पहुंचाया ही नही जा सका । बल्कि अपने बचपन के जिगरी दोस्त सुन्दर को उन्होंने ही एक सरस पत्र लिख दिया था जो सुन्दर ने बेधड़क सविता को पहुँचा दिया था — वह भी हाथों-हाथ। सुन्दर कहता था कि पत्र पढ़कर सविता बहुत ही ख़ुश हो गयी थी—'इतना अच्छा पत्र ! तुम इतनी अच्छी भाषा लिख सकते हो ?' उसने कई बार कहा था । दूसरे ही दिन से सुन्दर और सविता बागों मे, होटलो में और सिनेमा-थियेटरों मे मौज से घूमने लगे थे । 'तुम्हारे लिखे पत्र का ही यह प्रभाव है', सुन्दर ने कहा था । लेकिन इससे उनके दिल में कोई ख़ुशी नही उमड़ सकी थी । उलटे…।

जया भी जैसे उनकी प्रतीक्षा करते-करते और आख़िर झेंपकर उस रमण के साथ घूमने लगी थी । तब वह बहुत ही झल्ला गए थे, रमण और जया पर, और सब से ज्यादा तो अपने आप पर । उन्होंने बहुत चाहा था कि रमण की पैंट पकड़कर कहें कि 'ओरे, सुअर, जया पर से हाथ उठा ले—वह मेरी है !' और उसके साथ झगड़ा मोल लें । लेकिन फिर अपने ही मन मे सवाल उठता था, 'किस अधिकार को लेकर ?' और अधीर हुए उनके हाथ हिम की तरह जम जाते थे ।

भानुभाई के पिता थे पीताम्बरदास जिन्हें सब दासभाई के नाम से पुकारते थे । उन्होंने बेटे के लिए जो कन्या ढूढी थी वह जया नही बल्कि जड़ावगौरी थी —हालांकि उसे 'कन्या' तो कहने की ख़ातिर ही कहा जा सकता था । वास्तव मे वह भानुभाई से एक मुश्त लम्बी थी और गठन भी मजबूत थी । रंग भी स्याह । दो दाँत आगे निकल आये थे । लेकिन धनवान बाप की वह इकलौती बेटी थी । घर का काम-काज अच्छा कर लेती थी । उन दिनों भानुभाई कुछ-कुछ, अधकचरी कविताएँ लिखने लगे थे । उनकी कल्पना की दुनिया मे अपनी मनोवांछित नारी का एक चित्र अंकित हो गया था । लाख कोशिश करने पर भी उस चित्र के साथ जड़ावगौरी का मेल नही बैठ सकता था । दासभाई ने जब भानुभाई को

जड़ावगौरी के साथ शादी करने का हुक्म दे दिया तो भानुभाई बाप के खिलाफ बगावत करने को उत्सुक हो गये थे। निर्भीकता से कहना चाहा था—"मैं मर जाऊँगा, घर छोड़कर चला जाऊँगा, लेकिन इस हिडिम्बा के साथ हर्गिज़ शादी नहीं करूँगा।" और इसके बाद बाहर की जलाती-झुलसाती दुनिया में कड़वे, कठोर और चमचमाते अनुभवों की खोज में चल पड़ने की उन्हें इच्छा हुई थी। लेकिन दासभाई ने जब आँखें तरेरकर और हवा में मुट्ठी उछालते हुए सख्त आवाज में हुक्म दिया तो भानुभाई का सारा आवेश बारिश में भीगी बिल्ली की तरह हो गया और आँखें मूँदकर वह जड़ावगौरी के साथ जुत गये—हालांकि बाद में उन्होंने अपने को यूँ मनाया कि वह भी तो एक अनुभव ही था न? ऐसी औरत के साथ एक ही घर में, एक ही बिस्तर पर सारी जिन्दगी बिता देना—वह एक चुनौती देने वाला अनुभव नहीं तो और क्या था? साथ ही वह खयाल भी उनका साथ नहीं छोड़ता था कि अपने सर्वस्व को त्याग कर भी एक ऐसी मनचाही औरत को पाना जिसको लेकर कविता और कठिन भाषा में पत्र लिखे जा सकें और उसके साथ स्वप्नमय जीवन बिताना—क्या वह एक बेहतर अनुभव नहीं हो सकता? तो, बात फिर ऐसी है! अनुभव का मतलब है अनुभव···यह भी अनुभव और वह भी अनुभव! शुद्ध अनुभव जैसी भी कोई चीज होगी? कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

धीरे-धीरे वह यह महसूस करने लगे कि जड़ावगौरी में ऐसी कोई बात नहीं थी जिसको लेकर उसके साथ उनका मेल न बैठ सके, या फिर वह भी अपने को मनाने की ही बात थी? जो कुछ भी हो, वह औरत ठीक ही थी—जिसकी अधिक अपेक्षाएँ नहीं थी और जब चाहो वह अपना शरीर दे सकती थी। और, शरीर को छोड़कर उसके पास क्या था, जो उससे मिल सकता था? शादी के पाँच साल में उसने तीन बच्चे पैदा करके रख दिये थे। अगर फ़रियाद भी करनी हो तो किस बात को लेकर की जा सकती थी? साल्ला! फ़रियाद करने हुए—भी जी को जलाने वाले अनुभव से—भी कोसों दूर रहना क्या? इतना सारा, इतना सुलभ संतोष मन में कौंधता रहे यह भी कोई अच्छी बात हुई क्या? कभी-कभी उनका जी होता था कि जड़ावगौरी के साथ झगड़ा कर लें कि कहीं इसको लेकर भी जिन्दगी में कुछ खलबली मच जाये तो! लेकिन तुरन्त ही मन में सवाल उठता था; 'क्यों? कोई वजह भी है?' तो फौरन दूसरा सवाल उछल कर आता; बेवजह भी झगड़ा नहीं करते हैं क्या? झगड़ने का मजा—क्या इसका भी कोई अनुभव नहीं ले सकता? रह-रहकर रीज़निंग का यह पत्थर···कुढ़न होती थी इस 'वजह' के झंझट से। जैसे चक्की का पाट था वह। बिना किसी वजह के केवल मन की मौज की ख़ातिर, बेफ़िक्र ढंग से व्यवहार करने का अनुभव नहीं लिया जा सकता क्या, लेकिन ऐसा करने का कोई···फिर वही कारणों का झंझट! अनुभव के लिए कोई

पहुँच जाए। या फिर कोई अनाम ग़लीज़ पत्र उनके घर के पते पर भेज दे जो जड़ावगौरी के हाथों में आ जाए और जड़ावगौरी पहाड़ जैसा बड़ा झगड़ा खड़ा कर दे, और तब वह सीना तानकर यह कह पाएँ कि हाँ, वह सोहिणी दलाल नाम की एक ख़ूबसूरत औरत को सिर से पैरों तक प्यार करते हैं। और जड़ावगौरी ज़मीन पर सिर पटकने लग जाए और मर जाने की धमकी देने लगे और वह अपने भीतर मर्दानगी का अनुभव करने लगें। या फिर जड़ावगौरी को कुछ उल्टा-सीधा समझा कर कह दें कि यह तो किसी अहितचिन्तक ने बदला लेने के लिए झूठ लिख दिया है और यह कह कर वह सारी बात को मज़ाक में ही उड़ा दें। और दूसरे दिन जब सोहिणी दलाल अपने सैन्डविच शेयर करने का आग्रह करती हुई उनकी कैबिन में आये तो वह कहें कि आज मैं आपसे एक ख़ास बात करना चाहता हूँ, और ख़ास शब्द पर अधिक ज़ोर दें और यह सुनकर सोहिणी की आँखों में कुतूहल का भाव झाँकने लगे जिससे वह और भी सुन्दर दीखने लगे। फिर यह तसल्ली करके कि कैबिन का दरवाज़ा ठीक से बन्द है, सोहिणी को करीब आने का संकेत दें और उसकी आँखों में आँखें डालकर कहें—'डु यू नो, हमारे बारे में बैंक में तरह-तरह की बातें चल रही हैं?' और यह कहकर वह सोहिणी की प्रतिक्रिया का मज़ा लेने के क्षण की प्रतीक्षा करें और सोहिणी दलाल 'ओह नो!' कहकर अपनी लाल-लाल जीभ तनिक बाहर निकाल कर मस्ती-भरी हँसी हँसने लगे या फिर यह कह दें कि 'पता है? आपको लेकर आज मेरे घर में झगड़ा हो गया?' और इसमें 'आपको लेकर' इन शब्दों पर ख़ास ज़ोर दें, और सोहिणी दलाल की आँखों में कुतूहल, भय, चिन्ता जैसे भावों की अननुभूत मिठास तैरने लगे। और वह उससे अनाम पत्र और जड़ावगौरी के झगड़े के बारे में बताने लगें। सोहिणी दलाल जब कहे—'ओह, आई एम सॉरी।' तो वह कह दें कि 'इसमें अफ़सोस करने जैसी कोई बात नहीं है। ऑन द कान्ट्ररी, आपको लेकर (फिर उन्हीं शब्दों पर ज़ोर) इतना भी सह लेने का अनुभव हो, यह तो बेहद ख़ुशी की बात है।' और यह कहते हुए वह सोहिणी दलाल के अंगुलियों के काँपते हुए पोरों को भींच दें और पाँच ही मिनिट में वह शाम को गैलेक्सी थियेटर में कोई रद्दी फ़िल्म देखने की योजना बना लें और दफ़्तर से सीधे ही, लेकिन अलग-अलग, वे थियेटर पर पहुँच जाएँ। और हिन्दी फ़िल्मों में पाई जाने वाली सिच्युएशन की तरह जड़ावगौरी भी उसी शो में फ़िल्म देखने आई हो और उन्हें वह सोहिणी दलाल के साथ देख ले और इन्टरवल में वह थियेटर के फ़ॉयर में सोहिणी दलाल को उसकी चोटी पकड़कर घूँसे-मुक्के मारकर बेहाल कर दे। और उनकी भी टाई पकड़कर शेरनी की तरह उन्हें घसीट ले जाए और बदनामी कौओं की कांव-कांव और टिड्डों के टोले की तरह फैल जाए और उनको मरने जैसा लगे और धरती जगह दे तो उसमें समा जाने का जी हो जाए। आत्महत्या के विचार मन में

# तालाब में तैरता थापा

●

## ऊजमशी परमार

रजका[1] इतना घना उग आया था जैसे हवा को बीच से बिल्कुल ही निकलने न देना हो। केवल पानी की नाली और मिट्टी की मेंड़ ने अपने लिए थोड़ी-सी जगह बना ली थी। तेज-रेखा जैसी उस नाली की अजगरनुमा देह मे आकाश का प्रतिबिम्ब दीखता था और लगता था कि नाली पानी की नही बल्कि पारे की बनी हुई थी।

और पारे की उस सदा बहती धारा को क्यारी मे बहाने का, अर्थात् पानी की दिशा बदल देने का काम पूनम किया करती थी। हाथ में फावड़ा लिए और घाघरे का कच्छा बनाकर और ओढ़नी को कमर पर बाँध कर वह झटपट मिट्टी की मेड़ तोड़ देती थी और क्यारी मे पानी लबालब भर जाने पर उसे फिर लगा देती थी।

पायल पहने हुए उसके हाथीदांत जैसे उजले पैर पानी मे छप्-छप् करते चलते थे। और उसके हाथ सड़प्-सड़प् फावड़ा चलाते थे। पानी जहाँ बह रहा हो वहाँ देखते-देखते ही दो बित्ते की ऊंचाई का मिट्टी का ढेर लग जाता था और पानी को नयी दिशा, नयी रफ़्तार मिल जाती थी।

*आकाश में संध्या खिल उठी थी। श्यामल मिट्टी की पृष्ठभूमि में* पूनम की काया ताम्रवर्ण बनकर हल्के-हल्के चमकने लगी थी। रात होने पर पूनम जब खटिया पर लेट जाती तो कड़ी मेहनत से उसकी पीठ जैसे टूटने लगती थी और जैसे-जैसे रात गलती जाती थी वैसे-वैसे उसकी देह में *पानी मे पिघलती नमक की ककरी की तरह थकान की* डली भी···। भैंस और बैलों को चारा देकर वह फिर से खटिया पर लेट जाती है, लेकिन वह भी आसदायक लगता है। घुटनो तक पैर खटिया के नीचे मोड़ कर पास ही पड़ा डंठल का टुकड़ा उठाकर वह पुती हुई

1. मेथी की जाति की एक घास

मिट्टी की ज़मीन पर आकृतियाँ खींचने लगती जो न तो दीखती थी और न ही मिटती थी।...वह फिर से उठ जाती थी। चारा खा लेने के बाद बैल गर्दन घुमाकर उसको देखते भी नहीं थे। उन्हें तो छप्पर के नीचे पड़ी कड़वी से ही वास्ता था। पूनम कुढ़ती थी—निगोड़े कहीं के! अब क्यों देखेंगे मेरी ओर?

आधी नींद में जब आँखें झुकने लगती तो उन आँखों में शादी की पहली रात धूप-छाँव की तरह धुंधली-सी झिलमिला जाती थी। दिल में थिरकन का दौरा और थिरकती पदचाप!

जैसे अभी चारों ओर से खींच लेगा—ऐसे किसी भय की तरह देह को अधिक, और अधिक लपेटता रहता पानेतर।[1]

पूनम ने दो नयनों पर भौंह तानकर नाक की डंडी के ऊपर जैसे जोड़ दी। और फिर खटिया की नारियल की रस्सी पर नाख़ून से उंगली घिसने लगी। तड़के-तड़के कमबख़्त काम भी क्या करूँ? बछड़ा दौड़ा-दौड़ी करते-करते एक ही जगह भागने लगे तो उसे डटकर खूंटे से बाँध दे, मगर...और उसमें भी कौन-सा सुख धरा है जिसे कोई याद करे? लेकिन यह कमबख़्त मन भी जब देखो वहीं जाकर...।

खटिया से उठकर वह चंदरी भैंस के पास गयी। चारा खाने में लगी चंदरी को उसके हाथों की थपथपाहट भायी नहीं। हवा में अपने सींग झुलाकर उसने 'हुंकारा।

"ओहे! क्या कहने तेरे नखरे। मर तू...", कहती हुई पूनम वहाँ से भी लौट आयी। ये मवेशी भी आज उसके परस को ठुकरा रहे थे। "अरे, मैं तो वन-वन की जली हुई हूँ। आदमी तो भलाई को भुला ही देता है। लेकिन जानवरो, तुम सब भी मेरे दुख को क्यों नहीं समझते? क्यों ढकेल-ढकेल कर मुझे दूर कर रहे हो?"

ओढ़नी कंधे से खिसक रही थी तो उसने उसे खिसकने दिया। 'जिसे खिसकना ही है उसे क्योंकर रोका जाए, बाई?'

खटिया उसकी आँखों में ऐसे चुभने लगी जैसे वह काँटों की शय्या हो! एक हल्की-सी जम्हाई लेकर दातुन लेने पनसाल की ओर मुड़ी। घर में दाखिल होते ही पुती हुई दीवार पर लगे रोली के दो थापों[2] पर उसकी आँखें टिक गईं। दो थापे बड़ी हथेलियों के और दो छोटी हथेलियों के। छोटे थापे पर पूनम ने अपनी हथेली रख दी जो उस पर बिल्कुल फ़िट बैठ गई। हथेलियों के थापों के नीचे वह निकली रोली के निशान थे। निशान ही तो थे। लेकिन पूनम ने चौंककर अपनी

---

1. शादी के वक़्त दुल्हन को पहनाई जाने वाली सफ़ेद साड़ी
2. सौराष्ट्र में शादी के अवसर पर बारात के विदा होते समय दुल्हा-दुल्हन पानी में घुली रोली में हाथ डुबोकर घर की दीवार पर हाथों के थापे लगाते हैं।

हथेली को घुमाकर रास्ते की बत्ती के उजाले की ओर बढ़ाया। 'रोली के इस गीलेपन पर चलती हुई जाने कितनी सुबह-शाम बीत चुकी है, मेरी बाई! निशान रह गया और गीलापन बह गया!'

थाली जैसे बड़े पंजे की वह पौरुषमय छाप···पूनम उसे ताकती रह गई। उसके होठ फड़फड़ाने लगे। 'शैर के लोग फोटू निकाल कर अपने बटुए में रखते हैं। और औरतें गले के लाकेट में अपने मरद के फोटू रखती हैं। हम कहाँ से फोटू लाएँ, मेरी बाई! यही हमारे लिए फोटू है!'

उसकी उंगलियों ने उस छापे को बीच से छुआ। छूते ही उसकी उंगलियाँ थिरक उठीं। 'मर तू! कुछ शर्म भी है?' और वह एक फीकी-सी हँसी हँस दी। खम्भे की बत्ती के हल्के उजाले में वह-हँसी, पीली पड़ गयी रुई जैसी लगती थी। दहलीज पर बापू की चारपाई की ओर देखा तो वह फ़ीकापन और भी, फीका हो गया। लेकिन यह देखकर कि बापू अभी सिर तक पिछौड़ी ओढ़कर सोए पड़े थे, वह फिर से रोली के थापे की ओर बढ़ी।

अचानक ही छप्पर के नीचे कोई जानवर घुस गया या जाने क्या हुआ कि बंदरी पागल की तरह उछलने लगी।

"खूंटा तोड़ेगी क्या, कमजात?" भैंस को चार गालियाँ फटकारते हुए पूनम के बापू उठे और लाठी लेकर छप्पर के नीचे घुसे।

पूनम पनसाल तक पहुँचे बिना ही लौट आयी।

दोपहर हुई और पूनम फिर से काम निबट जाने पर खाली ही गयी तो रोली के थापे उसके करीब और करीब आने लगे।

"कमबख्त ये थापे! एक पल भी चैन नहीं लेने दे रहे।" वह बुदबुदाई और पुती हुई दीवार पर लगे दो जोड़ी थापों को नफरत से देखने लगी। 'अब इस दीवाली पर दो-दो बार अगर इस पर चूने की पुताई न करा दूँ तो पूनमड़ी मेरा नाम नहीं···यह क्या, ऐं?'

उसने पल्लू उठाकर मुँह दूसरी ओर फेर लिया—गोया आँखों के सामने मच्छर उड़ने लगे हों!

'और दीवाली भी अब कहाँ दूर है? पन्द्रह दिन ही तो रह गए हैं।···पन्द्रह दिन के बाद क्या? कहा नहीं दीवाली? हाय! इस दीवाली पर तो राजलो और रसली का गौना होगा और दोनों चली जायेंगी। और मेरी भाभी कुमरड़ी भी कई दिनों से हिनहिना रही है। वह तो रोकने पर भी नहीं रुकेगी? और तुम··· लोग तो गालों पर उंगली घोंपना ही बाकी रखेंगे। तुम तो, बाई मेरी, पीहर में ही सांड़नी जैसी हो गयी! न यहाँ गौना होता है, न वहाँ से कोई लेने आता है। बाद की लड़कियाँ भी भानजों-भतीजों को गोद में उठाकर मिलने आने लगी हैं।

शादी की पहली रात को पति के पैरों की जो लात पड़ी थी। उससे जैसे

अंग-अंग मे पीड़ा हो रही हो, वह ऐसे दुहरी हो गयी। 'अगर मैं अच्छी नही लगती थी तो पाँच लोगो के सामने हाथ नही पकड़ना था।'

उस समय भी वह कुछ ऐसा ही बड़बड़ाई थी।

लेकिन आज उसकी आँखो के सामने थालो जैसा बड़ा रोली लगा थापा था। हाथ पर लगी रोली अभी साफ़ भी नही हुई थी कि उसी हाथ का थप्पड़ उसके गाल पर पड़े कोढ़ के चकत्ते पर सनसन् करता हुआ फैल गया था। वह चकता अब पानी के रेले की तरह गाल के गड्ढे पर सरकता हुआ गले तक पहुँच गया था।

'मैं भी देखूँगा कि कहाँ तक वह हरामी बुलाता नही है? कहाँ तक अपने हाथों से टप्-टप् करते रोटियाँ बनाता रहेगा? और पूनु, मेरी लड़की, तुम रास्ते में थोड़े ही बैठी हो? बापू है तो तुम अपना खाओ-पियो और मौज करो। वह हरामजादा जिस दिन तुम्हारे ऊपर दूसरी लाएगा तब जाकर मैं एक झटके से उसकी खोपड़ी के दो टुकड़े कर दूँगा। तुम धीरज रखो, बेटी पूनु!'

पूनम अब भी थाली जैसे बड़े पंजे के थापे को टकटकी लगाए देख रही थी। ···उस थापे मे तो वाघजीपरा गाँव है, मन्दरपरा है और मन्दरपरा मे रता मशरू की ड्योढ़ी है। रता मशरू तो अब नही रह गए है, मगर उनका बेटा जो है वह पूनम का घरवाला है और उसका दिमाग़ बहुत तेज है। लेकिन रूप का तो क्या कहना···उसे देखो तो मानो अर्जुन को देख लिया।

'ओ, ओ रे, थापे! अपनी लाली से मेरे चकत्ते को ढक दो। मैं और कुछ नही चाहती। कोई चाहे आए या न आए। मुझे लेकर जाए या न जाए। मुझे इन पाँचों उँगलियों मे समा जाने दो। फिर मुझे कोई देखे नही। कोई उंगली उठाए नहीं।'

लाल-लाल थापे लबालब भरे तालाब मे तैरने लगे थे और होठों की मलमल थरथराते थापे को छूने लगी थी। और फिर तो राम जाने मुँह से क्या-क्या निकल रहा था!···

और पीछे पूनम के बापू आकर खड़े रह गए और आते ही जैसे पत्थर के बुत बन गए!

(अनु०—सरला जगमोहन)

## सु० कृष्णमूर्ति

जन्म—1929, पुदुक्कोट्टै, (तमिलनाडु)। मातृभाषा—तमिल। अंग्रेजी, बंगाली, हिन्दी, संस्कृत और जर्मन से भी परिचय। 1955 से भारतीय आडिट और लेखा विभाग कलकत्ता में कार्यरत।

1951 से अंग्रेजी और तमिल में लेखन। प्रकाशित रचनाएँ—'नजरूल' पर लिखित जीवनी एवं



समीक्षा परख पुस्तक पर 1984 का 'इलक्किया चितणी' पुरस्कार। 1 कथा-संग्रह। 5 पुस्तकों के अन्य भाषाओं से तमिल में अनुवाद।

● 22/24, मनोहरपुकुर रोड, कलकत्ता-29

## ना० पार्थसारथी

जन्म—18 दिसम्बर, 1932। साहित्य में एम० ए०। तमिल साहित्यिक मासिक 'दीपम्' के सम्पादक।

प्रकाशित रचनाएँ—लगभग 65 पुस्तकें—उपन्यास, कहानियाँ, यात्रा-विवरण, निबन्ध एवं कविताएँ। उपन्यास 'समुद्या वीधि' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार (1971) अन्य अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

रचनाएँ—हिन्दी, गुजराती,



मलयालम एवं कन्नड़ सहित अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में अनूदित। उपन्यास 'अयमाविम् रागगल' हिन्दी एवं गुजराती में अनूदित।

● 39, वेस्ट रोड, वेस्ट सी० आई० टी० नगर, मद्रास-600035

अपने को उस प्रान्तर के ब्राह्मण परिवारों का स्वयंभू अभिभावक, अघोषित मुखिया मान बैठा था। नहाते वक्त प्रतिदिन अपना यज्ञोपवीत निकाल कर साबुन से धो लिया करता था। उस द्विजत्व-प्रतीक पर बहुत मोह-ममत्व रखता था।

उन दिनों पुदुक्कोट्टै रियासत में जहाँ-कहीं चेट्टियार (बनिया) लोगों की बस्तियाँ थीं, ब्राह्मणों को पेट पालने की चिन्ता नहीं रहती थी। रामवरम्, कडियापट्टि, अरिमलम्, कोत्तमंगलम्, कानाडुकात्तान्-जैसे चेट्टियार बहुल स्थानों में, विवाह, पर्व, व्रत, त्योहार, क्रिया-कर्म आदि होने पर ब्राह्मणों को न्योता अवश्य दिया जाता था; भरपेट भोजन खिलाकर दक्षिणा में मुद्रा भी देकर भेजा जाता। बालकों को आधी दक्षिणा नियत थी।

नेललु मण्डी गली के रामस्वामी को पढ़ाई से घिन हो गई। मन न लगे तो कोई क्या करे? उदरपूर्ति की तो कोई चिन्ता नहीं, कुलचिह्न यज्ञोपवीत तो था ही! जगह-जगह घूमकर अन्नदाता महानुभावों की सहायता करने में जुट जाता था। सद्भाव प्राप्त करना प्रमुख उद्देश्य था, मेहनताना गौण।

एक गाँव में अमुक चेट्टियार के यहाँ शुभ विवाह है, तो दूसरे शहर में क्रिया-कर्म के समापन पर 'शुभस्वीकारम्' वाला ब्रह्मभोज, तीसरे दिन और मुहल्ले में 'समाराधनै' (अन्नदान), चौथे दिन कोई और शुभ पर्व या त्योहार। इस प्रकार नेललु मण्डी वाला रामस्वामी घुमंतु, धार्मिक-स्वयंसेवक बन गया। किन्तु दशहरे के दिन रियासत की राजधानी पुदुक्कोट्टै में अवश्य हाजिर हो जाता था। वहाँ के राजघराने के अन्नसत्रम् (धर्मशाला) में दसों दिन उसकी देखरेख में अन्नदान की पंगतें लगती थीं। अपनी बहुमुखी सेवाओं के कारण उसका व्यक्तित्व रोबीला बन गया था।

वह फुर्तीला युवक था, अथक परिश्रमी। रसोई के लिए रसद लाकर देना, स्टोररूम की रखवाली करना, तरकारियाँ काटना, बर्तन बटोर लाना, पानी भरना, पंगत पर पत्तल बिछाना, भोजन परोसना, खाने वालों की जाच-पड़ताल —कोई गड़बड़ करे, तो डांटना-फटकारना इत्यादि।

अगर कोई भूखा-प्यासा अब्राह्मण भेष बदलकर पंगत में आ बैठ जाता, तो रामस्वामी को देखते ही, उसकी घिग्घी बंध जाती। तुरन्त उसका कान पकड़ कर पंगत से उठवाता और बाहर ढकेल देता। यह जिम्मा स्वयं ले रखा था रामस्वामी ने। सैकड़ों ब्राह्मणों की पंगत में कुछेक भूखे-प्यासे, भोजन लोलुप घुसपैठिये, ब्राह्मणेतरों को माफ़ कर देने में कोई बड़ी हानि तो नहीं हो जाती। फिर भी रामस्वामी की धर्म-सापेक्ष मानसिकता का अपना हौसला है, हठ है, ताम-झाम है।

कभी-कभार उदार भी बन जाता। अपने चेले-चपाटों और प्रिय पात्रों को खीर, पकवान आदि दुबारा परोस देता। परिचित अपराधी को एक-दो हलकी

गालियाँ देकर पिटाई किये बगैर छोड़ देता।

एक दिन मेरा सहपाठी दोस्त मारिमुत्तु बड़ी धर्मशाला में ब्राह्मणों की पंगत में आकर बैठ गया। गरीब किसान परिवार का लड़का था। घर में एक जून का खाना तक मयस्सर नहीं था। ब्राह्मणभोज की प्रशस्तियाँ सुनकर उसका भी मन ललचा गया। वह माथे पर भभूत की लकीरें खींच, गले पर नकली जनेऊ धरे, विप्र बालकों के साथ आकर बैठ गया। अचानक मेरी दृष्टि उस पर पड़ गयी। मैं डर गया, अगर रामस्वामी ने इसे देख लिया, तो क्या होगा?

थोड़ी ही देर मे रामस्वामी पंगत का निरीक्षण करने आ गया। मेरा दिल धड़कने लगा। उसको देखते ही बेचारे मारिमुत्तु का चेहरा मुरझा गया, डर के मारे वह काँप उठा। घबराहट ने उसे बेपर्द कर दिया।

रामस्वामी ने तत्काल ही उस काले-कलूटे लड़के को पंगत से उठाया, कान खींचकर बाहर लाया और डाँटा—"अबे कमीने, इस बार छोड़ देता हूँ, आइंदा इस तरह बेईमानी की, तो तेरी खाल उधेड़ कर रख दूँगा। भाग यहाँ से!"

रामस्वामी के चेहरे पर कर्त्तव्य-निर्वाह की संतुष्टि झलक उठी। वह पूर्ववत् अपनी सेवा मे जुट गया।

• • •

अब कुछ महीने पहले की बात है।

सरकारी दफ्तर मे जहाँ मैं सहसचिव था, स्वामिनाथन नाम का एक नौजवान नियुक्त किया गया। वह स्थान अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित था। स्वामिनाथन के काम पर लग जाने के कुछ ही दिनों मे शिकायती पत्र बड़े अफ़सर के पास पहुँच गये कि असल मे स्वामिनाथन अनुसूचित जाति का नहीं है। झूठा प्रमाण-पत्र दिखाकर नौकरी पा गया है। मामले की जाँच करने का जिम्मा मुझे सौंपा गया।

मैंने स्वामिनाथन को बुलाकर बात की। बड़ी दयनीय स्थिति थी उसकी। ग़रीबी का मारा, भरपूर काबलियत रखने वाला झंझट में फँस गया। मैं समझ गया कि मामला गड़बड़ है।

—"देखो, स्वामिनाथन, सच-सच बोलो, वाकई तुम अनुसूचित जाति के हो?"

उसका उदास चेहरा उतर गया। संभलते हुए प्रतिवाद करने लगा—"क्यों सर, यह सवाल करते हैं आप? मेरा सर्टिफिकेट तो देख लीजिए ना! अनुसूचित जाति का हूँ।"

मैंने इत्मीनान से कहा—"होशियार न बनना, बाक़ायदा शिकायती पत्र आये हैं कि तुम अनुसूचित जाति के नहीं हो। जाली सर्टिफ़िकेट पेश कर नौकरी पा गये हो। यह तो बड़ा सीरियस मामला है। जाँच-पड़ताल का काम मुझे सौंपा

गया है। सच को क़बूल कर लो। जाँच के बाद पोल खुल गई, तो तुम्हें जेल की हवा खाने से कोई बचा नहीं सकता, चेत जाओ !…"

यह सुनते ही स्वामिनाथन थरथर कांप उठा। रो-पड़ा। गिड़गिड़ाने लगा—"सर, मैं चार साल से नौकरी के लिए मारा-मारा फिर रहा हूँ। कहीं भी, कोई भी काम नहीं मिला। सर, सुना था कि अनुसूचित जातवाला हो तो तुरन्त नौकरी मिल जाएगी। मैंने रिश्वत देकर जाली सर्टिफिकेट पाया। उसी के सहारे यह नौकरी मिली। सर, मुझे माफ़ कर दीजिए, मुझे छोड़ दीजिए। आपके पांव पड़ता हूँ, मेरी लाचारी पर रहम कीजिए, सर।…"

—"देखो, स्वामिनाथन तुम्हें माफ़ करना या सजा देना मेरे बूते की बात नहीं। तुम्हारी हालत से मुझे हमदर्दी है। मैं जानता हूँ कि पेट पालने की मजबूरी ने तुम्हें यह रास्ता दिखाया है। इतना तो तय है कि आगे से तुम इस काम मे रह नहीं सकोगे। अभी इस्तीफ़ा देकर अपने घर चले जाओ। सिफ़ारिश कर देता हूँ कि अभियुक्त ने अपना अपराध स्वीकार कर नौकरी छोड़ दी है। इसलिए उस पर कार्यवाही न कर, माफ़ कर दिया जाए।"

वह गद्गद् होकर कहने लगा—"आपकी सलाह मानता हूँ, सर !"

उसी वक़्त उसने त्यागपत्र लिखकर दे दिया।

—"अपना पता लिखो, वेतन की रक़म वहीं भिजवा दूँगा।"

वह लिखने लगा।

मैंने अचकचाकर पूछा—"तुम पुदुक्कोट्टै के हो ? तुम्हारे पिता का नाम ?"

—"रामस्वामी !"

—"काम क्या करते थे ?"

—"कोई स्थायी काम नहीं, पढ़े-लिखे भी नहीं थे। जहाँ-जहाँ अन्नदान, दान-दक्षिणा होती थी, वहाँ स्वयं जाकर सेवा-टहल कर लिया करते थे। परिवार का हाल बहुत दयनीय था। वह सब बन्द हो जाने पर भीख माँगते फिरते थे।…"

—"अरे।…क्या तुम नेललु मण्डी वाले रामस्वामी के…?"

—"बेटा हूँ, सर।…"

(अनु०—र० शौरिराजन)

आध घंटे तक करवटें बदलती रही लेकिन नींद नहीं आ रही थी। बत्ती जला कर उसने एक गिलास पानी पिया।

वह अपनी उन अविवाहित सहेलियों को याद करने लगी जो तीस वर्ष की उम्र तक फ़िल्मों में काम करती रहीं, अभिनय-कला में भी सर्वश्रेष्ठ रहीं, प्रसिद्धि भी पाई, पर अचानक एक दिन तिरुपति या गुरुवायूर में अपना विवाह करा कर अपने पति के साथ सुखपूर्वक पारिवारिक जीवन बिताने लगी थीं। उन यादों को विस्मृत करना चाहते हुए भी वह न कर सकी। बार-बार ये यादें आकर उसे घेर रही थीं।

अचानक मेज की ड्राअर को खोल बैंक की पास बुक, डिपाज़िट रसीदें, हिसाब आदि को देखने लगी।

बैंक में सावधि जमा बीस लाख के ऊपर थी। लॉकर में तीन लाख से भी ज्यादा क़ीमत के आभूषण थे। हिसाब में न रखे गये रुपयों को उसने कुछ व्यक्तियों को ब्याज पर दे दिया था। कोठी की कीमत क़रीब पन्द्रह लाख होगी। एक बहुत बड़ी कार और एक छोटी कार। महाबलीपुरम के रास्ते में दस एकड़ में फैला नारियल का बगीचा। अब तक अनुबंधित फ़िल्मों के साथ ही अभिनय कला से संन्यास ले भी ले, तो भी पहले से अनुबंधित सात फ़िल्में और थीं। दूसरी अभिनेत्रियों के साथ जब उसने अपनी तुलना की तो उसका दुख द्विगुणित हो उठा। उन पर कोई असहनीय कष्ट आने पर उन्हें सांत्वना एवं सहानुभूति देने के लिए उनके माता-पिता एवं रिश्तेदार थे, पर उसका कोई अपना नहीं था।

फ़िल्म में काम करने के बाद किराये का बड़ा मकान देखकर जिस वर्ष उसमें रहने आई, उसी वर्ष उसकी माँ का देहान्त हुआ था। याद आते ही उसकी आँखें सजल हो उठीं। माँ की मृत्यु के एकदम बाद उसे एक के बाद एक फ़िल्में मिलने लगीं। उससे उसे धन मिला, प्रशंसा मिली पर क्या इनके मिलने से सब कुछ मिल गया था? एकदम अकेली होने का अहसास तो उसे कई बार हुआ था लेकिन आज के जैसी तीव्र वेदना, थकावट, एकाकीपन की अनुभूति उसे कभी नहीं हुई थी।

बैंक पास बुक, हिसाब-किताब को उसने ड्राअर में ठूंस कर बन्द कर दिया। क्योंकि उसमें भी उसका मन नहीं लगा था। बालकनी में खड़ी होकर बगीचे की हरी-भरी घास, फूलों और पौधों को, जो उस समय चित्रवत् दिखलाई दे रहे थे, देखने लगी। रात का कोहरा, सड़क की धूमिल बत्ती, सभी ऐसे लग रहे थे मानो नीले मलमल के कपड़े से ढँके हों। पानी डालने के बाद भी बालकनी में रखे गमले के पौधे अब भी मुरझाए ही हुए थे। सुबह होने पर देखा जायेगा, सोचती हुई वह अंदर चली गयी। फिर एक बार मेज के नजदीक आकर गुरुवायूर वाले निमंत्रण पत्र को निकाल कर देखा। ड्राइवर से पूछा गया प्रश्न, 'तुम्हारे कितने बच्चे हैं?'

— "लेकिन

—"लेकिन क्या ?"

—"वेतन में फ़र्क पड़ रहा है।"

—"अच्छी बात है।"

—"अच्छी बात नहीं है। आइ विल गेट लेस देन वाट आई एम गेटिंग हीअर। करीब-करीब दो सौ रुपये कम मिलेंगे।"

—"लेकिन वहाँ तो तुम्हें स्कोप मिलेगा। आखिर वह एक दैनिक समाचार पत्र है। वहाँ तुम्हें अच्छा लगेगा।"

—"वह बात सही है, लेकिन।"

उसकी बात काटते हुए मैंने कहा—"तुम्हें इस्तीफा देना पड़ेगा। फ़ॉरमैलिटी निभानी पड़ेगी। दे दो इस्तीफ़ा। और इस महीने के अन्त तक तो यहीं रहो।"

—"वह तो काम कर दूँगा। चालू अंक का काम पूरा करता हूँ।"

"वही अच्छा रहेगा।" मैंने निश्चित जान लेने के लिए पूछा—"लेकिन तुम्हारी बात पक्की हुई न ? मतलब कणिकजी से कहा जा सकता है न ?"

—"हाँ जी, पक्की हो गयी है बात, कल अपाईंटमेंट लेटर भी मिलेगा।"

—"बहुत अच्छा।"

मैं जनरल मैनेजर सुभेदारजी के पास गया और कहा—

—"सर, आइ होप आइ केन डू समथिंग फ़ॉर युअर डॉटर।"

—"कैसे ?" उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की।

"सर, आइ थिंक आइ रिक्वायर वन असिस्टेंट। मिस्टर गोखले तो छोड़ के जा रहा है। तो आपकी लड़की को…।"

"थैंक्यू, थैंक्यू", उन्होंने ख़ुशी से कहा।

—"ऑफ़कोर्स सर, थ्रू मिस्टर कणिक, व्हेन ही इज दि मैनेजर ऑफ़ अवर पी० पी० आर० सेल।"

—"डोंट वरी, आप विल टैल हिम।"

मुझे कणिकजी ने बुला लिया और पूछा—

—"आपके गोखले जा रहे हैं न ?"

—"जी हाँ, उसने ऐसा ही कहा है।"

—"फिर आपके लिए एक असिस्टेंट की ज़रूरत होगी।"

—"साहब, आपकी इजाजत हो तो…।"

—"इजाजत की क्या बात कर रहे हैं। यू विल हैव दि असिस्टेंट। आफ्टर जी० एम० सुभेदारजी की लड़की है। शी हैज ए डिग्री इन जर्नलिज़्म। तो मुझे लगता है कि हम उनकी सजेशन स्वीकार करेंगे।"

"लेकिन सर, आपने जैसे मेरे और गोखले के बीच झगड़े कराये वैसा तो नहीं होगा ?" मैंने आक्रामक मुद्रा में कहा।

"प्लीज डोंट मिस अंडरस्टेंड मी, मिस्टर जोगलेकर !" कर्णिकजी ने कहा—"तुम दोनों के बीच झगड़ा कराने का मेरा कोई इरादा नहीं था। डोंट से लाइक देट और मान लीजिये अगर होगा तो भी अब जब जी० एम० की ही लड़की आपके यहाँ काम करने आ रही है। यू सी।"

मैं समझ गया कि वह क्या कहना चाहते थे। अधिक कुछ न कहकर मैं वहाँ से चल दिया और प्रसन्न होकर अपने स्थान पर बैठ गया।

आख़िरी दिन मुझसे विदाई लेने के लिए रत्नाकर आ गया। पहले बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा। फिर बोला—

"मैं जा रहा हूँ, आपने मेरी बड़ी मदद की है। कुछ गलतियाँ हुई हों तो माफ कर दें। आशीर्वाद दीजिये।"

उसके शब्दों से मैं बहुत शर्मिन्दा हुआ। वह चल दिया, लेकिन 'बेस्ट विशेज' इतना भी मैं नहीं कह सका। उसके चले जाने से मेरी एक तरह की चिन्ता मिट गयी थी। एक संभाव्य प्रतिस्पर्धी को मैंने दूर हटाया था। हल्का-हल्का और प्रसन्न महसूस करने में हर्ज नहीं था। लेकिन मैं अधिकाधिक शर्मिन्दगी महसूस करता रहा।

(अनु० —लीला बांदिवडेकर)

सिंधी

श्याम जयसिंघाणी

इन्दिरा वासवाणी

## श्याम जयसिंघाणी

जन्म—12 फरवरी, 1937, क्वेटा ब्लूचिस्तान (अब पाकिस्तान) में। शिक्षा—बम्बई विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में बी० ए० आनर्स।

प्रकाशित रचनाएँ—2 उपन्यास, 3 कहानी-संग्रह और 1 कविता-संग्रह। कई पुस्तकों का संपादन और सिंधी में अनुवाद। कविता-संग्रह 'विछोटियूं' पर भारत सरकार सिंधी-विकास योजना के अन्तर्गत 1981 में पुरस्कार। चित्रकला और फ़िल्म क्षेत्र में गहरी रुचि।

लगभग 50 पुस्तकों के आवरण चित्र बनाए। सिंधी फ़िल्म 'हो जमालो' में छायांकन, सह-निर्देशन। कहानियों में शहरी जीवन की विसंगतियों और वोरियत का चित्रण।



● 8, कमल फूल सोसायटी, कलेक्टर्स कॉलोनी, चेम्बूर, बम्बई—400074

## इन्दिरा वासवाणी

जन्म—21 अगस्त, 1936 को मीरपुर ख़ास, सिंध (अब पाकिस्तान) में। शिक्षा—एम० ए०, बी० एड०।

प्रकाशित-प्रसारित रचनाएँ—लगभग 25 कहानियाँ, 30 कविताएँ और रेडियो से 100 वार्ताएँ। कुछ कहानियों का हिन्दी और गुजराती में अनुवाद। कम लिखने पर सिंधी लेखिकाओं में अलग स्थान। कहानियों में सिंधी जनजीवन का चित्रण।



संप्रति—आदर्श कन्या विद्यालय, गांधीधाम (कच्छ) में प्रधानाध्यापिका।

● आदर्श कन्या विद्यालय, गांधीधाम, कच्छ (गुजरात)

## ऐन अदर डे

श्याम जयसिंघाणी

दफ़्तर के बाद फ़ेस्टिवल की मूवी देखकर नयना और सुनील आखिर-कार घर पहुंचे। पिछले दस दिनों से वे दोनों प्रतिदिन शाम को इन्टरनेशनल फ़िल्म फ़ेस्टिवल की फिल्में लगातार देख रहे थे। एडवान्स बुकिंग के अनुसार अभी उन्हें चार फ़िल्में और देखनी थी। एयर-कन्डीशंड थियेटर में लगातार बैठने के कारण दो दिनों से नयना को खांसी थी। जिस एक्सप्रेस बस में कॉलोनी पहुँचने के लिए वे सवार हुए थे, उसने सवा घंटा लिया था। ट्रैफिक जैम के कारण एक्सप्रेस बस लगड़े गधे की भांति कतार में रुकती-रुकती आयी थी और उस गधा-गाड़ी में सवार ये दोनों चुपचाप परस्पर हाथ पकड़े बोरियत को झाड़ने के प्रयत्न में लगे रहे थे। उनके इर्द-गिर्द कितने ही डिस्टर्बिंग तत्व थे, जिनके साथ रहकर दोनों ने सफ़र किया था।

बस में एक युवा लड़कों की टोली सफ़र कर रही थी। उनकी जुबानें नॉन स्टॉप चल रही थीं। सब कोलाबा मार्केट में सेल्समैन थे और वे प्रत्येक वाक्य के पश्चात्, प्रत्येक वाक्य के पूर्व, प्रत्येक वाक्य के मध्य में—कहीं भी, अनिवार्य रूप से माँ की...की अभिव्यक्ति का दिल खोलकर उपयोग कर रहे थे। और आस-पास के लोग सुनते-सुनते यह राय जोड़ने का अधिकार लेने लगे थे कि उनका कल्चर 'माँ की'... पर आकर ठहर गया था...।

नयना ने कहा था—"तुम्हारा यह फ़िल्म फेस्टिवल वाला चक्कर मोनोटोनस है। ऑफ़िस की तरह, घर की तरह...।"

—"बिस्तर की तरह...." सुनील ने धीरे से कहा था, लेकिन नॉर्मल वॉल्यूम में कहा था। "हाँ...इस बस के सफ़र की तरह...।"

—"यही समझो। शेष चार दिनों के टिकट या तो किसी को दे देना या किसी सहेली के साथ आकर देख आना। घर से ऑफ़िस, ऑफ़िस से सिनेमा हॉल, मध्यान्तर में रोज मुझे समोसे और हैमबर्गर

खा-खाकर और एस्प्रेसो काफ़ी पी-पीकर मैं बोर हो गया हूं।"

—"कल से मैं अर्धनारीश्वर का हिसाब शुरू करूंगा। तू सीधी घर जाना और मैं अकेला गुफाओं में नृत्य करके आऊंगा।"

उस गया-बस का ड्राइवर भी किसी खास समय में जन्मा कीड़ा था। एक पुराने किस्म का सस्ती क़ीमत वाला गंदा डबल बैटरी फ्रेम उसकी आँखों पर चढ़ा था। बस, यही उसका चेहरा था। मुसाफ़िरों को चुपचाप सताने का सुकून वह किसी भी तरह गंवाना नहीं चाहता था। ट्रैफ़िक जैम से बस बाहर निकालने के बाद खाली चमकीले रास्तों पर से बस को तेज दौड़ाने की और गलती से चढ़ आए मुसाफिरों को सिगनल पर नहीं उतरने देने की वह आखिर तक पूरी कोशिश करता आया था।...नयना और सुनील ने कुछ समय स्वयं को पिक्चर का विश्लेषण करने में व्यस्त रखने का प्रयत्न किया था—ड्राइवर की हरकतें जांचते हुए, सेल्समेन टोली की 'माँ की...' फ़िक़रे को कानों से झाड़ते हुए...।

—"कैसी लगी आज की मूवी ?"

—"मुझे बालक की वह सर्द निहार नहीं भुलाई जाती...।"

—"ओशीमा अलग किस्म का फिल्म मेकर है।"

—"उसके माँ-बाप न थे, कसाई थे...बच्चा अगर दुर्घटना में मारा जाता तो...नाटक सत्य बन जाता।"

—"लड़का तो भागकर भी उनके पास वापस आया।..."

—"माँ सौतेली थी...।"

—"बाप निर्दयी था...।"

—"अकेलापन उससे भी ज्यादा खतरनाक है...बालक ने जान लिया था कि इसी तरह रचित दुर्घटना के नाटक के कारण उसका परिवार पल रहा था। इसीलिए उसका न करना अथवा माँ-बाप को छोड़कर भागना फ़िज़ूल था।"

—"हाँ, तू लगभग ठीक कहती है। बालक के सामने एडजेस्ट करने के सिवाय अन्य कोई रास्ता न था।..."

—"तब तो उसकी सौतेली माँ, जो उसे एक बार शक होने पर मारती है कि वह उसकी जासूसी करता है, उसके बाद उसे सौगात के तौर पर घड़ी देती है। जिससे वह उसके शादी के सिवाय बाहरी रिश्तों को बाप के आगे न खोले, मतलब कि बालक को बस हरेक बन्दोबस्त का हिस्सा बनना पड़ता है, जिसमें परिवर्तन लाना उसके बस के बाहर की बात है।"

—"उसके वश में तो कुछ भी नहीं था, नयना...ही वॉज़ सिम्पली ए कमोडिटी।..."

—"यू आर राँग"...जब बालक पर क्रोधित होकर उसका पिता उसे पीटता

है, माँ उसके बचाव में पति से फिज़ीकली लड़ती है, और इस लड़ाई में पति के हाथों गला दबने से उसके लगभग मरने की नौबत आती है···इट इज ऑल हौंटिंग।

—"इट इज हरमेटिक वर्क ऑव ओशीमा।···"

घर पहुँचकर वे दोनों कपड़े बदल ही रहे थे कि डोर बेल बज उठी। नयना तुरन्त बाथरूम में घुस गयी और सुनील ने हड़बड़ाहट में पाजामे के बटन बन्द करते हुए दरवाज़ा खोला। पड़ोसी घर का बच्चा था—"अंकल, आपका पत्र··· ···स्टेम्प्स कम लगी थी, पोस्टमैन ने जुर्माना लिया है···।" लिफ़ाफ़ा देकर बच्चा वापस मुड़ रहा था कि सुनील ने उसे रोका और उसे जुर्माने वाले पैसे ज़बरदस्ती पकड़ा दिये। दरवाज़ा बन्द करने के बाद उसने देखा, नयना किचन की ओर जा रही थी।

—"डू यू नीड माय हेल्प ! नो···?"

—"हाँ, फ्रिज से तैयार सब्ज़ी का बाउल निकाल लाओ और सलाद काटो, तब तक मैं सॉसेजिज तल लेती हूँ।"

—"सॉसेजिज। कब लाई ?"

—"थियेटर पर तुम्हारे इंतज़ार में बेवकूफ़ बनने की बजाय पास के मेक्फ़ो स्टॉल से मैंने कुछ फ़ूड स्टफ लेकर पर्स में डाल लिया था।···"

फ़्रिज के चक्कर और सलाद की कटाई के पश्चात् डबल पैग से तुरन्त दो सिप्स लेते हुए सुनील ने पूछा—"पियोगी ?"

—"यह तुम्हारा संसार है। खाना टेबल पर लग चुका है, फिर भी पी रहे हो ?···"

—"अच्छा है, आज पिटा-पिटा सवाल नहीं किया—आख़िर पीते क्यों हो ?···"

दोनों खाने पर जुट गये। खाकर, बिस्तर पर बिछ गयें।

—"तुम्हें वह अर्धनारीश्वर वाला नृत्य याद है ?"

—"हाँ, याद है···।"

—"नृत्य-गीत ?"

—"गीत याद रखना तुम्हारा काम है···।"

सुनील ने उस नृत्य-गीत के उच्चारण का प्रयास किया, परन्तु बे-लचक थके होंठों से बाहर आती आवाज़ में से नींद लड़खड़ा रही थी।

बदामी···ब···दा···मी···फूलों की माला पहनी है
नारी ने।
और कपालों की माला पहनी है
पुरुष अर्ध ने।
आँखें···आँखें आश्चर्यचकित वेश में हैं।

नारी अर्ध

और नग्न है'''नग्न है'''।

पुरुष अर्ध

—"बस करो सनी, कम से कम मेरे कानों में गीत मत गाओ।"

नग्न'''नग्न'''नग्न'''

नींद की लहरों में डूबते हुए, मच्छरों के नाद-संगीत से सुनील को लगा कि मच्छरदानी का कहीं कोई कोना खुला रह गया है। और इसीलिए उसके पैरों के तलवों की मुलायम सलवटों में खुजली हो रही है। नींद उसे अपनी ओर खींच रही थी, उसने किशमिशी दाने पर हाथ की छतरी खोली और स्वयं को ढीला छोड़ दिया।

'''टॉयलेट का फ्लश चलाना वह भूल गया था।

'''और डबल पैग वह नयना के साथ गपशप में टेप-डेक के पास छोड़ आया था।

लोनसम वॉक ऑन दी डेजरटेड रोड्स

लोनसम जर्नी थ्रू दी डार्कनेस

परदे पर एक एब्सट्रेक्ट फिल्म चलने लगी। उसका फ़िल्म मेकर सुनील स्वयं था। डबल पैगवाले ग्लास पर तले हुए सॉसेजिज़ पकड़ने वाले हाथ का निशान है और वह निशान ज़ूम लैंस द्वारा बड़ा होकर परदे को भर देता है'''कट टू''', खाने के ज़र्रे पैग में तैर रहे हैं, ग्लास का क्लोज़ शॉट'''हवा की लहर पर झूल आये परदे के हलके स्पर्श से पैग में हिलोर फैलती है और ग्लास माइम के रफ़्तारी-संगीत से टेबुल से ऊपर उठकर शफ़ाफ़ी में हॉप करता हुआ टॉयलेट-पैन के ऊपर पहुँचता है, जिसमें ब्राउन लिक्वेड भरा है। ग्लास टॉयलेट-पैन में उतरना शुरू करता है...कट टू...टॉयलेट-पैन का क्रॉस सेक्शन (सीपिया टिन्ट में) टॉयलेट-पैन वाला लिक्वेड और पैग परस्पर स्पर्श नहीं करते, इसीलिए उनके मध्य खाली, आकारी बॉर्डर रहता है। ग्लास नीचे उतरकर आऊट-लेट पाईप में अटक जाता है और गड़गड़ाहट करता ब्राउन लिक्वेड टॉयलेट-पैन के ऊपरी भाग की ओर बढ़ने लगता है''' स्टॉप'''स्टॉप'''

वह फिल्म को प्रोजेक्टर से निकाल कर टॉयलेट-पैन में डालना चाहता है।

वह फिल्म मेकर को भी टॉयलेट पैन में डालना चाहता है।

अचानक शोर ने नयना की नींद तोड़ दी। पहले तो उसे लगा शायद पिक्चर के किसी सीन ने हॉंट किया है। फिर ध्यान देने पर उसने जान लिया। वह शोर बाहरी था...नीचे झोपड़पट्टी से शोर आ रहा था।

—"सुनते हो?" उसने सुनील को झकझोरते हुए कहा।

—"कोई पियक्कड़ मारामारी करता होगा।...घरवाली के साथ'''।"

—"घरवाली के साथ क्यों ?"

—"पियक्कड़ मे अन्य किसी से लडने का साहस थोडे ही रहता है ? सो जा···।"

इसके पूर्व भी रात के बीच पहर मे उनकी बिल्डिंग के नीचे आस-पास बने झोंपड़ों के शोर ने इसी तरह उनकी नीद बिगाड़ी थी । एक रात पिये हुए साला-बहनोई आपस में लड़े थे । मारामारी कम और गालियाँ अधिक···। ये सब दुःशासन माँ-बहनो को सबके आगे नंगा क्यो करते हैं ?···एक अन्य चांदनी रात के तीसरे पहर मे कॉलोनी के बाहर झोपडपट्टी के लडको की एक टोली पी कर, मैदान में लकड़ियाँ इकट्ठी कर आग जला कर, ड्रम बजाकर, सुबह तक नाची थी। आधी रात को सुनील ने पुलिस स्टेशन पर फ़ोन किया था और फ़ोन उठाने वाला पुलिस मैन शिकायत सुनने तक चुप रहकर फिर ऊँची आवाज मे बोला था—"आप क्या कह रहे थे ? सुनायी नही देता, जरा जोर से बोलिए...कुछ भी तो सुनायी नही देता ।"

—"मैं कह रही हूँ, किसी की चीखें आ रही है, सुनते हो ?"

—"चुपचाप बाँहो में आ जा। । सो जा...फ़ोडर चाहिए ?"

"मैं यकीन के साथ कहती हूँ, सुनील, कोई चीखे अवश्य ही···।"

—"अच्छा, थोड़ी चादर मेरी ओर भी कर दे, पूरी खीच लेती है···।"

बीप-बीप फायर ब्रिगेड की आवाज ।

—"··· फायर ब्रिगेड ?"

—"मैंने तुमसे पहले ही कहा था, कोई चीखा था, मैंने चीख़ सुनी थी ।"

सुनील उठकर दरवाज़ा खोलकर बालकनी में गया । नीचे घरों मे कही-कही बत्तियाँ रोशन थी । हाउसिंग सोसायटी के गेट के पास, लेम्प-पोस्ट के नीचे और झोपड़ी के बाहर कुछ औरतें और मर्द जमा थे । फ़ायर ब्रिग्रेड की लाल गाड़ी का आधा हिस्सा दिखाई दे रहा था, जिस की बीप-बीप अब भी जारी थी ।

नयना बिस्तर से उठकर, मच्छरदानी से निकलकर बालकनी में आई और सुनील की बगल मे खड़ी हो गयी ।

—"आग तो कही भी नजर नही आती···?"

—"होनी तो चाहिये···।"

सोसायटी का वाचमैन नीचे से गुज़रता हुआ नजर आया ।

—"पृथ्वी, क्या है ?"

—"बाबूजी, बिल्डिंग में एक किरायेदारिन अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क कर जल मरी है । बस ख़त्म हो गयी है ।"

—"फ़ायर ब्रिगेड क्यों आयी है ? एम्बुलेंस क्यो नही ?" वाचमैन के पास इसका कोई जवाब नही था । घड़ियाल मे दो बजकर उन्तालीस मिनट हुए थे ।

—"लेट अस ट्राय टू स्लीप, नयना ।···"

दोनों बिस्तर के किले में वापस आए।

—"अपने आपको इस तरह बेरहमी से कैसे मारा जा सकता है। देयर आर अदर साइलेंट वेज़ टू डू इट विदाउट एनी पेन एन्ड टॉर्चर···।"

—"ट्राई टू स्लीप, नयना···।"

—"आइ सिम्पली कांट···।"

—"लेट अस फॉरगेट इट। व्ही मस्ट स्लीप। कल संडे नहीं है।"

—"ओ-के। लेट अस स्लीप विदाउट रियली स्लीपिंग···।"

करवटें बदल-बदल कर आख़िर दोनों ने रात को दफ़न कर दिया। कौओं की कांव-कांव और चिड़ियों की चीं-चीं रोशनी से पहले पहुँच गयी। नीचे वाले फ़्लोर पर रहने वाली बुढ़िया को नित नियमानुसार प्रभाती खाँसी प्रारंभ हो गई। नियमानुसार, बालकनी में आकर लगातार खाँसती हुई, मन्त्र-जंत्र का उच्चारण करती, गला साफ़ करने के लिए अजीबो-ग़रीब आवाज़ें निकालती हुई बुढ़िया ने सुनील के नशे उतार दिये।

—"नयना उठ, कालू की माँ गर्भवन्ती है।"

—"वह तुम्हें गर्भ धारण करायेगी, समझे? पहले तुम उठो। सख़्त सर्दी है। उठ कर कम-से-कम और नहीं तो फ़्रिज से दूध निकालो···किचन में जाकर गैस पर पानी गरम करने के लिए रखो।"

लेकिन सुनील उठने की बजाय बिल्कुल उल्टा होकर पड़ा रहा। अपने एक अन्य पड़ोसी के स्कूल जाते बच्चों का शोर सुनकर सुनील ने पलंग के निचले भाग पर लात मारी—"डॉग बार्क्स···साला कुत्ता भौंकता है, बच्चों पर, घरवालों पर, आसमान पर···नित नियम से भौंकता है। उसका यह प्रभाती भजन है··· ऐन अदर फ़किंग डे स्टार्ट्स···।"

—"सुबह-सुबह गालियाँ देने की बजाय, उठकर रेडियो ऑन करो, 'चिन्तन' का समय हुआ है।···"

—"उसके पश्चात् 'वन्दनवार' चलेगा।···दिन रफ़्तार पकड़ेगा···इस सूअर को सलाम···उस मादर···को आदाब···इस बास्टर्ड को मुस्कराहट···एक को चाटो, दूसरे को चूमो, तीसरे को मस्का मारो···इट इज़ ऑल··· बिज़नेस।···"

तंग होकर नयना ने सुनील को एक लात जमायी और वह हँसता हुआ उसे चूमता उठ खड़ा हुआ। बत्ती जलाकर सीधा किचन में जाकर उसने पानी गरम करने को रखा। और उसके बाद किचन की खिड़की खोलकर बाथरूम, किचन और फ्रिज के बीच चक्कर लगाकर पॉट में लिक्वेड सोप डालकर, मैले कपड़े ठिकाने लगाए और चाय तैयार देखकर आवाज़ लगायी—

"मेम साहब, चाय तैयार है।

'''धोने को गरम पानी तैयार है।"

रेडियो ऑन किया—"'चिन्तन' सुनिये,

'वन्दनवार' की प्रतीक्षा कीजिये।"

नयना ने लेटी हुई चूर स्थिति में रेडियो प्रवचन सुना और उसके बाद जब भजन शुरू हुए तो वह चाय का कप उठाकर दीवार में टेक लगाकर बैठी रही। जब विज्ञापन के जिंगिल्स बजने आरम्भ हुए, तब उसमें हरकत आनी शुरू हुई।

—"मैंने मेड-सर्वेंट के लिए भी चाय छान कर रखी है।"

—"ठीक है, कभी-कभी चाय बनाने की मेहरबानी करते हो, बदले में कितना शोर मचाते हो। और तिस पर उठते ही गालियां शुरू कर देते हो।"

—"सुबह भी तो हमसे पूछे बिना शुरू होती है। कुछ दिनों से उत्तर दिशा से ठंडी हवा इस मनहूस नगर में आयी हुई है। इतना होते हुए भी प्रभात में कुछ भी सुहावना नहीं। बाहर देख, आसमान भी बेतुका-बदरंग है।"

ठीक उसी समय मिल्क-बूथ से लौटकर आए हुए उनके पड़ोसी ने अपने फ़्लैट का दरवाज़ा धड़ाम से बन्द किया और सुनील ने अपना प्रतिदिन वाला वाक्य दुहराया—

"तोड़ साले, तोड़'''घरवाली की कसर दरवाजे से निकालने की कोशिश में अपने दरवाजे के साथ-साथ हमारे दरवाजे की चौखट और चूलें भी ढीली करते रहो।"

"चिड़चिड़ाहट बन्द करो, पप्पी।"

नयना टॉयलेट में गयी और डोर बेल बजी।

दरवाज़ा खुला। दूधवाला था। सुनील ने दूध लिया। बाथरूम से नयना ने आवाज दी—

"फ़्रिज में रखना।"

—"तीन थैलियां पहले से ही स्टॉक में हैं। और यह चौथी है। दूध की नदियों के ज़माने में हैं हम'''।"

—"तुम सारी रात ताज़ा दूध पियोगे और गरम दूध देने पर 'ना ना' कहोगे तो फ़्रिज नहीं भरेगा तो और क्या होगा?"

फिर डोर बेल। अख़बार। नयना ने सुनील के हाथ से अख़बार खींच लिया।

—"ऐसा लगता है जैसे मैंने वर्षों से अख़बार नहीं पढ़ा। डेम योर फ़िल्म फ़ेस्टिवल। मैं अपनी दुनिया से कट गयी हूं। आज से मूवीज़ नहीं चलूंगी। याद रखना।"

फिर डोर बेल। मेड-सर्वेंट का प्रवेश। उसने चाय पीकर बर्तन मांजने शुरू किये। नयना ने सब्ज़ियाँ काट कर प्रेशर कुकर में डाली। सुनील ने शेविंग मग में पानी भरा। कपबोर्ड से कपड़े निकाले, टाईम्स का 'थॉट फ़ॉर टुडे पढ़ा,'

कल्चरल शोज़ के डीटेल्स देंगे। बालकनी में रखे फ्लावर-पॉट्स को पानी देते हुए नीचे बंगले के जंगल में अण्डरवियर में घूमते शरण को वहीं छोड़कर, रेडियो की सुई विविध भारती से हटाकर, रेडियो सीलोन की तरफ़ घुमाते-घुमाते बी. बी. सी. न्यूज़ का कुछ हिस्सा सुनते-सुनते अपने गालों पर शेविंग क्रीम लगायी।

फिर डोर बेल बजी। सफ़ाई वाली औरत थी। मेड-सर्वेंट नयना को सुना रही थी कि रात को जो औरत जल मरी थी, उसके संबंध में कहते हैं कि उसके पति ने उसे रस्सी से बाँधकर जलाया था, और पुलिस में बयान दिया कि पत्नी को बचाते हुए उसके हाथ-पैरों पर फफोले पड़े हैं और उस आधार पर पति को भी अस्पताल में भेजा गया है।

सुनील शेव करते-करते नाक-मों पोंछता रहा। नयना स्नान करने गयी। सुनील ने बूटों की पालिश की। घड़ियों को चाबी दी। अपने और नयना के चश्मों को लैंस क्लीनर से साफ़ किया। किचन से प्रेशर-कुकर की आवाज़ 'सॉय-सॉय' करती हाँफ रही थी। और रेडियो सीलोन पर दर्द-विरह और रोदन वाले गाने बजने के बाद आठ बजने का इंगित करने वाला सहगल का गाया हुआ गाना चलना शुरू हुआ : आग लगा दूँ सजनी···

—"वे आशिकी के ज़माने ही ख़त्म हो गये। अब अगर सहगल जीवित रहता तो गाता : आग लगा दूँ सजनी···।"

नयना के डायलॉग पर सुनील अभी कुछ कहने ही वाला था कि उसी समय टेलीफ़ोन की घंटी बज उठी। सुनील रिसीवर उठाने से पहले दाँत पर दाँत दबाकर बोला—

"सन ऑव दी बिच···।"

—"हैलो। सुनील, मैं जालंधर से बोल रहा हूँ। कैसे हो, भई? हमारे पापाजी कैसे हैं?···"

रिसीवर को हाथ से ढकते हुए सुनील बोला—"ओह शिट।"

—"बाज़ू वाले के दामाद का फोन है जालंधर से···।" उसने फोन का प्लग निकाल कर दूसरे रूम में कनेक्ट कर दिया, जिसमें नयना को तैयार होने में रुकावट न हो। पड़ोसी को बुलाकर उसे फ़ोन के साथ जोड़कर सुनील बाथरूम में गया। मिलिट्री-स्नान के पश्चात् जब वह बाहर निकला तो पड़ोसी फ़ोन पर बात कर चुका था। और नयना ऑफिस जाने के लिए तैयार थी।

—"पीठ ठीक से नहीं पोंछी है तुमने, नर्सरी-विद्यार्थी की तरह···।"

नेपकिन उठाकर नयना ने अभी सुनील की पीठ सुखानी शुरू की ही थी कि फ़ोन फिर बज उठा।

—"हैलो···।"

"कौन है?" नयना ने पूछा।

सुनील ने माउथ-पीस पर हाथ रखा।

सुनील का नजदीकी दोस्त था, जो एक दिन पहले हरिद्वार से बम्बई पहुँचा था। नयना ने पर्स कंधे में डालकर, फ़ोन पर व्यस्त सुनील का हाथ पकड़कर हल्का-सा चूमा और दूसरी ओर खाली कान में आहिस्ता से बोली—"सुनो, ऑफ़िस में तुम्हें देर हो जायेगी, यह इश्क बाद में भी कर सकते हो।···मैं चलती हूँ···।" सुनील ने बैठे-बैठे नयना की कमर को बाँह में पकड़कर हल्का-सा दबाया और 'बाय' किया···।

—"क्या बोले, सर्दी जबरदस्त थी···फिर जल्दी वापस क्यों आये ? तुम्हारी वह बहुत पुरानी लैला अब भी वहाँ रहती है क्या ?"

"उसके बच्चों को कैसे पहचाना ? उनकी नानी ने बताया, अच्छा, वाह, उसकी माँ के साथ भी तुम्हारा इश्क था क्या ?···यार, गुस्सा क्यों होते हो, इश्क में जवानी और बुढ़ापे की कौन-सी शर्त होती है ?···मैं ठीक हूँ · हाँ, नयना भी···हाँ, हाँ तुम्हारी कहानियाँ अवश्य पढ़ूँगा। हाँ, रात को फ़ोन करूँगा।···"

'इट इज टाईम फ़ॉर माई योगा एक्सरसाईज···' और उसने शेविंग का सामान अभी धोया नहीं था। वाश-बेसिन के पास उस्तरा धोते हुए उसने उत्तान-पाद आसन अथवा पेट को अन्दर खींचना और बाहर धकेलना शुरू किया। नेपकिन से हाथ पोंछते हुए उसने दो-चार फ्रॉग जम्प्स लगाए। घड़ी की ओर निहारते हुए जमीन पर बिछी हुई दरी पर लेटे हुए दो-चार विशेष आसन करने की सोची ही थी कि फिर टेलीफ़ोन की घंटी बज उठी। फ़ोन पर सुनील का कोई दूसरा मित्र था, जिसके बेटे का उस दिन विवाह था, इश्क वगैरह का मामला था।

—"तू यह फिल्म फेस्टिवल के टिकट किसी को दान कर दे अर्थात् तुम दोनों को विवाह पर आना पड़ेगा। हमने केवल नजदीकी मित्रों को ही आमंत्रित किया है।···"

—"ओ. के., ओ. के. हम दोनों शाम को आपके यहाँ आएँगे।"

इट इज नाईन। दिन अपनी रफ़्तार पकड़ रहा था। सुनील ने ध्यानपूर्वक अखबार, डायरी, पेन, कागजात और टेलीफोन बिल, जिसकी उसे उसी दिन पेमेन्ट करनी थी, और किसी रिश्तेदार के यहाँ से आया हुआ वेडिंग कार्ड जिसके सिलसिले में उसे ग्रीटिंग टेलीग्राम भेजना था और सेण्डविच, उबाली हुई सब्जी आदि अपने बैग में डाले और रेडियो बन्द कर उसने टेप-डेक पर रिचर्ड क्लेडर-मैन के पियानो की टेप लगायी। कपड़े पहनते हुए उसे याद आया कि आज वह सब योगासन नहीं कर पाया था। टेप पर स्टेइंग अलाईव की धुन बज रही थी। उसने तीन काम एक साथ करने शुरू किये। कपड़े पहनना, व्यायाम और ब्रेकफ़ास्ट। कॉर्नफ्लेक्स का चम्मच। ब्रेड-बटर काटना···हो ईट्स···हो डान्सेज···इट

इज एक्सरसाइज···शोल्डर्स···चेस्ट···आर्म्स···लेग्स···फ़ीट···फ़िंगर···कपड़ों का कपबोर्ड बन्द···गालों पर कोलोन की हल्की फुहार।

टेप पर फ़ास्ट धुन समाप्त हो चुकी थी। और एक धीमी धुन 'सारा थीम फ़ॉम डॉक्टर ज़िवेगो' शुरू हुई।

'सॉरी सारा, श्री विल मीट ऐट नाईट···।'

सब स्विच ऑफ़ कर, बूट पहनकर, घर बन्द कर सुनील बाहर निकला। बस स्टॉप पर पहुँच कर उसने देखा—बस की क़तार में प्रतिदिन के लोगों में वह लड़की भी थी जो उसे देखकर उसकी देखा-देखी से सहम कर सिमटने की बेआरामी में पीड़ित हो जाती थी। सुनील ने प्रयत्न किया कि वह उसे देखे। बस में पत्रिका पढ़ते हुए वह जल्दी दफ़्तर पहुँच गया। घर से बस की ओर, और बस स्टॉप पर उतर कर ऑफ़िस की ओर, उसने जान-बूझकर डबल रफ़्तार में फ़ासला तय किया। उसकी टाँगों की हड्डियाँ इस व्यायाम से दुखने लगीं।···आय वान्ट टु वॉक फ़ास्ट···आइ मस्ट ट्राय टु कीप मायसेल्फ फ़िट···आय विल कन्टीन्यू टु वॉक फ़ास्ट।···हाऊ लौंग?···टिल आय फॉल···दी फीलिंग इज़ वन्डरफ़ुल एण्ड चेलेंजिंग।

ऑफ़िस में अभी सफ़ाई चल रही थी। सुनील ने अपनी कुर्सी पर बैठकर डायरी खोली जो उसने पिछले छह दिनों से नहीं लिखी थी। उसे अपने ज़िन्दगी के बीते छह दिनों का क्या कुछ याद था? उसने दिमाग़ पर ज़ोर डाला और रंगों की केवल पतली धार बनी। उसने सिलसिलेवार सोचने का प्रयत्न किया। वर्तमान पल से पीछे लौटते हुए···दूसरे होटेल्स तो दूर, उसे बीते हुए छह दिनों में देखी हुई मूवीज़ तक के नाम याद नहीं रहे थे। हाँ, डायरेक्टर के नाम अवश्य याद थे, जिन्होंने एक मुद्दत से उसके ज़ेहन में हस्ताक्षर किये हुए थे। बर्गमन, ओशिमा, वाजदा, स्कॅनड्रावेन, गोदार्द, फ़ासब्राइंडर···कितने इमेज, कितने इम्प्रेशन्स उसके ज़ेहन में थे जिनका शाब्दिक रूप निर्मित करना और प्राप्त करना संभव न था। उसने डायरी के भीतर रखे पोस्टल स्टैम्प्स और विज़िटिंग कार्ड्स ठीक तरह सहेज कर डायरी वापस दराज़ में डाल दी। उसे अपनी स्मृति पर बड़ा गुस्सा आया। दूसरे पल उसे ख़्याल आया कि इस तरह की स्मृति होते हुए भी उसे कितने कठिन नामों का स्मरण है। उदाहरणार्थ जापानी डायरेक्टर आकारा कुरुसोवा का गुरु काजोरो यामामोटो अथवा कुरुसोवा का क़ाबिल एक्टर तोशोरो मफ़्यूनी···।

ऑफ़िस धीरे-धीरे भरता चला गया, सुनील ने ऑफ़िस फाइलों को स्पर्श किया और उसमें फँस गया। घड़ी के काँटे उसकी नसों में गहरे चले गये। वह चुपचाप पेपर्स पर नोट लगाता गया। स्टेनो को डिक्टेशन दी। मातहतों की आवश्यकता पड़ने पर मुँह खोला। लंच से पूर्व उसके बड़े साहब ने एक बार किसी ज़रूरी

काम के सिलसिले में उसे भीतर बुलाया। लंच रिसेस का पता उसे तब चला जब आस-पास टिफ़न खुलने लगे। कर्मचारियों की फ़ालतू आवाजें, बेतुकी बातें बुलन्द हुईं। उसने अपना लंच—सेण्डविच, बॉइल्ड सब्जी, निकाल कर टेबल पर रखा। उसका एक चपरासी उस समय वहाँ आया और उसने टेलीफ़ोन बिल का काउंटर, ग्रीटिंग टेलीग्राम के लिए दिए गये पैसों का बैलेंस और रसीद दी। सुनील को याद आया कि नयना को फ़ोन पर विवाह पर चलने के लिये प्रोग्राम बताना चाहिए। उसने नम्बर मिलाया और जबरदस्ती नयना की स्वीकृति ली। लंच खाकर लॉबी में जाकर उसने अपने लम्बू ड्रामा डायरेक्टर द्वारा तोहफ़े में भेजा गया डनहिल सिगरेट का पैकेट खोला, सिगरेट जलायी। यह दोपहर वाला सिगरेट उसके लंच का एक हिस्सा था। सिगरेट पीते-पीते वह उस दोस्त के संबंध में सोचता रहा। रात तक, रात से प्रभात तक, प्रभात से फिर रात तक, दिनों के दिन, रातें और रातें व्यस्त ऐक्टर-डायरेक्टर उसका मित्र—बिखरे बाल, लम्बी दाढ़ी, सदा लोगों और मामलों से घिरा हुआ, रिहर्सल, प्रोडक्शन, पब्लिसिटी, टिकटों की सेल, स्टोरी सेशन्स। सिगरेट के कार्टन, चाय के बेरल्स, ढेर सारे कहकहे- -सुबह, रात, शाम···इतनी व्यस्तताओं में गुम रहते हुए भी अपनी एक कॉमन फ्रेंड द्वारा उसने सुनील को डनहिल पैकेट और नये किस्म का लाइटर भेजा। हर कोई हर बात नहीं कर सकता है।···सोचकर उसे मैकेनाज़ गोल्ड का ओपनिंग सौंग याद आया···बुलन्द पहाड़ी चोटियों से ऊपर एक गिद्ध पंख पसारकर बादलों में तैरता है और बैक ग्राऊंड गीत 'ओ टूको बजर्ड' गूंजता रहता है। सुनील की सिगरेट का आख़िरी किनारा शेष था, फ़िल्टर का टुकड़ा टोस्ट होने लगा था। सिगरेट बुझाकर वह वापस अपनी सीट की ओर आया। लंच के पश्चात् ऑफ़िस की एक घटना ने सुनील को निहायत बेचैन कर दिया। एक छोटे-से मातहत को उसने किसी अहम विषय पर फाईल लाने के लिए कहा। मातहत ने, जिसे यूनियन के सेक्रेटरी ने सुनील के ख़िलाफ भड़काया था, फ़ाईलों की सूची उसके सामने फेंकते हुए कहा था कि इस विषय पर फ़ाईल खोली ही नहीं गयी थी। और उसे चश्मा लगाकर सूची देखनी चाहिए।

सुनील अचरज में पड़ गया था।

चश्मा उसकी आंखों के आगे नाक पर खड़ा, कानों में अटका था।

मातहत, इतने छोटे मातहत की यह मजाल! बिना किसी कारण!

केवल शत्रुतावश मकौड़ी भी इतनी फूल सकती है?

वॉट इज ह्यूमन डिगनिटी देन?

हू केयर्स?

उसकी नस-नस अपमानित अहं से जलने लगी।

—"तू मेरे साथ इस तरह बात नहीं कर सकता जबकि तू मेरे चश्मे को देख नहीं सकता।"

—"ग़लती आपकी है, मेरी नहीं···।"

—"चला जा यहाँ से···।"

—"मैं यहाँ अपनी मर्ज़ी से नहीं आया···।"

—"मैं कहता हूँ चला जा, गो बैक टु योर सीट···।"

अधीनस्थ अपनी टेबल की ओर गया और सुनील उसकी बाँछों के किनारों पर एक चोंधू शैतानी मुस्कराहट को देखता हुआ, अपनी कुर्सी पर हिले-डुले बिना बैठा रहा। आस-पास ऑफ़िस का पूरा स्टाफ़ उसकी ओर निहार रहा था।

सुनील को ख्याल आया। संबंधित मातहत में तमीज नहीं है, तमीज का संबंध कल्चर से है—उसकी नसों का वायब्रेशन घटने लगा। उसके पश्चात् एक अन्य ख्याल उसके मन में उभरा। उसके मातहत ने उसके चश्मे की हँसी उड़ायी थी। ख़ुद यह सूअर बर्षों से बाल काले करके आता है और उसके रंगे बाल सूअर के निचले···लगते हैं। सुनील की नसों में वायब्रेशन और भी कम हुआ।

ह्यूमन लाईफ डिकेज, मॉकरी हैज नो मीनिंग···सुनील की नसें नॉर्मल रिदम की ओर लौटने लगीं। कुछ क्षण वह टेबल ग्लास के नीचे रखी तस्वीर को देखता रहा, एक लेण्डस्केप था। पहाड़ों से घिरे वातावरण में एक शांत नहर में जीन्स और जाकेट में गम बूट पहने एक मछुआरा बीच नहर में फ़िशिंग रॉड पानी के भीतर डाले खड़ा था। पानी पर उसका प्रतिबिम्ब था। पानी से बाहर गम बूट और पानी के भीतर नज़र आता गम बूट का प्रतिबिम्ब मिलकर एक अजीब प्रभाव पैदा कर रहे थे कि गम बूट के दोनों किनारों से वह शख़्स बाहर निकल रहा था—एक ऊपर सीधा, दूसरा दूसरे किनारे पर उलटा, ताश के गुलाम की तरह। यह लेण्डस्केप सुनील के टेबल ग्लास के नीचे काफ़ी मुद्दत से था। पर ताश के गुलाम के साथ मछुआरे के साथ मिलता एक जैसा ख्याल उसे पहली बार उस पल ही आया था।

सुनील ने अपनी सीट से उठकर अपने बड़े मैनेजर की केबिन में जाकर उसे पूरी घटना की रिपोर्ट की। बड़ा मैनेजर पहले से ही यूनियन की गतिविधियों से घबराया हुआ था। और सुनील को भी विश्वास था कि पूरी बात समझने के पश्चात् भी वह स्वयं को बाहर रखना चाहेगा। बड़े मैनेजर ने उसे पॉइंट ब्लैंक कहा कि यह सुनील और उसके मातहत का निजी मामला है। मैनेजमेण्ट का इस मामले के साथ संबंध का कोई सवाल ही नहीं उठता।

अपने बड़े अधिकारी का सिकुड़ा हुआ···देखकर बाहर आने से पूर्व सुनील ने एक-आध वाक्य कह दिया—"लेकिन सर। ह्यूमन बीहेवियर की भी कोई

नॉर्मल रेखा रहती है। काल्पनिक ही सही'''कोई वाजिबी रेखा होनी चाहिए।''

उसके इस वाक्य ने बड़े अफ़सर की मनोदशा के गिर्द एक तरह की एलर्जी का काम किया।

—''सुनील, तू ज़िम्मेदार सीनियर अधिकारी है। सवाल तुम बहुत करते हो, मुझे तुम्हारे पास से सवाल नहीं चाहिए। तू ऑफिस स्टाफ़ को आवश्यकता से अधिक दबाकर रखना चाहता है। मैं प्रबंध चाहता हूँ। तुम्हारा कर्त्तव्य है, मेरी सहायता करना। उसकी बजाय तू मेरे लिए प्रॉब्लम बन रहा है। यह अच्छा नहीं है'''।''

उस वज़नदार अधिकारी की वज़नदार ठोड़ी के नीचे भी ठोड़ी है। वह चर्बी अनुभव की चर्बी नहीं है, पर चर्बी का अनुभव है।

'इट केन नॉट ऐण्ड विल नॉट गेट सेट टू इट्स ओरीजनल शेप।'

सख्त बरसात के पश्चात् वह तालाब के किनारे-किनारे एक पगडण्डी से जा रहा था। पगडण्डी ज़मीन से दो-तीन फ़ुट ऊपर एक दड़े की भाँति थी'''सिलसिलेवार दोनों ओर तालाब, तालाब का निचला हिस्सा और कीचड़ थी। पगडण्डी घास से भरी हुई थी। घास तनिक गीली थी पर कीचड़ से मुक्त। चलते-चलते अचानक उसे सामने आता हुआ भैंसों का टोला नज़र आया। एक भैंस पगडण्डी के ऊपर चढ़कर बिल्कुल उसकी नाक की ओर आने लगी। दूसरी कोई राह न देखकर आखिर उसे उतराई की कीचड में उतरना पड़ा। कीचड से गुज़रता भैंसों का टोला'''अधिकारी'''अधिकारी की ठोढ़ी'''ठोढ़ी के ऊपर बदबूदार सिगार'''भैंस'''भैंस का गंदा चेहरा, बांछों पर जमा गंदा फेन'''सिगार से गोबर की बदबू के सिवाय, मोटी भैंस का पगडण्डी रोकते हुए उसे कीचड़ में धकेलना भी तो शामिल था।'''

'हाऊ अबाऊट वर्कनो राइडिंग' ?

चुपचाप वह शाम तक अपना काम करता रहा।

ऑफ़िस बंद होने के पश्चात् ऑफ़िस के किसी भी स्टाफ़ के साथ मिक्स हुए बिना वह बस स्टैण्ड की ओर बढ़ा। तीन शू कम्पनियों के मध्य आईसक्रीम पार्लर था। ब्रीफकेस को अपने पैरों के बीच पकड़ते हुए सुनील ने काउंटर पर खड़े सेल्स मैन की ओर पाँच का नोट बढ़ाया और एक कोन लिया। सेल्स मैन को दराज़ में छोटे नोट टटोलते देख कर हाथ के संकेत से उसे रोकते हुए बोला —''यह रहने दे, और भी चाहिए। नो प्रॉब्लम'''।'' पास ही खड़ी आईसक्रीम खाती लड़कियों की छोटी-सी टोली में एक टॉल लड़की के सबसे अधिक लज़ीज़ होंठ थे। ऊपरी होंठ पर उभर आयी बालों की रेखा सेन्सुअस थी। खाये हुए आईसक्रीम कोन का वेफर वाला बचा हुआ हिस्सा डस्टबिन में फेंककर दूसरा कोन लेने के पश्चात् भी सुनील उस टॉल लड़की के ऊपरी होंठ को

देखता रहा।

चॉकबार···हिप्स से चिपके जीन्स···जीन्स के पीछे नितम्ब के ऊपर तांबे का बना कम्पनी का वेजवी मारका···होठों पर से आईसक्रीम खींचती जीभ का चलना···पिन-प्रिक···चिक···चेरी···इस सिलसिले में उसे लिण्डसे इण्डरसन की डायरेक्ट की हुई और डेविड शेरवन के लिखे हुये स्क्रीन-प्ले वाली मूवी 'इफ़' के पात्र मिक का कहा हुआ डायलॉग याद आ गया : "देयर इज ओनली वन थिंग यू केन डू विद ए गर्ल लाइक दिस। वाक नेकेड इनटू दि सी टुगेदर एज दी सन सेट्स। मेक लव वन्स···देन डाय···।"

आईसक्रीम पार्लर छोड़ते हुए उसने देखा, नोकदार सेण्डल में वह टॉल लड़की, नर्म स्तनों को रिदम में झुलाती जल्दी-जल्दी रास्ता क्रॉस कर दूसरी ओर चली गयी। सुनील बस पकड़कर घर आया। नयना के पहुँचने से पूर्व उसने बिखरी चीजों को ठिकाने लगाया। बालकनी से सूखे कपड़े उतार कर समेटे, जुराबें, रूमाल आदि मैले कपड़ों को ड्रम में डाला, चाय के लिए गैस पर पानी रखा और सामने वाली बिल्डिंग में खड़े बालक को हाथ हिलाकर विश किया। वापसी में बच्चे ने सीटी बजाकर उसे हाथ दिखाया।

बेल-बेल-बेल···नयना थी। नयना घर में प्रविष्ट हुई, बत्तियों की ओर उसका ध्यान आकर्षित हुआ। सब बत्तियाँ आँखें मार रही थी।

—"क्यों, बत्तियों की ओर तुम्हारा ध्यान ही नहीं गया ?"

—"फ्लर्ट हैं इसलिए···।"

नयना ने अपने कँधे से भारी पर्स उतार कर सुनील के हाथों में थमा दिया।

—"पर्स को ठिकाने लगा और नीचे जाकर मीटर बॉक्स में लूज कॉन्टेक्ट्स को ठीक करने का प्रयत्न कर, नहीं तो फ्रिज, टी. वी., टेप-डेक सब ख़राब हो जायेंगे।"

—"तू कम से कम मोमबत्ती और माचिस ढूंढ कर रख, टार्च में सेल ख़त्म हैं···शादी में चलना है, मैं नीचे जाकर कॉन्टेक्ट्स चेक कर आता हूँ। गैस पर चाय का पानी रखा है···।"

सुनील ने तुरन्त नीचे उतर लूज कॉन्टेक्ट्स ठीक किये। और वापस ऊपर आया। इस बीच नयना ने चाय टोस्ट तैयार किया।

—"विवाह में चलने के लिए तैयार हो जा।"

—"सिनेमा टिकटों का क्या किया ?"

—"तू यार, बेकार चिन्ताओं के बजाय जल्द तैयार हो ले, टिकटें मैंने बेच दी।"

—"तू ख़ुद चुप खड़ा है···?"

—"मुझे क्या करना है ? ट्राऊजर यहाँ पहनकर शर्ट सीढ़ियों में पहनूंगा।

अथवा शर्ट यहाँ पहनकर ट्राऊजर सीढ़ियों में…।"

डोर बेल।

दोनों ने तुरन्त स्वयं को संभाला। सुनील ने दरवाजा खोला। उसकी छोटी साली की लड़की खड़ी थी, चेहरा उतरा हुआ था।

—"आओ अंजु, आओ। खैरियत तो है ना?"

—"नहीं अंकल…।"

—"ओह गॉड। क्या बोली? तुम्हारी फूफी जल मरी? यहाँ हमारी गली में…? यहाँ आकर कब रहने लगी थी? कहते थे नयी किरायेदारिन है। उस बिल्डिंग के बाहर रात से ही पुलिस खड़ी है…इट इज वेरी सेड। डेड बॉडी मिली है?"

—"नहीं, पप्पा और तीनों चाचे हॉस्पिटल गये हैं। फूफी का पति भी अस्पताल में भर्ती है। मुए ने फूफी को रस्सी से बाँधकर घासलेट डालकर जलाया, इसलिए उसके हाथ भी थोड़े-से झुलस गये हैं। और पुलिस को उसने झूठा बयान दिया कि पत्नी को बचाते हुए वह स्वयं भी जला है।"

—"तुम्हारी फूफी के कितने बच्चे हैं?"

—"एक वर्ष का बेटा…।"

—"ओह…नो…।"

—"उसके पूर्व कहाँ रहती थी?"

—"ससुराल में…।"

—"अंजु, बैठ ना…।"

—"नहीं, मैं जाती हूँ, मम्मी ने जल्द वापस आने के लिए कहा है…।"

अंजु के जाने के पश्चात् पूरा फ्लैट चुप्पी से भर गया। इन्सानी आवाजें बिलों में चली गयीं। केवल घड़ी की टिक-टिक गूँजती रही।

कुछ क्षणों के पश्चात्।

—"ठंडी आज कुछ अधिक है…।"

—"क्या करें?"

—"विवाह पर रस्मी तौर पर चलें, तो अच्छा है…कुछ मिनटों के लिए ही सही।…इस के पूर्व भी इस परिवार का एक विवाह हम लोगों ने मिस किया है…।"

—"तब भी तो ग़ैरहाज़िरी का कारण कोई डेथ ही थी।"

—"कारण अब भी वही है। दूसरों की मौत के संबंध में लगता है कि अपनी मौत का भय बिल्कुल उतर जायेगा। क्या करें? चलें?"

—"नीचे चलकर टैक्सी पकड़। शादी पर हाजिरी भरकर एकदम से घर लौटते हैं और कपड़े बदल कर ग़मी में शरीक होंगे।"

टैक्सी। बम्बई का अन्य उपनगर। मन्दिर की तलाश, शादी में शामिल। सुनील ने अपने मित्र को गमी की सूचना कान में दी। दूल्हा-दुल्हन से हाथ मिला कर लिफ़ाफ़ा थमाकर बाहर आने में उन्हें सात मिनट और पच्चीस सैकण्ड लगे और उसी टैक्सी में बैठकर बीस मिनट में वे खामोश घर पहुंचे। टैक्सी वाले को उन्होंने पांच मिनट ठहरने को मना लिया। ऊपर जाकर कपड़े बदलकर फिर वापस टैक्सी में आये और नयना के बहन की ससुराल वाले मकान के पास पहुँचे, जो रेलवे लाइन से लगी एक गली में था। एक छोटे-से पार्क के सामने। उस समय वहां चुप्पी छायी थी। सर्दी और अंधेरी रात के कारण इक्का-दुक्का कोई आता-जाता था। बिल्डिंग में प्रवेश करते हुए उन्हें ज्ञात हुआ कि अर्थी कुछ समय पूर्व श्मशान-यात्रा के लिए रवाना हुई है। नयना दूसरी मंजिल की ओर बहन की ससुराल में गयी और सुनील ने तुरन्त संकेत से कहा कि वह श्मशान से लौटकर यहां पहुँचता है।

श्मशान करीब तीन मील की दूरी पर था। टैक्सी में बैठकर सुनील ने पूछ-ताछ की। श्मशान आने से दो फर्लांग पूर्व टैक्सी से उतर कर वह भी मातमी जुलूस में कंधा देने और राम नाम सत्य के उच्चारण में शामिल हो गया।

चिता!

गीली लकड़ियों के कारण फैला हुआ धुआं।

नब्बे प्रतिशत जली चमड़ी और शेष झुलसी हुई हड्डियां। ढका हुआ चेहरा, अन्तिम दर्शन के लिए दिखाया गया। वह क्या चेहरा था? क्या था वह। धड़ाम! यह आवाज नारियल के जलने की थी।

चारों ओर खामोश चेहरे थे।

औरत का छोटा भाई गुस्से में बड़ी आवाज में कसम खा रहा था कि बहन का बदला वह जरूर लेगा, कानून और पुलिस चाहे कुछ करे या न करे। उससे कहा गया कि वह चुप रहे। क्रियाकर्म में बाधा न डाले।

लकड़ियों के जलने की आवाज और ब्राह्मण की आवाज के सिवाय लगभग चुप्पी थी। श्मशानी स्टाफ़ लकड़ियां ठीक करने और लाश को जल्द जलाने में लगा था। चिता में घी के सिवाय मोटा नमक भी डाला गया। श्मशान के कर्मचारी कहीं न कहीं से कुछ न कुछ खिसकाने और उठाने की तलाश में थे। मधु की आधी बोतल, घी का खाली डिब्बा, सुई-धागा, चाकू, नारियल...कुछ भी फिर से बिक्री योग्य अथवा उपयोग योग्य। राख सहित...।

गोलियों के सिवाय बंदूक।

सुनील ने अपने गले को सूखा पाया।

श्मशान के पश्चात्, उस परिवार के जनों से मिलकर वह उसके घर लौटा। रोदन के उस नाटक से जब सुनील और नयना आजाद हुए, तो काफ़ी देर हो

चुकी थी। टैक्सी पर सवार होकर दोनों घर लौटे।

करघे के शटल्स।

केरम और गोटियाँ।

सुनील और नयना आखिर आकर अपने बिल में वापस पहुँचे।

बेडरूम में उनके ऑफ़िस वाले कपड़े और विवाह पर पहने हुए कपड़े बेतरतीब एक-दूसरे पर बिखरे पड़े थे। दोनों ने जल्दी शरीर पर पड़े सफ़ेद कपड़े उस बेतरतीबी में फेंके और मिलकर बाथरूम में घुसे। नम्बर से नम्बर पूरा कर, ताश लेकर बाहर आये। नयना ने सब कपड़े समेटकर ठिकाने पर लगाये।

फ़िज से बची टमाटर और गाजरों की सब्ज़ी का बाऊल निकाल कर गरम पानी मिलाकर नयना ने सूप बनाने के लिए रखा। सुनील ने ब्रेड बॉक्स से ब्राउन ब्रेड निकालकर बड़े स्लाइस काटकर, मक्खन लगा कर उसके ऊपर चीज पाउडर लगाया। नयना अण्डे बीट करने लगी और सुनील ने तुरन्त एक सिंगल पैग खाली कर दूसरा बना कर उसमें सोडे की पूरी बोतल डाली। बिस्तर लगा लिया।

—"खाने से पूर्व अथवा खाने के पश्चात् अपना पैग पूरा करना मत भूलना, सनी।"

—"नहीं। आज नहीं भूलूंगा। मेरा गला सूख गया है।···जब तक किस करो, तब तक सोडा आवश्यक है।"

नयना ने बड़ा शाही आमलेट तल कर टेबल पर लगाया था। आमलेट के साथ उसने ताज़ा टमाटरों और बॉयल्ड आलुओं के टुकड़े भी फ्राय-पैन में डाले थे और तल लिए थे। साथ-साथ सलाद के पत्ते और टोमैटो सॉस भी रखा था।

—"तू अपने लिए दूध गरम क्यों नही कर लेती?"

—"नही, गरम सूप काफ़ी है। दूध कल पीयूंगी। पौने तीन बजे कल रात हम जागे थे।"

—"कल नहीं आज···और आज डेढ़ बजे सोते हैं, कल सुबह छह बजे हम उठेंगे।"

—"कल नही, आज ही।"

—"अब मिडनाईट से सुबह छह बजे तक तुम्हारा आज तो मुझे समझ में आता है। पर कल रात पौने तीन बजे फ़ायर बिग्रेड की आवाज पर नींद टूटी थी, तो वह जागना आज कैसे हुआ?"

—"तुम्हारा केलक्युलेशन घड़ियाल के चक्कर पर बंधा है। मेरे समय की गिनती का हमारे जागने के फैलाव से संबंध है···जाग का दिन···।"

खाना खाकर, बत्तियां बन्द कर दोनो बिस्तर पर लेटे।

—"जानते हो, लड़की केवल 23 वर्ष की थी।"

—"हाँ, मालूम है, उनका लव मैरेज था।"

—"नींद कब आयेगी?"

—"डोन्ट थिंक अबाऊट इट,···टेक मी इन···।"

नयना ने सुनील की ओर सब से बड़ा तकिया फेंका।

—"यूज इट। गुड नाईट।···"

नयना ने करवट बदली, सुनील को पीठ देकर कुछ समय अपने ही ख़यालों में गुज़ारा। सुनील की ओर करवट बदलते उसे स्पर्श करते वह सहम गयी। सर्दी की परवाह न करते हुए सुनील सब कपड़े उतारे बाँह फैलाकर उलटा सोया था।

—"अन्दर आजा। सर्दी लग जायेगी।"

वह भीतर न हुआ।

(अनु० —विष्णु भाटिया)

चार पिस्ते-बादाम हथिया लिए और दो-चार पिस्ते-बादाम नीचे गिर गए। वे मोहनी ने लपक कर ले लिए।

रमेश ने मुफ़्त में हाथ लगे पिस्ते-बादाम जल्दी से अपने मुंह में डाल लिए, परन्तु मोहिनी ऐसा न कर सकी। श्याम ने उसे एक घूंसा रसीद कर कहा—"क्योंरी, तुम क्यों झपट्टे मारती हो?"

मोहिनी ने उसे फटकारते हुए कहा—"मैंने क्या झपट्टा मारा? मुझे तो ये भगवान की धरती पर से मिले।"

"भगवान की धरती पर से मिले!" श्याम ने उसकी चोटी पकड़ ली और कहा—"बड़ी आई है भगवान की धरती पर से उठाने वाली! इधर वापस करो मुझे!"

लेकिन मोहिनी ने भी ये पिस्ते-बादाम जल्दी से अपने मुंह में डाल लिए।

इतने में रमेश ने थू-थू कर पिस्ते-बादाम थूक दिये। वह बोला—"ये तो बड़े कड़ुवे हैं। मोहिनी, ये जहर जैसे कड़ुवे हैं, तुम न खाना।"

मोहिनी ने आंखें मटकाते हुए कहा—"नहीं, नहीं, मेरे वाले तो बड़े मीठे हैं।"

रमेश ने मां से कहा—"मां, मुझे एक चवन्नी दो, मैं भी लाऊंगा।"

मां ने कहा—"पागल हुए हो क्या? चवन्नी के पिस्ते-बादाम नहीं मिलते। एक चवन्नी में एक ही बादाम मिलेगा।"

"अच्छा?" बच्चों की एक साथ चीख़-सी निकल पड़ी।

"और नहीं तो क्या? पिस्ते-बादाम सस्ते हैं क्या? सौ-सवा सौ रुपये के एक किलो होंगे पिस्ते; और अस्सी रुपये के एक किलो से क्या कम होंगे बादाम! हम गरीब लोगों के लिए भगवान की ये चीजें खाना मना है," मां ने उन्हें समझाया।

"मां, मैंने ये पिस्ते-बादाम कभी देखे तक नहीं थे। आज ही देखे हैं," मोहिनी ने अजीब-से लहजे में कहा।

"बेटी, तुम देखती कैसे? घर में ये चीजें आएं तो तुम देखो। आज पहले का-सा ज़माना तो है नहीं।" और मां थैले में से सब्जियां निकालने लगी।

रमेश ने मां से पूछा—"मां, तुमने कभी पिस्ते-बादाम खाए हैं?"

मां ने उत्तर दिया—"खाए क्यों नहीं हैं?"

—"तो तुमने हमें क्यों नहीं खिलाए?"

"अरे, अब यहां थोड़े ही खाए हैं! सिंध में खाए थे, उसके बाद तो मां'''," उदास हो गई।

श्याम ने पूछा—"यह सिंध क्या है? कहां है?"

मां ने कहा—"सिंध हमारा वतन था। वह यहां से दो दिन के फ़ासले पर तो

जरूर होगा।"

रमेश ने पूछा—"हम वहाँ चलकर क्यों नहीं रहते ?"

माँ ने उसे समझाते हुए कहा—"नहीं बेटे, हम अब वहाँ जाकर नहीं रह सकते।···वहाँ के लोगों ने हमें वहाँ से भगा दिया था। अब सिंध पाकिस्तान में है।"

मोहिनी ने जिज्ञासा व्यक्त की—"माँ, पहले तुम लोग वहाँ रहते थे ?"

माँ ने कहा—"हाँ, बेटी, हम लोग कराची मे रहते थे।"

श्याम को कुछ याद आ गया था। वह बोला—"हाँ, माँ, मैंने भूगोल की किताब में पढा है कि कराची पाकिस्तान का बड़ा बंदरगाह है।"

"होगा, बेटे," माँ ने उदासीन स्वर मे उत्तर दिया।

"माँ, माँ, वहाँ के लोगो ने तुम लोगों को वहाँ से क्यों भगा दिया था ?" रमेश ने जानना चाहा।

"न जाने हमारे नेता लोग कैसे थे, जिन्होंने हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बनाया और हम लोगों को यहाँ आना पड़ा। हम अपने ही घर में बेघर हो गये।" माँ की उदासी बढ़ गई थी।

मोहिनी ने माँ के गले में बाँहें डालकर पूछा—"माँ, फिर तुम लोग सिंध छोड़कर कहाँ गए ?"

गले से मोहिनी की बाँहें हटाते हुए माँ ने कहा—"कहाँ जाते ? यहाँ हिन्दुस्तान मे आ गए। जब से सिंध छोड़ा है, हम क्या कहीं आराम से बस पाए हैं ? मुल्क तो गया ही गया, रोज़ी-रोजगार भी गया।"

मोहिनी ने पूछा—माँ, तुम वहाँ क्या करती थी ?"

माँ को गुस्सा आ गया। वह बोली—"ख़ाक छानती थी। अरे, मैं वहाँ क्या करती ? तुम सोचती हो, में भी शायद तुम्हारी मम्मी की तरह नौकरी करती थी। अरे, उन दिनों औरतें नौकरी नहीं करती थी।···मेरे पिताजी की मिठाई की दुकान थी। हमारी दुकान का पिस्ते-बादाम का हलवा बड़ा ही मशहूर था। मुट्ठियाँ भर-भरकर पिस्ते-बादाम खाते थे हम लोग।" और मोहिनी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"यहाँ बिचारे बच्चों ने ये आज से पहले देखे तक नहीं।"

श्याम ने पूछा—"परन्तु माँ, सुनील के यहाँ तो ढेर सारे पिस्ते-बादाम हैं। वे कहाँ से लाते हैं?"

माँ ने ठंडी साँस छोड़कर कहा—"वे अमीर हैं। सुनील के भाई दुबई में कमाते हैं।"

छोटी मोहिनी ने फिर पूछा—"हम अमीर क्यों नहीं हैं ?"

अब माँ उन सबको कैसे समझाए कि वे ग़रीब क्यों हैं। उसने इतना-भर

कहा—"बेटी, हम लोग भी सिंध में बड़े ही सुखी थे।"

माँ सिंध को अभी भुला नहीं पाई है। उसने आगे कहा—"यहाँ हमारी क़िस्मत अभी तक जागी नहीं है। तुम लोग बड़े होकर ख़ूब पैसा कमाना। फिर तो हम भी अमीर हो जाएँगे।"

रमेश ने अपनी छाती ठोंककर कहा—"हाँ, माँ, मैं दुबई जाऊँगा, बहुत सारे पिस्ते-बादाम ले आऊँगा।"

श्याम की आँखों में भी चमक आ गई थी। वह बोला—"और मैं भी विदेश जाकर ख़ूब कमाकर आऊँगा और फिर सुनील के भाई की तरह जेब में नोट डालकर घूमूँगा।"

मोहिनी ने कहा—"फिर हम भी इन गुजराती भाइयों की तरह मोटर-कार में घूमेंगे। ये भी बड़े ही अमीर हैं। मेरी सहेली ने मुझसे एक दिन कहा—'नया फ़्रॉक पहनकर आओ तो तुम्हें कार में बिठाऊँ। लेकिन मेरे पास तो नया फ़्रॉक है ही नहीं। सभी तो पुराने हैं। माँ, यह देखो, यह भी यहाँ से फट गया है।" उसकी आवाज़ में दुख भरा था।

माँ भी बच्चों की बातें सुनकर दुखी हो उठी। लेकिन वह अपने दुख को छिपाती हुई बोली—"अच्छा'''अच्छा, अब तुम सब जाओ और अपनी-अपनी किताबें लेकर पढ़ो। जब ख़ूब पढ़-लिखकर इम्तहान पास करोगे, तब विदेश जा सकोगे।"

परन्तु बच्चों को पढ़ाई के संबंध में माँ की यह बात समझ में नहीं आई। सुनील पढ़ाई में श्याम से भी कहीं ज्यादा कमजोर है। फिर भी वह कहता है कि वह विदेश जाएगा। लेकिन वे चुप रहे, बोले नहीं।

रविवार का दिन था। बच्चे घर पर ही थे। उनकी मम्मी सुबह से ही घर के काम-काज में व्यस्त थी। पूरे हफ़्ते का बचा-खुचा काम रविवार की छुट्टी के दिन करना पड़ता है। सुबह को दादी माँ ने नाश्ता तैयार किया तो मम्मी ने बर्तन-झाड़ू का काम निबटाकर कपड़े धोना शुरू किया। दादी माँ थैले में से सब्जियाँ निकालकर दोपहर के खाने की तैयारी में लगने को थी कि उसे बच्चों ने आकर घेर लिया।

कमला कपड़े धोने के काम से फ़ारिग हुई तो उसने देखा, बच्चे चुपचाप बैठे पढ़ाई कर रहे थे। वैसे तो वे छुट्टी के दिन बड़ा ही ऊधम मचाते हैं। उसने हैरत से पूछा—"आज ये शैतान कैसे चुपचाप बैठे हैं!"

मोहिनी ने आहिस्ते से कहा—"मम्मी, माँ कहती है कि अगर हम पढ़ेंगे तो बड़े होकर अमीर बनेंगे।"

कमला को हँसी आ गयी।

रमेश ने मम्मी से पूछा—"तुमने कभी पिस्ते-बादाम खाए हैं?"

कमला को और भी ज्यादा अचरज हुआ। बोली—"क्यों पूछते हो?···पिस्ते बादाम? हाँ, शायद खाए हैं।"

श्याम ने कहा—"शायद नहीं, पक्की बताओ।"

कमला ने कहा—"बचपन में शायद दो-तीन बार पिताजी ने पिस्ते-बादाम खाने को दिये थे।"···

रमेश ने बीच में ही कहा—"कहाँ? सिंध में?"

कमला को फिर हँसी आ गई। वह बोली—"अरे मूर्ख, मैं तो यहाँ हिन्दुस्तान में जन्मी थी, मैंने सिंध नहीं देखा है। ··लेकिन तुम आज पिस्ते-बादाम का यह क़िस्सा कहाँ से ले बैठे?"

श्याम ने अपनी जेब में से दो-तीन पिस्ते-बादाम निकालकर मम्मी को दिखाए। कहा—"देखो, मेरे दोस्त सुनील की माँ ने दिये हैं।—दो-तीन मोहिनी ले गई, ढेर सारे बदमाश रमेश ले गया।"

कमला ने गुस्से में आकर कहा—"बदमाश, ऐसे कैसे बोलते हो?"

माँ ने कमला को बीच में ही टोककर कहा—"कमला, तुम भी तो ऐसे ही बोलती हो। तुमने भी तो···।"

सभी हँसने लगे।

रमेश के दिमाग में अभी तक यह बात थी कि उसके पिस्ते-बादाम कड़ुवे निकले थे। उसने कहा—"मम्मी, हमें पिस्ते-बादाम लेकर दो।"

मम्मी के उत्तर देने से पहले ही माँ बोली—"अच्छा बेटे। लेकर देगी।··· कमला, जब तुम्हें इस महीने की तनख्वाह मिलेगी, तो तुम बच्चों के लिए दस रुपये के पिस्ते-बादाम ख़रीद कर लाना।"

कमला असमंजस में पड़ गई। बोली—"लेकिन माँ, अभी तो कर्ज़ की कई किस्तें देना बाकी है। ऐसे तो घर-खर्च के लिए दस रुपये कम हो जाएंगे।"

माँ ने कहा—"अरी बिटिया, जो दस रुपये तुम मुझे हर महीने दिया करती हो, इस बार न देना।···बच्चों के लिए पिस्ते-बादाम जरूर ले आना।"

बच्चे-ख़ुशी के मारे झूम उठे। कमला ने उन्हें डांटकर कहा—"अच्छा, इस बार ले आऊँगी। लेकिन आगे कभी ऐसी महँगी चीजें लाने के लिए ज़िद मत करना।···अब उठो, नहा-धो लो, तो मैं तुम्हारे लिए खाना बना दूँ। तुम्हारे डैडी भी दुकान से आते ही होंगे।"

माँ के चेहरे पर तो मुस्कराहट थी, पर उसकी आँखों में आँसू थे।

(अनु०—डॉ० मोतीलाल जोतवाणी)

# मलयालम

यू० के० कुमारन्

श्रीमती सारा तोमस्

## यू० के० कुमारन्

जन्म—1950 में जिला कालीकट के पय्योल स्थान पर। शिक्षा—अर्थशास्त्र में बी. ए., पत्रकारिता और जन संपर्क में डिप्लोमा। व्यवसाय—पहले



'वीक्षणम' दैनिक में और अब 'केरल कौमुदी' में वरिष्ठ उपसंपादक।

प्रकाशित रचनाएँ—4 उपन्यास, 2 कहानी-संग्रह।

● केरल कौमुदी, तोडयाड्, कालीकट —673016

## सारा तोमस्

जन्म—14 सितम्बर, 1934 त्रिवेन्द्रम में। शिक्षा—बी० एस-सी० (जन्तु विज्ञान)

प्रकाशित रचनाएँ—12 उपन्यास, 2 कहानी-संग्रह। 4 उपन्यासों पर



मलयालम फ़िल्में। 'मणिमुत्तकम' फिल्म पर राष्ट्रपति पुरस्कार। 'नारमरिप्पुट्टवा' पर केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार।

● प्रशान्त, नन्दावनम् रोड, पालयम्, त्रिवेन्द्रम—695033

# वह और मैं

●

## यू० के० कुमारन्

मुझे लगने लगा है कि उसकी बातें गर्मी की अन्तिम वर्षा के समान हैं। वैसे, लच्चीराम मेरा कोई नहीं है, फिर भी मैं उसकी बातों से खिड़की के बाहर की दुनिया को रोज़ देखता हूँ। उसकी बातें उस वर्षा के समान हो गयी है, जो कि पहले ठण्ड मे गीली हो जाती और फिर गर्मी की मिट्टी याद दिलाती।

जब कभी मैं उसे देखता, यों कहने को मेरा मन करता कि लच्चीराम, मैं तुम्हारी बातें सुनने को तैयार हो गया हूँ। वह मेरा कोई नहीं, नगर के बारह नम्बर मुहल्ले के गोरखे से मुझे काहे को इतनी ममता? अपने जागरूक पैरों की आहट से वह मुहल्ले की पहरेदारी करता है—रात को, मेरे दफ़्तर की दीवारों की उस तरफ़ से। रात के एकांत क्षणों मे अक्षरों के निविड़ वन मे जब मैं आज़ाद रहता हूँ, तब मैं जानता हूँ कि उस तरफ़ मुहल्ले से कोई जिन्दा ख़बर ताल देती चली जाती है।

लच्चीराम से मेरी दोस्ती कैसे हो गयी, यह बात आज भी मेरे लिए अज्ञात है। शायद इसलिए हो कि उसकी ड्यूटी उस मोहल्ले मे थी, जहाँ हमारा दफ़्तर है। मै जानता हूँ कि यह सही उत्तर नही होगा। वैसे, मामूली गोरखे से अधिक उसकी कुछ ख़ासियत नहीं थी। गेहूएँ रंग के सूखे चेहरे पर पतली आँखें और वह निर्जीवता, जोकि विषादयुक्त आलस्य में बंधी हुई हो—यह लच्चीराम की तस्वीर है। शतरंज के बोर्ड का फ़ीका मोहरा या ताश के पुराने पत्ते पर का जोकर —ये दोनों विशेषण उसके लिए उपयुक्त थे। पर मैं लच्चीराम को तभी प्यार करने लगा, जब मुझे लगा कि वह यह सब नहीं, कुछ और है।

वह नगर की खिड़की था।

उसके काले दाँतों से होकर आने वाली आवाज़ रात्रिकालीन नगर की गूँज थी। रोज़ मुझे देख कर वह मेरा अभिवादन करता,

कभी चूकता नहीं । हम तब तक बात करते रहते, जब तक नगरपालिका की नई मीनार-घड़ी में एक बजता । उसे नगर के बारे में सब कुछ मालूम था । यद्यपि वह बारह नम्बर मुहल्ले का पहरेदार था, फिर भी वह नगर के सारे स्पन्दन सुन लेता था । उसकी बातें सुनकर मैं चकित रह जाता ।

—"लच्चो, तुम यह सब कैसे जानते हो ?"

—"साब, मैं पिछले अड़तीस बरसों से रात का हिस्सा हो चुका हूँ ।"

अंधेरे की सुन्दरता सबसे बढ़कर वह जानता है । रात की भी सुन्दरता है—नंगी क्रूरता की सुन्दरता । सभी मनुष्य रात को जागते रहते । नगर के चावालीसों मुहल्ले दिन को सोकर रात को जागते हैं। यहाँ के छह लाख लोग साँझ से एक नई ज़िन्दगी शुरू करते हैं। ये लच्चीराम के शब्द हैं। उस समय उसकी आवाज़ में उस ठंडी की ताल थी, जो बर्फीले गेहूँ के खेतों से होकर बहती है । उसके बरस चुकते ही मुझे ग्रीष्म की वर्षा की याद आती । लच्चीराम आसमान और बादल है। वह मुझसे कहता—

"साब, आप मुझे प्यारे हैं ।"

अख़बार के दफ़्तर में मैं रोज़ रात की शिफ़्ट पसन्द करता हूँ । मैंने दिन का काम इसलिए नहीं चुना था कि रात की छोटी खिड़की से दुनिया को देख सकूँगा । बल्कि इसलिए कि दिन को ट्यूटोरियल में अध्यापक और रात को संवाद-लेखक हो जाने से मैं ज़िन्दा रह सकता हूँ। नहीं तो मुझे 'ज़िन्दा रहने को मजबूर' की उपाधि शायद ही अनुकूल पड़ती । अब अंधेरे से दिखाई जाने वाली दुनिया मैं भी पसन्द करने लगा हूँ । लच्चीराम की तरह कल शायद मैं भी बताऊँगा कि रात की दुनिया कितनी हसीन है ।

अंधेरे की अनेक सेंधों से ख़बरें मेज़ पर गिर जाती । उसमें से ज़रूरी ख़बरें दे देना ही मेरा काम है। हर पल में दुनिया में क्या-क्या हो जाता है, उसे मैं जानता हूँ । रात की सेंधों पर मेरी आँखें लगी हैं । मुझ जैसे मामूली प्रतिलिपिक को पत्रकार बना दिया था लच्चीराम ने । लच्चीराम के द्वारा ही मैंने नगर देखा था । उसी के बाद लोगों का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट हो गया था ।

किसी दिन आधी रात को हमारी दोस्ती शुरू हो गयी होगी। ठीक दिन और समय मैंने नोट नहीं किया है। आधी रात तक की ख़बरें चुनकर दे दी और मैं ओवरब्रिज के पार अपने अड्डे की ओर जा रहा था । शायद उसी वक़्त हमारी दोस्ती शुरू हुई होगी । सभी रिश्ते इसी प्रकार तो बनते हैं । अब हम दोस्त हैं। बारह नम्बर मुहल्ले के पहरेदार और पाठकों को मज़ेदार ख़बरें देने वाले अख़बार के प्रतिलिपिक के बीच का संबंध असाधारण था । इसे याद करके मुझे सचमुच हँसी आयी ।

दफ़्तर से मेरे लौटने के इन्तज़ार में लच्चीराम मैदान के पास खड़ा होगा ।

फिर हम ओपन-एयर-थ्येटर के पास वाली सिमेंट की बेंच की ओर बढ़ेंगे।

जागते हुए नगर की निगूढ़ ताल एक तरफ़। दूसरी तरफ़ जहाज़ से उठने वाली सीटी। बन्दरगाह भी जग गया होगा।

लच्ची राम के पास कहने के लिए कई बातें है। उसे इस नगर मे आये पूरे अड़तीस साल बीत गए। रात्रिकालीन नगर का हर भाव उसे अच्छी तरह मालूम है। हर चाल-चलन की अपनी अलग-अलग भाषा है। पहले वह भाषा समझो, साब, फिर नगर को समझ सकोगे। लच्चीराम बेमतलब की बातें नही करता।

सिर्फ़ गेहूँ के खेतों को याद करते समय वह भावुक हो आता। किसी को उसने प्यार नही किया है। वैसे किसी से ममता की भावना उसमे नही है। इसके बावजूद एक दिन उसने कहा—"साब, मुझे प्रिय हैं।"

—"क्यों भई लच्ची, सिर्फ़ मुझसे प्यार कैसे हो गया ?"

—"साब, वो तो ऐसा है।"

ज्यादा स्पष्टीकरण नहीं। लच्ची प्यार करता है तो करता ही जाता है। वह दिन को सोता है। दिन को सोनेवाले को कोई परदा नही।

बन्दरगाह के उस पार का पुल चढ़कर आने वाली रेलगाड़ी की हल्की चीख़। पूरब की तरफ़ से कारखानों से बजने वाला सायरन। पार्क में खिले रजनीगंधा के फूलो की महक। बर्फ़ीली सर्द हवा। हम जहाँ बैठे थे, उस सीमेंट की बेंच पर ठंड बढ़ रही थी।

रात की पारदर्शी से मैंने लच्चीराम की आँखें देखीं। वहाँ अजीब बेचैनी दीख पड़ी। मैंने पूछा नही—'लच्ची, तुम्हें हो क्या गया ?'

नगरमहापालिका की मीनार-घड़ी में तभी एक बजा। अब दिन के उजाले के लिए घंटों-भर की देरी है। नगर के ऊपर का काला परदा हटने वाला है। फ़ौरन लच्चीराम ने उठकर दबे स्वर में गरजते हुए मुझे आदेश दिया—

"साब, यह जगह फ़ौरन छोड़िए।"

—"क्या हुआ ?"

—"इस मुहल्ले में आज किसी का ख़ून होगा।"

और कुछ पूछने न दिया, उसने बेंच से मुझे उठाकर कहा—

"जल्दी ओवर ब्रिज पार कर लीजियेगा।"

मुझे उसकी बात माननी पड़ी। अगले दिन सवेरे मुझे पता चला कि बारह नम्बर मुहल्ले में रहने वाले सिनेमा-निर्माता का ख़ून हो गया। रात को एक बज कर पाँच मिनट पर। तब मैं ओवर ब्रिज पार कर अपने कमरे के द्वार तक पहुँचा हूंगा।

ख़ून तो बड़ी चालाकी से किया गया था। अपने घर पर सोये हुए सिनेमा-निर्माता को जगाया और उन्हें गोली मार दी थी। इसके बाद ख़ूनी रेलवे-लाइन

से बच गया। कोई सबूत नहीं छोड़ा था। पता नहीं, क्यों मुझे लच्चीराम पर ही शक हो गया था। जरूर उसे जानकारी रही होगी। रात को दफ्तर से निकला तो दरबार-हॉल के पास लच्ची को देखा। वह मेरी राह देख रहा था।

मैं इस उलझन में पड़ा कि बात कहाँ से शुरू करूँ।

—"साब, सब कुछ उसी ढंग से हुआ, जैसे सोचा गया था।"

—"तो तुम भी उसमें भागीदार थे? क्यों लच्ची?" मुझे बात पूरी नहीं करने दी, उससे पहले उसने मुझे छाती से लगाकर कहा—"ऐसा मत कहिए, साब···बस, मुझे सब मालूम है, बस इतना ही···।"

—"तुमने उसे रोकने की कोशिश क्यों नहीं की?"

"मुझसे सम्भव नहीं था, साब। इतना निश्चित था कि वह मर जाएगा। उसे भी इसका पता था। यही उसका ख़ून हो गया, बस इतना ही। रास्ते में उन लोगों ने साब को देखा होता तो आपको भी मार डाला होता। साब मेरे प्रिय हैं। आपको कुछ न हो, बस इसीलिए···।"

—"लच्ची, वे लोग कहाँ बच निकले?"

—"वे बच गये। अब उन्हें पकड़ नहीं पायेंगे।"

मुझे विश्वास था कि वह जो कुछ कहता है, वैसा ही सब कुछ होता है। इसलिए अगले दिन के अख़बार में मैंने रिपोर्ट दी कि ख़ूनी दूसरे प्रान्त चले गये। यह भी सूचित किया था कि उन्हें कभी पकड़ नहीं पायेंगे। इस ख़बर ने सनसनी फैला दी।

उसी रात को लच्ची ने कहा—"मैं भी इस मुकदमे का गवाह हूँ। पर मैं कर ही क्या सकता हूँ।"

सभी बातें वैसे ही हो गयी थी, जैसे उसने कह डाली थी। कई दिनों के बाद भी पुलिस को उस मुकदमे के सम्बन्ध में कोई सबूत नहीं मिला। अख़बार उसे भुलाने लगे। रात की जागृति की दुनिया में ऐसा क्या-क्या हो जाता है!

रात का स्मरण करने पर लच्ची को क्या लगता है? कुछ नहीं। उसने अपने आप कहा। किसी के कहे बिना ही बारह नम्बर मुहल्ले के पहरे का काम मैंने अपनाया था। महीने के अन्त में जब लोगों के सामने हाथ फैलाता तो किसी के चेहरे पर भलाई की हँसी नहीं फूटती। बदले में वे अपनी मजबूरी की पोटली उसके सामने खोल देते हैं। बिना संकोच के वह उसे सुनता भी। कुछ लोग हँसी उड़ाना जानते हैं। कितनी क्रूर हँसी। लच्ची, चोर को पकड़ने के लिए नहीं, बल्कि तुम चोरी न करो, इसके लिए पहली तारीख़ को हम तुम्हें पैसा देते हैं। लोगों का विश्वास है कि मैं चोर हूँ। पर मैं जानता हूँ कि चोर कौन-कौन-से हैं। मुझे धोखा देकर कोई इस मुहल्ले से कुछ चुरा नहीं सकता। मैं सब कुछ देखता हूँ।

लच्चीराम पर मेरा विश्वास तब मजबूत हो गया, जब उसने मुझसे कहा कि सैक्टर चौदह मे रहने वाले भगवान दास की बेटी को चुरा लिया जायेगा। भगवान दास मुख्यमंत्री के खास निकट के दोस्त हैं। उनके फ्लैट की तीसरी मंजिल से एक रात बच्ची गायब हो गयी। उस घटना की पूर्व-संध्या पर लच्चीराम ने मुझे सूचना दी थी—

"साब, आज इस नगर मे एक अजीब चोरी होगी।"

मैंने इसलिए ज्यादा पूछा नही कि कल जान लूँगा। सुबह ही खबर फैल गयी। कितनी चतुराई से चोर बच्ची को लेकर रफूचक्कर हो गये। तीसरी मंजिल से चुपचाप नीचे आए और मुख्य फाटक से बाहर गए। बच्ची को वापस करने के लिए वे तीन लाख रुपये माँगते हैं। उस दिन की सबसे मुख्य ख़बर यही घटना थी। अब अख़बारवालों को कुछ दिनों के लिए और कुछ करना नहीं था। उन्होंने भगवान दास के फ्लैट के पास अपना अड्डा जमाया।

रात को लच्चीराम मिला तो मैंने पूछा—

"अब की बार क्या होगा, लच्ची?"

—"वे जरूर बच्ची को वापस करेंगे। लगता है कि उन्होंने मजाक़ के लिए ऐसा किया है।"

यह तो मेरी सहन-सीमा के परे था। गाली देने के बराबर था। मैंने ख़ाकी शर्ट समेत उसकी गर्दन पकड़ी और जोर लगाकर पूछा—"बोल, तेरा इसमे हिस्सा नही?"

मेरा वह भावावेश उसके लिए बिल्कुल अप्रत्याशित था। वह फीका पड़ गया। मेरा सामना करने में अशक्त होकर व्याकुल हो गया। पर अगले क्षण मुझे चकित करते हुए उसने चाकू मेरी ओर उठाकर कहा—"देखो साब, मुझे ऐसे आदमी को मार डालने में जरा भी डर नही, जो मुझ पर विश्वास नहीं करता। पर साब मेरे लिए प्यारा है···।"

—"पर लच्ची···?"

—"साब को मैंने सब कुछ साफ़-साफ़ बताया है। मैं कुछ अन्याय नही करता। पर इस नगर की सारी बेईमानी मैं देखता हूँ।"

लच्चीराम रोने को हुआ। चाकू को नीचे रखकर वह बोला—"साब··· जाइए···।"

तब मीनार-घड़ी में एक बजा नहीं था।

लच्चीराम के कहने के आधार पर मैंने दूसरे दिन अख़बार मे एक ख़बर छपवा दी। भगवानदास की बच्ची जल्दी ही वापस आने की संभावना है। यही सूचना दी थी। ख़बर आने के दूसरे दिन भगवान दास की बेटी उनके बगीचे में प्रकट हो गयी।

फिर, खबर ढूंढ लेने की मेरी अद्‌भुत क्षमता पर सब मुझे दाद देने लगे।

आगे के कुछ दिनों में मैं लच्चीराम को देख नहीं पाया। उसे क्या हुआ? मुझसे रूठ गया क्या? या कि बीमार है? नगर के कई कोनों में उसे ढूंढ़ा, पर वह कहीं नहीं मिला। गोरखों की बस्ती में भी जाकर देखा। आए-दिन वह कभी वहाँ गया नहीं था।

चौथे दिन मैंने उसे देख ही लिया। पुराने स्थान पर लच्ची मेरा इन्तजार कर रहा था। पहला जैसा उत्साह नहीं था उसमें।

—"तुझे क्या हो गया लच्ची? कुछ बीमारी?"

—"मैं इस नगर से जा रहा हूँ, साब।"

—"क्यों, क्या बात है? क्या इस नगर से तुझे घृणा हो गयी?"

—"मुझे लगने लगा है कि अपने सबसे प्यारे आदमी को मार डालना होगा। साब, उसके पहले मुझे यहाँ से चला जाना चाहिए।"

(अनु०—बी० डी० कृष्णन नंपियार)

आज भी। (नही, प्रिय थे, शादी तक) साल में एक बार किसी अच्छी तिथि को वह घर आ जाता है। फिर दोस्तों के साथ हँसी-मजाक। सोया हुआ घर फिर जागता है।

अब सिर्फ़ तीन वर्षों से यह क्रम बदल गया है। जानती हूँ, इसमें शिकायत करने की गुंजाइश नहीं। बेटा शादी-शुदा हो गया है—यह तो भुलाना नहीं चाहिए। उसकी अपनी अलग उलझनें होंगी। बुढ़ापे में मुझे अकेली छोड़कर जाना नहीं चाहता था वह, इसीलिए उसी के आग्रह पर मैंने बहू चुन ली। धन-दौलत का ख्याल नहीं किया, लड़की मेरी सेवा-सुश्रूषा के लिए तैयार हो—यही उण्णि चाहता था। पर छुट्टी के बाद वह गया तो बहू का मुंह फूल गया। मैंने ही पैसा खर्च करके उसे पति के साथ भिजवाया कि मुझसे उसका दुख, उदासी और अनमनापन देखे नहीं गई। अब तो तीन वर्ष बीत गये। दोनों पहली बार घर आ रहे हैं।

अप्पू तो पाँच वर्षों में एक बार ही घर आता है। अमेरिका से आने-जाने में उसे और परिवार को भारी रकम खर्च करनी पड़ेगी। उसने ही छोटे भाइयों से कहा था, पाँच साल में एक बार सब ओणम के समय घर आयें, घर मिलें। केवल ओणम के कारण नहीं, श्रावण महीने में 'धनिष्ठा' मेरा जन्म दिन है। ठीक तीन दिन बाद मैं सत्तर वर्ष की हो जाऊँगी।

वह आँखें बन्द करके अपने में खो गयी। अब तो 'उन्हीं' की शक्ल सामने आती है। घर के अहाते और बाग-बगीचे में व्यस्त रहने वाले अपने पति का। गठा हुआ काला बलिष्ठ शरीर। बीच-बीच में 'देवू-देवू' पुकार कर मुझे हिदायत देते। तीन छोटे-छोटे बच्चे। फिर भी किसी बात में मैं पीछे नहीं रही। एक को बग़ल में संभाल और दूसरे का हाथ पकड़, मैंने उनकी सहायता की। जी-तोड़ मेहनत की। एक ज़माना वह भी था।

कैसे, ख़ून-पसीना, बहा कर यह सारी संपत्ति कमायी थी। टूटा-फूटा पुश्तैनी मकान तोड़-फोड़कर दुमंजिला बंगला बनवाया। नारियल-कुंज ख़रीदा। ब्राह्मण ज़मींदार से धान के खेत साझेदारी पर खेती के लिए लिये। उन्होंने एक घंटे तक का विश्राम नहीं किया।

फिर? एक रोज़ काम करके लौटे तो वह केले के तने के समान दहलीज़ पर गिर पड़े। फिर भी मैं हताश नहीं हुई। उन्होंने जिन बेटों को मुझे सौंपा था, उनके वास्ते मेरे अलावा और कौन था? बेटों को पाल-पोसकर बड़ा किया। जीवन-भर चैन से रहने लायक़ संपत्ति उन्होंने बना ली थी। सिर्फ़ यही कमी थी कि वह साथ नहीं हैं। अब तक मैंने शान से घर-गृहस्थी का काम देखा। तब और अब भी दूसरों के सामने सर उठाकर ही चलती। 'बड़े घर की' देवकि अम्मा— इस नाम का महत्त्व और गरिमा आज भी ज्यों की त्यों है। दुमंजिला

मकान, नारियल-कुंज और धान के खेतो की मालकिन। (यह दूसरी बात है कि मन यह मानने को तैयार नही कि आए दिन के ये सारे ताम-झाम मुसीबत हो गए है)

फ़िज़ूल ख़यालो मे कितना समय गंवाया? "शारदा-ओ शारदा"! पुकारती हुई सीधी रसोई-घर की ओर बढी। मेरे उसके पास जाकर सामने खड़े हो जाने पर ही वह मुझे सुनती है! ख़ैर'''चूल्हा तो जलाया है। अब तक आँगन साफ कर बरामदा पोछा जा सकता था। यह तो मेरी हिदायतें मानती नहीं। इसे सख्त चेतावनी देने का समय आ गया है। बेटों को आने-जाने दें'''उसके बाद। नही तो उनके सामने यह चुड़ैल मुँह फुलाए खड़ी रहेगी। बेटो को बेचैन क्यो करूँ? हर बार की उनकी शिकायत है कि मैं नौकरों के प्रति सख्त हूँ।

अब बेटों के स्वागत की तैयारियों का ख्याल आया। अप्पू और सरला को ऊपर का कमरा ठीक रहेगा। उसे इधर वही एक कमरा भाता है। वहाँ कुछ प्राइवेसी है। नीचे का हिस्सा सबके आने-जाने को सराय-सा है। रेखा और रश्मी दोनों बिटियों को अपने साथ रखूँगी। अपने कमरे की पुरानी गंध उन्हे फूटी आँख नही सुहाती। पिछली बार आयी तो उन दोनो ने अपने बाबूजी से अंग्रेज़ी में इसका ज़िक्र किया था। पर माँ-बाप के साथ उन्हे ऊपर के कमरे में सुलाने लगी तो अप्पू ने मना किया। अमेरिका मे बच्चों को माँ-बाप के साथ लिटाया नही जाता। फिर केशी का परिवार भी है। सोने की बात मे उनका कोई विशेष आग्रह नही होता। बम्बई के किसी व्यस्त मुहल्ले में किसी बड़े मकान की चौथी मंज़िल के दो कमरो मे वे रहते है। उनके लिए इधर नीचे का हॉल पर्याप्त है। भले ही केशी की पत्नी पद्मिनी, अमेरिका से आयी अपनी बड़ी भाभी की तरह यहाँ की सुख-सुविधाओं से सन्तुष्ट दिखाई नहीं देती। जब 'वह' ज़िन्दा थे, उसने सुझाया था, हमारे सोने का कमरा उनके लिए खोल दिया जाये। पर मैंने उसे अनसुना कर दिया। पता नही क्यों, उसी समय से वह कमरा साफ करके वहाँ बत्ती जलाकर वैसे ही सुरक्षित रखा गया है।

उण्णि के लिए बरामदे का सोफा ही काफ़ी था। घर आया भी तो क्या, उसे घर पर रहने का समय कहाँ? पुराने दोस्तों को ढूँढने में व्यस्त रहता। फिर मंदिर की चार-दिवारी, पनघट और चौक में उसका समय बीतता। चूंकि मैं उसके साथ खाने के इंतज़ार में रहती, इसलिए आधी रात तक वह घर आ जाता।

जब हरेक के सोने की व्यवस्था ठीक की, तो शारदा को हिदायतें दीं— कमरों में झाड़ू लगाकर साफ करना, गद्दे-बिस्तर धूप मे सुखाकर खाटों पर लगाना आदि।

अब खाने की बात। बेटों की रुचि बदल गयी है। वैसे ही तीतो, घट्टी और

नमकीन चीज़ें किसी को पसन्द नही। सादा साम्बर, कम खट्टा कालन्[1] कम नमकीन अचार—ऐसा कुछ बना लूं तो भी वे पसन्द नही करेंगे। मछली और गोश्त के बिना वे एक बार भी खा नही पायेंगे। पर ओणम के इस शुभ अवसर पर—हाँ, ओणम की चीज़ें ही बनाऊँगी। ओणम के दिन खीर आदि नहीं चाहिए ! बच्चो को गुड का बना पायसम् पसन्द है। पर 'उनके' समय का क्रम नही तोड़ूँगी। अपने ही खेत के चावल और नारियल के दूध को पड़ोसी अवराच्चन् के शुद्ध गुड़ में मिलाकर 'वह' विशिष्ट खीर बनाते थे। सभी उसे चाव से खाते थे। उस समय "उनके" मुख पर संतुष्टि का भाव खिल उठता। ख़ैर'''पुरानी बातों को याद न करूँ, तो वही अच्छा होगा।

यद्यपि अप्पू आज दोपहर को प्लेन से आएगा, फिर भी रात को सरला के घर ही ठहरेगा। अमेरिका से आने वाली विशिष्ट चीजें वही बटेंगी। उनकी पड़ोसिन रेवति टीचर, जो हमारे यहाँ किराए पर रहती थी, उसी ने बताया था। मुझे ओणम के 'विशिष्ट वस्त्र' देने मे अप्पू कभी भूल नहीं करता। फिर भी सरला अपने घर-वालो को जो अमूल्य उपहार देती है, उसको सुनकर कभी-कभी सोचती—काश मेरे भी एक बेटी होती ! मरते दम तक 'उन्हें' बेटी न होने का दुख सालता रहा। तब अपने बेटों की शक्ति पर मैं गर्व करती थी। अब यह विचार क्यों आया ? मन की चचलता होगी।

बेटों के रहने-सोने का प्रबन्ध पूरा होते-होते शाम हो आयी थी। ऊपर के शयनागार में बड़ी-सी बाल्टी साफ़ करके उसमे पानी भर रखा था। अप्पू ने सवेरे नाश्ते के समय आने की बात लिखी थी। फिर भी उसे और सरला को नहाने-धोने में कोई कष्ट न हो।

सोने गयी तो देखकि अम्मा को उत्कण्ठा हुई कि कोई काम रह तो नही गया है।

पूरे पाँच वर्ष बाद तीनो बेटे एक साथ घर आ रहे हैं। मेरे होते उन्हे कोई कमी महसूस नही होगी। रेवति टीचर ने जैसे कहा था—"माँजी, आपकी बहुएँ ख़ुशनसीब हैं। सुसराल में उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नही। यहाँ सब ठीक-ठाक है। उन्हे केवल सुस्ताना और आराम करना होगा। पर वे क्या इसका मूल्य सम-झती है ? मेरी सास शनिवार को मेरी राह देखती रहती हैं। क्योंकि तभी वह अपनी बेटी के यहाँ जा सकती है। मेरे पति का आदेश है कि उन्हे दो दिन की छुट्टी दी जाये। नाम के लिए वह पाँच दिन की गृहस्थी चलाती है। पर सब भारी काम मेरे लिए पड़े रहते हैं। वहाँ पहुँचने के बाद, फिर इधर लौट कर ही मैं साँस लेती हूँ।"

---

1. कालन्—दही-मट्ठे से बनी पानीदार तरकारी।

रेवति टीचर ठीक कहती है। अगर एक दिन मै यहाँ न रहूँ, तो पता नही, मेरे ये बहू-बेटे क्या करेंगे।

इधर-उधर की बातें सोचकर लेटी थी। अतः बड़े सवेरे ही नींद आयी थी। सोते हुए एक अजीब सपना मैंने देखा।

अभी सुबह हो रही थी। आज रामन नायर पहले ही आया है। पीछे शारदा भी। बेटे आज आयेंगे, इसलिए पहले ही दोनो पहुँचे होंगे। अलावा इसके मैंने कल कहा भी था कि सुबह पहले आ जाना।···रोज की तरह बरामदे का द्वार खट-खटाने के बदले रामन नायर चाबी से दरवाजा खोलने की कोशिश करता है। क्या वह होश मे नहीं? या वह घमड में है? नही, सिर्फ रामन नायर और शारदा ही नही, मैं भी बाहर हूँ। यह क्या मजाल है! मेरा घर पर नही रहना—पिछले पचास वर्षों में ऐसा कभी नही हुआ। जहाँ भी जाऊँ, रात तक घर लौट आना चाहिए। यह 'उनका' नियम था। उनके निधन के बाद भी मैंने यह नियम नही तोड़ा। तो अब यह कैसे हुआ? क्या किसी पूर्व-सूचना के बिना मुझे घर से निकाल दिया गया? हाय! मेरे सारे अंग शिथिल हो गए। मेरे विचार पहले जिज्ञासा में बदल गए और फिर चिन्ता में। रामन नायर के पीछे मैं घर के अन्दर गयी। रामन नायर शारदा को हिदायतें दे रहा है। फ़ौरन, मानो कुछ याद करके, उसने उत्तर की तरफ़ जाकर शारदा को समझाया—'देख, पहले माँजी के चबूतरे को साफ़ करके वहाँ बत्ती जलाना। बाकी सारा काम बाद में।' क्या, माँजी का चबूतरा? तभी समझ में आया कि मै मर गयी हूँ। भगवान! अब की बार बेटे घर आयें तो उनकी सुख-सुविधा का ख्याल कौन रखेगा? मृत्यु हो जाने से मेरी मजबूरी! उन्हें कैसे समझाऊँ? क्या शारदा पत्थर बनकर वहाँ खड़ी है? क्या रामन नायर की बातें उसने सुनी नही? 'क्यों री! इस प्रकार क्यों खड़ी हो तुम?' रामन नायर ने पूछा।

शारदा अपने ओठ सिकोड कर फ़ुस-फुसायी—"हूँ, बत्ती जलाती हूँ। क्षण-भर भी साँस लेने नहीं दी है बुढिया ने। पैसा बचा-बचा कर पिछली बार ओणम को पाजेब बनायी थी मैंने। पर एक दिन भी यहाँ पहनने नही दी। कहती थी, नौकरानी पाजेब पहनकर चल नही सकती।"

नौकरानी की यह कृतघ्नता। पाजेब बनाने को पैसा पूरा नहीं पड़ा, तो मैंने ही तीस रुपये उधार दिए थे। आज तक उसने वापस किये भी नहीं। फिर, घर पर पाजेब बजने नही दी, कारण? सुबह आने वाले गाय-दोहक से लेकर शाम को ताड़ी (नारियल के पेड़ से) लेने वाले मजदूर तक से वह छेड़-छाड़ करती है। तब, फिर उण्णि घर पर हो तो···तिस पर भी उण्णि की लड़कियों के प्रति कमजोरी मुझसे छिपी नही है—तो उस पर नियंत्रण रखना होगा···ओ, यह सब अपनी बातें हैं। ख़ैर···नौकरानियों से एहसान और प्यार की आशा करना, इस

ज़माने में व्यर्थ ही होगा'''अप्पू बराबर कहा करता था।

रामन नायर अपना कंधा झटका कर कहता है—"अरी बेवकूफ़, ये सब पुरानी बातें हैं न! अब तो बुढ़िया के लड़कों को ख़ुश करना है। वे सौ-पचास रुपये ख़ुशी से देकर चलें। बूढ़ी होती तो मानती नहीं। अब तो वह बला टली।"

क्या! यह रामन नायर ही है, जो मेरे बारे में ऐसी नफ़रत-भरी और मुंह-ज़ोरी की बातें कर रहा है। मैंने उसे कभी एक वेतनभोगी कारिंदा नहीं माना। यह भूल गया है कि उसकी तीनों बेटियों की शादी में और नया घर बनाते समय मैंने हाथ खोल कर पैसा दिया था।'''मन ग्लानि से भर गया। उसकी बातों में भी सच्चाई है। पर अपने बेटों की फ़िज़ूलखर्ची रोकना मेरा कर्तव्य नहीं था क्या? क्या यह सब समझने की बुद्धि रामन नायर को नहीं? नहीं, मानो अब मेरा न होना उसकी ख़ुशक़िस्मती है।

फ़ाटक पर मोटर आकर रुकने की आवाज़। मेरी समाधि (चबूतरा) साफ़ करके शारदा बाल्टी लिए कुएँ की ओर दौड़ी।

'ओ, बरामदे पर पानी नहीं रखा क्या? दूर से सफ़र करके आ रहे हैं। हाथ-मुंह धोकर ही अन्दर चढ़ेंगे।' तब उसे इतनी ही समझ है। मैं बरामदे पर सिर्फ़ देखती खड़ी रही।

अप्पू और परिवार नहीं, बल्कि केशी, पद्मिनी और बच्चे हैं। पीछे पेटियों-बिस्तरों को लिए रामन नायर। दो दिन के सफ़र से बच्चे धूल और गन्दगी से काले हो गए हैं।

घर के द्वार पर आकर बेटा क्षण-भर के लिए मौन खड़ा रहा। आँखों में विषाद की छाया? मेरी याद करके'''बिचारा केशी। मेरा अभाव उसे दुख देता होगा। अगले क्षण पद्मिनी की परिहास-भरी वाणी—पैरों पर पानी डालती शारदा को संबोधित करके—"तू जा। अब की बार चप्पल उतार कर कौन पैर धोएगा? किसे दिखाने? आगे से इस घर में अपनी सुविधा से रह सकती हूँ।"

बहू ऐसा जता रही है मानो उसे पूरा आराम मिल गया है। तो मेरा सान्निध्य उसे बहुत खटकता था! क्या केशी बेटा इसके विरोध में कुछ बोलेगा नहीं! वह तो पत्नी का साथ हंस देता है। क्या उसे इतनी समझ नहीं कि बाहर की गन्दगी से सने चप्पल, साफ-सुथरे घर के अन्दर नहीं ले जाये जाते। अब तक इनकी सुख-सुविधा का ख़याल था मन में। अब तो मन भारी हो गया है। उनके साथ घर के अन्दर पैर रखने को मन नहीं करता। सब वही हो, जो वे चाहते हों। मैं क्यों'''

मेरा बेटा अपनी बीवी से कुछ फ़ुस-फ़ुसाता है। मृत्यु के बाद की हालत से होगा, मुझे साफ़ सुनाई दिया।

'तू शारदा से कह, बाबूजी वाला कमरा खोलकर हमारे लिए ठीक करना। बम्बई मे बच्चों के साथ रहने से क्या दाम्पत्य है ? इधर भी वही । न, कम से कम इस बार प्राइवेसी का कुछ मजा लूटना चाहिए।'

क्या यह मेरा बेटा ही कह रहा है। इतना स्वार्थ उसके अन्दर छिपा था। ···वैसे एक दृष्टि से उसका कथन ठीक भी है। वर्षो बाद अब घर आता है, तो उसके लिए इतनी सुविधा का प्रबन्ध मैं कर सकती थी। फिर भी, मेरे न रहने से सख्त दुखी होने के बदले बेटा···। ज्यादा कुछ सुनना न पड़े। कान बन्द करके बरामदे की दीवार के सहारे बैठ गयी।

पता नहीं, कितनी देर तक यों बैठी रही। फ़ाटक पर दूसरी मोटर···अप्पू है। उसके साथ पैंट-शर्ट पहने तीन और लोग। तब सरला, इन्दु और बिन्दु नही आयीं। मेरे न रहने की असुविधा के कारण होगा। सोने के वक़्त ही सब नीचे चले आते हैं, तब खाना खिलाने-परोसने को कोई न रहे तो···

नही, लगता है कि अप्पू के साथ आये लोगों से रामन नायर परिचित है। आपस मे कुशल पूछते और हँसते तो हैं। केशी और परिवार सीढ़ियाँ उतर कर जल्दी ही उन्हें लेने गया। अभी पता नही चला कि अप्पू के साथी कौन-कौन हैं। पद्मिनी जोर से हँसकर बोली—'भाभी और बच्चियों का वेश लाजवाब है। अगर मांजी होती तो उन्हें पहचानने में कठिनाई होती कि इनमे भाभी कौन-सी है और बच्चियाँ कौन-कौन सी हैं।'

मैं यह क्या सुनती हूँ ! अप्पू के साथ बाल कटे और पैंट पहन कर आये लोग सरला और उसकी बच्चियाँ हैं ! मेरे पास से होकर जाती हुई सरला पद्मिनी से गुप्त बात कर रही थी—"कैसा आरामदेह वेश है ! वहाँ तो हम इसके आदी हो चुके है। अब तक, यहाँ आने के छह महीने पहले से बाल बढाती थी। यहाँ भारतीय नारी बनकर न आये, तो मांजी की खरी-खोटी सुननी पड़ेगी। पिछली बार भी मेरे यहाँ नाइटी पहनने का कैसा विरोध किया था, माँ जी ने। कहती थी कि केशी और उण्णि के सामने मैं बेशरम चलती थी। तभी मैंने अप्पू से कहा था कि आइन्दा अम्माजी की मृत्यु के बाद ही मैं इधर आऊँगी। वैसे भी माँ-बाप के पीछे पड़े रहने की आदत हमारे घर मे नही। फिर अप्पू के पुराने आचार-विचार के कारण···और इस बार आए हैं, हमारे बँटवारे के लिए···।"

बाकी सुनने की ताकत मुझ में नही थी। दो बच्चियों की माँ होकर सरला कैसे यह कह पाती ? कम-से-कम यह तो विचार करती कि कल उसकी भी यह हालत होती।

रात के कपड़े के नाम पर अन्दर के सब कपड़े दिखाई देने वाला आइना जैसा वेश पहनकर सवेरे काफ़ी पीने आयी, तो मैंने उसका सचमुच विरोध किया था। तब उण्णि की शादी नही हुई थी। केशी अकेला आया था। ऐसा नही था,

तो भी देवरों के लिए माँ-सरीखा व्यक्ति इस प्रकार बेशरम प्रत्यक्ष हो जाता तो''उस दिन वह मुँह फुलाकर ऊपर चढ़ गयी तो मैंने कभी नहीं सोचा था कि वह ऐसा कठोर निर्णय लेगी कि मेरे होते इधर फिर नहीं आएगी। तब तो मेरा न रहना''उसकी जीत है। इन ममताहीन बहुओं के बीच से जल्दी हट जाऊँगी।

अपने पोते-पोतियाँ अपने ख़ून से पैदा हो गए हैं। उनके साथ अपने कमरे में रहूँ।

रेखा और रश्मी पूरे उत्साह से कमरे की देख-रेख कर रही थी। दोनों को एक-जैसी ख़ुशी। उनकी अंग्रेज़ी बोली और हँसी भले ही समझ में न आये, पर उन्हें देखते रहने में ख़ुशी है। बड़ी चौदह बरस की हो गयी है। कोई उसे लड़की नहीं कहेगा। शक्ल-सूरत वैसी है। ध्यान से देखा जाये तो 'उन्हीं' पर गयी है। चौड़ा भाल, पैनी नाक, मोटे ओठ—सब वही है। वह ज़ोर से हँसी तो बायीं तरफ़ का दाँत ऊपर उठ आया था, वह भी 'उन्हीं' की तरह। एक शीतल बौछार! उनको दूध देने शारदा आयी तो टूटी-फूटी मलयालम में जो बात उससे कही, वह सुनकर मैं चौंक गयी। सिर्फ़ उन दोनों के लिए वह कमरा मिला, यह अच्छा ही हुआ। मेरे तेल की बदबू, खर्राटा, खाँसी—ये सब उन्हें दुस्सह था। नहीं, अब मुझे यहाँ रहना नहीं है। पोते भी मेरे न रहने से ख़ुश हैं। भारी मन से मैं बाहर आयी।

दालान में अप्पू और रामन नायर थे। रामन नायर द्वारा लायी गयी सोड़े की बोतल अप्पू हाथ में लेता है। रामन नायर ने मुस्कुराकर कहा—'अब तो यह ज़रूरी नहीं कि आप ऊपर जाकर ही पिया करें। यहाँ खाने के कमरे में पी सकते हैं। मैं अपने घर से मुर्गे का गोश्त पकाकर ले आया हूँ। अब तो माँजी के देख लेने का झंझट नहीं।'

अप्पू भी हँसता है। 'रामन नायर, तुम्हारे कहने से ही वह बात याद आयी। खाना परोसने को कहो। मैं बोतल लेकर आऊँगा। यह तो अच्छा ही हुआ।'

वह ऊपर चढ़ गया तो उसकी ये बातें सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गयी। उसने किस बात को अच्छा कहा। दोपहर को खाने के पहले दालान में ही बैठ शराब पीने की बात। या मेरे न रहने की स्थिति।

ज़्यादा सोचने की शक्ति नहीं थी। धीरे-से पैर रखकर बरामदे पर आयी। फिर दीवार के सहारे वहीं बैठी। अब उण्णि का आना शेष रह गया है। आज ही आ जाएगा। कल तो ओणम है। मैं न रहूँ, तो भी वह आएगा। उसे भी एक बार देखकर'''।

पर उण्णि के बदले आया था डाकिया। रामन नायर जो ख़त लेकर अन्दर

आया, उससे लगा कि वह उण्णि का ही है। पता लगाने की कुतूहलता बढ़ी। क्या? कमला को इस बार कोई बीमारी। उसे बच्चा पैदा होने की कितनी बड़ी इच्छा थी। कई मनौतियाँ मानी थी।

ठहाका लगाकर हँसने की आवाज। हँसी-मजाक की क्या बात लिखी है उसने? जानने का उत्साह बढा। दालान में बच्चों की बातें सुनाई दी। कमला के तीन महीने का गर्भ होने की बात झूठी थी। घर आए तो, माँजी के साथ कुछ दिन रहने को कहेगी। इससे बचने को उण्णि ने लिखा···इस बार घर आकर 'बोर' होने के बदले वे यूरोप जा रहे हैं, सैर के लिए। अम्मा को निराश किया—यह अपराध-बोध भी नहीं हुआ होगा।

मन में एक प्रकार का निर्वेद फैल रहा है। हाँ, अब मेरे कारण उण्णि को ही नहीं, बल्कि किसी को अपराध-बोध न हो। अब तो इस घर से, मेरे लिए बिलकुल पराये इस घर से, निर्विकार होकर चली जाऊँगी।

मैं कहाँ गयी थी···नहीं, बाकी कुछ याद नहीं। आँख खुली तो सुबह हो गयी थी। फिर भी पाँच वर्ष में एक बार मैं जिस दिन का इंतज़ार करती हूँ, उस दिन के महत्त्व या उस दिन किये जाने वाले सैकड़ों कार्यों की याद करके बेचैन नहीं हुई। यह सोचते-सोचते थकी-हारी पड़ी रही कि मैं इस घर के लिए एकदम जरूरी व्यक्ति हूँ या कि कोई अनचाही वस्तु।

(अनु०—वी० डी० कृष्णन नंपियार)

हिन्दी

नमिता सिंह

अशोक शुक्ल

## नमिता सिंह

जन्म—4 अक्टूबर, 1944। शिक्षा—लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० एस-सी० (रसायन शास्त्र)। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पी-एच० डी०।

प्रकाशित रचनाएँ—2 कहानी-



संग्रह 'खुले आकाश के नीचे' तथा 'राजा का चौक'। अनेक कहानियाँ अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी और बांग्ला में अनूदित।

● 1, बैंक कॉलोनी, मेरिस रोड, अलीगढ़।

## अशोक शुक्ल

जन्म—16 अक्टूबर, 1956 को जबलपुर में। शिक्षा—बी० ए० एम० एस०।

प्रकाशित रचनाएँ — पहली



कहानी 'रेखाचित्र' साप्ताहिक 'रविवार' में 1979 में प्रकाशित। पहला कहानी-संकलन शीघ्र प्रकाश्य।

व्यवसाय—चिकित्सा।

● 94, उत्तर मिलोनी गंज, जबलपुर (म० प्र०)

# अंगूठी

●

नमिता सिंह

आप भी यही बात समझ रहे होंगे जो सब कह रहे हैं। मीरा ने आत्म-हत्या कर ली। यूं देखा जाय तो इसमें कुछ गलत नहीं। गलत हो भी कैसे सकता है। पहले घर में झगड़ा हुआ। फिर वह घर से चली गयी और रात-भर गायब रही।

घर से निकल कर जाते हुए उसे कई लोगों ने देखा। चौराहे के गणेश पान वाले से पूछिये। उसकी दुकान पर मुहल्ले-भर के लड़कों का जमघट रहता है। मीरा जब चौराहे के पास पहुंचती तो ख़ुद-ब-ख़ुद उसका सिर झुक जाता और चाल तेज हो जाती। उसे लगता कि सब उसकी ही ओर देख रहे हैं या उसके बारे में ही बातें कर रहे हैं। लेकिन, उस दिन पान का बीड़ा मुंह में भरे हुए और अपनी खुली जांघ पर हाथ मारते हुए गणेश आपको बतलायेगा—

"अरे साहब, आजकल की लड़कियों का कोई ठिकाना नहीं, दुनिया-भर के कुकर्म कर आयेंगी और क्या मजाल जो चेहरे पर शिकन भी आ जाये। देखने में तो ऐसी सीधी लगती थी कि पूछो मत। न जाने क्या चक्कर था। रात का वक़्त और ऐसी बेधड़क चली जा रही थी···पीछे मुड़ कर न जाने किसे देख रही थी। हमें क्या मालूम था, जो कि मरने जा रही है, वरना हमीं···।" और पान से रंगे दांत दिखाता हंसने लगेगा वह।

आप मीरा के घर जायेंगे। उसकी मां तो आपको होश में मिलेगी नहीं। बीच-बीच में होश आने पर अलबत्ता चीख़ने लगती है—"मार डाला-रे मेरी बच्ची को! खा गयी डायन उसे!" बिल्कुल ही होश गँवा बैठी है वह सदमे से।

उसके पापा दो दिन से कमरे में हो हैं। उनकी सूरत देखना दूभर हो गया है। बरामदे में उसकी बुआ जरूर आने वाली औरतों से घिरी आपको दिखाई देंगी। वह भी ज्यादा कुछ नहीं बताती।

आँसू पोंछती, कह उठती हैं—"क्या बतायें बहिन जी। थोड़ा-बहुत उल्टा-सीधा तो इस उम्र में हो ही जाता है। माँ-बाप से कहन-सुनन भी होती है। भाली-सी लड़की, यूँ चली गई।"

मीरा की लाश के टुकड़े सवेरे ही रेलवे लाइन पर मिले थे, लड़कों के कॉलेज के पास जहाँ झाड़ियाँ हैं। वहीं एक झाड़ी में दुपट्टा उलझा पड़ा था। अब ये सारी बातें एक धागे में पिरो दें तो लोगों की बातों पर विश्वास हो जाएगा। वैसे भी अपने आस-पास की बहू-बेटियों, खास तौर पर जवान लड़कियों के लिए उल्टा-सीधा सुनने के लिए लोग हमेशा तैयार बैठे रहते हैं। दूसरों के फ़टे में उँगली डालने में आनन्द तो मिलता ही है, एक क्रूरतापूर्ण संतोष का अहसास भी होता है।

मीरा एक सत्रह-अठारह साल की जवान लड़की थी। देखने में ठीक। वह खूबसूरत नहीं तो बुरी भी नहीं। फिर यह उम्र ऐसी होती है जो हर लड़की में खूबसूरती का एक अलग पैमाना लेकर आती है। उम्र का नया चढ़ाव, नई उमंगें, नयी कल्पनाएं, नयी आशाएं। नजरें ही दूसरी हो जाती हैं। सारी दुनिया एक नये रंग-में-रंग जाती है। चिड़ियों की चहचहाहट, फूलों की रंगत, नीले आसमान में रुई के फाहों जैसे बादल जो क्षण-प्रतिक्षण अपना रूप बदलते हैं—इस उम्र में एक नया मतलब लेकर आते हैं। कविताओं की पंक्तियाँ, गीतों की धुनें नित नये अर्थ देती हैं। बहुत कुछ होता है इस दुनिया से लेने के लिए और इस दुनिया को देने के लिए। अपना जीवन, अपना अस्तित्व एक नयी महत्ता का अहसास कराने लगता है।

बरसात के बाद की छलछलाती नदी-सी मीरा उम्र के इसी पायदान पर पैर रखे थी। साँवला रंग और खिलने लगा था। सवेरे के समय फूलों पर चमकती ओस की बूँद जैसी आँखें भरी-भरी जो इस उम्र में देखती कम हैं, बोलती और हँसती ज्यादा हैं। मतलब यह कि मीरा एक भरा-पूरा जीवन थी—हँसता-खिलखिलाता बेहद उम्मीदों से भरा एक भविष्य थी।

मीरा एक ठीक-ठाक घर से थी। पिता नौकरीपेशा। एक प्राइवेट फ़र्म में एकाउन्टेन्ट। खासा वेतन मिल जाता। बड़ा लड़का मीरा से दो साल बड़ा। मीरा की माँ एक सीधी-सादी औरत थी। आम मध्यवर्गीय घरों जैसी। उसकी टोपी इसके सिर पर और इसकी टोपी उसके सिर पर रख कर काम निकालने वाली नौबत तो कभी-कभी उस घर मे भी आ जाती, जो अक्सर हमारे-आपके घरों में भी चलता है। यह दूसरी बात है बाहरी टीम-टाम से पलस्तर लगा रहता है—छेद ढंके रहते है, यूँ बातों की उड़ान का क्या हिसाब। मीरा की सुमन बहिन जी से पूछो। कॉलेज में पढ़ाती हैं। अपनी नियुक्ति होने के बाद स्टाफ़ रूम में बैठने लगी तो मालूम हुआ कि कोई भी नौकरी का जरूरतमन्द नहीं। सब अपना

ख़ाली समय बिताने के लिए या सिर्फ़ शौक के लिए नौकरी कर रहे हैं। सुमन बहिन जी को यह जानकर बहुत शर्म आई है। वह तो सिर्फ़ जरूरत के लिए नौकरी कर रही है। बाऊ जी के मरने के बाद कहाँ रिसर्च, कहाँ की पी-एच. डी., सब ख़त्म। तुरन्त ट्रेनिंग की। इस नौकरी के लिए भी कितने पापड़ बेले। उस कमबख़्त हेड क्लर्क की ख़ुशामदें कीं। पिछले जाड़ों-भर उसके बच्चों को स्वेटर बुन-बुन कर पहनाए। प्रिंसिपल को कौन पूछता है? असली प्रिंसिपल तो अब हेड क्लर्क हुआ करते हैं—मैनेजर साहब के ख़ासुलख़ास। दो हज़ार रुपये नक़द दिये तब जाकर यह नौकरी नसीब हुई। लेकिन'''फिर और लोग भी तो इसी रास्ते से कॉलेज की नौकरी में आये होंगे। यह अच्छा शौक़ है जिसके लिए अपमान सहो, ख़ुशामदें करो—पैसा ख़रचो। कमला बहिन जी के साथ क्या हुआ? उनके छोटे-छोटे दो बच्चे। कॉलेज आते समय उन्हें बाहर से बन्द कर आती। पति सवेरे ड्यूटी पर जाते और शाम हुए घर लौटते। एक दिन उनके पीछे बड़ा बच्चा खेलते हुए सोफे से गिर पड़ा। नीचे न जाने कोई कील वगैरह पड़ी थी कि क्या था, बच्चे के सिर से काफ़ी ख़ून निकल चुका था। छोटा बच्चा दहशत की वजह से अधमरा-सा हो रहा था।

सुमन बहिन जी की समझ में नहीं आता कि यह कैसा शौक है जिसमें बच्चों की जिन्दगी दांव पर लगा दी जाय। यह कैसा शौक है जिसके लिए इस कदर टेढ़े-मेढ़े रास्ते अपनाये जायें कि अपनी मंजिल ही याद न रहे। यह कैसा शौक है कि जिसकी वजह से दामन में कांटे ही कांटे भर लिए जायें। कुसुम बहिन जी और मैनेजर साहब को लेकर आज तक लोग उल्टी-सीधी बातें करते हैं।

सुमन बहिन जी के चार छोटे भाई-बहिन हैं। एक भाई एम० एस-सी० में पढ़ रहा रहा है। दो-एक साल में शायद वह कुछ ठिकाने पर लग जाए तो उनका कुछ बोझ हल्का हो। सुमन बहिनजी की एक छोटी बहिन राधा मीरा की दोस्त है और मीरा के साथ पढ़ती है।

हरियाली तीज का दिन। मीरा को सुमन बहिन जी के घर जाना था और राधा से लेकर कुछ नोट्स उतारने थे। तय हुआ कि मीरा दोपहर में ही आ जाएगी। पहले पढ़ाई होगी। फिर झूला डाला जायेगा। वे लोग झूला झूलेंगी—गाना गायेंगी, फिर मिलकर खाना पकाया जायेगा। खायेंगे-पीयेंगे, थोड़ी मौज-मस्ती करेंगे, शाम होने से पहले वह घर वापस आ जायेगी।

मीरा नहाई-धोई। नया सलवार सूट पहना। दो चोटियाँ गूँथीं। काजल लगाया। माथे पर बिन्दी लगाई—सितारे जैसी, छोटी-चमकती। दो क्षण अपने को निहारती रही शीशे में और फिर हल्के से मुस्करा दी।

ड्रेसिंग टेबल पर अँगूठी रखी थी। मीरा की बुआ की अंगूठी। बीच में बड़ा-सा नग, लाल रंग का। किनारे पर छोटे-छोटे हरे रंग के पन्ने। खिलते फूल-सी अंगूठी,

दहकते अगार-सी अँगूठी जिसे उसने उँगली में डाल लिया। उँगली में घुमाती रही, देखती रही। फिर उतार कर रख दी, वापस उसी जगह पर। इधर-उधर देखते, उसने अपनी नोटबुक निकाली, पेन निकाला और चलने को तैयार। एक बार फिर शीशे में अपने को देखा। बिन्दी कुछ ठीक से गोल नहीं थी। उसे ठीक किया। अँगूठी वहीं रखी थी। मन नहीं माना दुबारा उँगली में डाल ली। क्या हर्ज है? पहन कर चली जाये। आकर वापस कर देगी। खूब मज़ा आयेगा। राधा इसे देखकर ज़रूर कुछ न कुछ कहेगी। सोचेगी कि उसकी मँगनी हो गयी है। वह भी चुप रहेगी। हाँ भी नहीं कहेगी और इन्कार भी नहीं करेगी। राधा का भाई प्रदीप। वह तो यही कहेगी कि देखा, मैं कहता था कि लड़कियों को क्या ज़रूरत है किताबों से सर मारने की। तुम्हारे मम्मी-पापा तो इसीलिए तुम्हें पढ़ा रहे हैं कि अच्छा पति मिल जाये। बस, अब क्या है! मँगनी हो गयी, काम खत्म। क्या करना अब नोट्स उतार कर। तवा और पतीला उतारो अब'''। बहुत मजेदार बातें करता है प्रदीप। अपनी बहन राधा को तो चिढ़ाता ही है, उसे भी नहीं बख्शता। कुछ न कुछ कहता ही रहेगा।

बुआ जी नहा रही थी। मीरा माँ के पास गयी। माँ रसोई में थी।

—"माँ, यह अँगूठी पहन जाऊँ मैं?"

—"अरे हट। रख दे। तेरी बुआ की अँगूठी है। पराई चीज का क्या शौक़ करना री। जा, वहीं रख दे।"

—"मैं पूछ लूँ बुआजी से?"

और दौड़ गई वह बाथरूम की ओर।

—"माँ, माँ। मैंने बुआजी से पूछ लिया है। मैं जा रही हूँ—आ जाऊँगी चार-पाँच बजे तक।"

और अँगूठी उँगली मे डालकर मीरा चली गयी।

राधा के घर खूब अच्छा रहा। नोट्स उतारने में उसे काफ़ी समय लग गया। फिर खाना बनाया। जमकर खाया। खूब गप्पबाजी की। सुमन बहिनजी घर पर ही थी। प्रदीप बाहर गया हुआ था। दोपहर के बाद मीरा और राधा की कुछ सहेलियाँ भी आ गयी। मीरा जैसा सोच रही थी, वैसा ही हुआ। राधा तथा उसकी सहेलियों ने जब अँगूठी देखी तो उसे खूब छेड़ा, खूब जुमलेबाजी की। उसने भी नहीं बताया कि यह किस की अँगूठी है। बस, मुस्कुराती रही सहेलियों के सामने—यह तो टॉप सीक्रेट है—खुद अन्दाजा लगाओ कि क्या बात हो सकती है—अब कौन, है वह भाग्यशाली यह हम खुद कैसे बता दें'''अँगूठी का राज बताओ तो जानें।

वहरहाल, खूब ठिठोली हुई। मस्ती से गाने गाये—झूले में बैठे। शाम होते-होते वह घर चली आई।

कपड़े बदल कर वह बाहर आ गयी। माँ रसोई में थी। सोचा कि माँ का कुछ हाथ बटा दे, फिर पढ़ने बैठेगी। रसोई में आई तो पूछा—

"अँगूठी बुआ को वापस कर दी ?"

अँगूठी ? उसने हाथ की ओर देखा। अँगूठी नदारद। थोड़ी-सी ढ़ीली तो थी, लेकिन ऐसी ढ़ीली भी नही थी कि निकल जाए। वह तो बहुत सावधान थी। धक् से रह गयी। माँ ने उसका फक् पड़ता चेहरा देखा तो वह भी घबड़ा गई।

—"क्यों क्या हुआ ? कहाँ डाल आई ?"

—"कही नही माँ, उँगली में ही तो थी। कहाँ रह गई ?"

और वह दौड़ गई कमरे की तरफ जहाँ उसने अभी कपड़े बदले थे। पलंग पर देखा, बिस्तर उलट दिया, नीचे, अलमारी के नीचे, ड्रेसिंग टेबल पर, उसके नीचे, कोनों मे—सारा कमरा छान मारा। बाहर दरवाज़े से चल कर दुबारा उन्ही जगहों पर देखा, जहाँ-जहाँ वह गई थी। अँगूठी नही मिली।

—"मर जा नासपीटी। इसीलिए मना कर रही थी। मर अब। तेरी बुआ हाय-हत्या मचायेगी। जा, भाग कर जा और देख रास्ते मे, राधा के घर। जा जल्दी'''।"

मीरा बदहवासों जैसी उन्ही कपड़ों में भागी गई। सारे रास्ते आँखें गड़ा-गड़ा कर देखती रही। राधा के घर, एक-एक कमरा छान मारा। हर चीज उलट-पुलट दी। घर का सारा सामान टटोल लिया। किचन, किचन के सारे डब्बे, बर्तन, कूड़ेदान, नालियाँ। राधा के किताबों के शेल्फ-अलमारी, और तो और उसका बाथरूम-पखाना, कुछ भी तो नही बचा। अब ? अब क्या करे ? क्या करे वह ? उसके पैर काँपने लगे। कलेजा जैसे मुँह को आ रहा हो। किस मुँह से वापस लौटे। उसका दिल चाहा कि वह यही रह जाए। लेकिन कैसे ? घर तो लौटना ही था। फिर एक बार आँखों की पुतलियाँ सड़क पर चिपकाये कदम-कदम पर नापती वह घर की ओर बढने लगी। हाथ में टार्च ले ली थी। लेकिन अगूठी न मिलनी थी सो नही मिली।

घर में घुसी। पैर ठिठक गये। सामने ही बुआजी दीख गयी— उफनती, उबलती। पूरे महाभारत की तैयारी थी। भयभीत हिरनी-सी उसने अपनी नज़रें उन पर गड़ा दी। पीछे-पीछे माँ थी। तमतमाया लाल चेहरा।

—"क्यों मिल गयी ?" माँ ने लगभग चीख़ते हुए पूछा। स्पष्ट था कि माँ और बुआजी में उसके पीछे कहा-सुनी हो चुकी थी।

घोर विवशता के फन्दो में जकड़ी मीरा चुप थी। अपनी डबडबाई आँखें उसने धीरे-से नीचे झुका ली। होंठ काँप रहे थे। हे भगवान। यह धरती फटे और वह धरती मे समा जाये। यह क्या हो गया ? किस कुघड़ी में उसने अंगूठी उँगली में डाली ? क्यों डाली ? हे भगवान आज रक्षा कर लो, किसी तरह बुआ को दया

आ जाय'''।

उसे इस तरह काँपते हुए, चुप खड़े देखकर माँ समझ गयी। उसने झपट कर पास पड़ी झाड़ू उठा ली और मीरा को पीटना शुरू कर दिया।

—"नासपीटी। तभी मना किया था। मत पहन। पराई चीज। और शौक पूरा कर करमजली। देख तो ली होती कि किसकी चीज थी। खो आई अगूठी। मर नहीं गई तू भी वहीं पर'''।"

—"देखो भाभी, मुझे तो सुनाओ मत तुम। न मुझे दिखाने के लिए यह नाटक करो। मेरा गहना खो जाये और वह भी मायके में। क्या जवाब दूँगी मैं वहाँ ?"

—"कमबख्त। तेरी वजह से सुननी और न सुननी आज सब सुन ली मैंने। नुकसान कराया सो अलग। तू मर जाये तो मुझे चैन पड़े'''।"

माँ ने मानो बुआजी की बात सुनी ही न हो।

मीरा पिटती रही'''सिसकती रही'''एक बार भी उसने माँ का हाथ नहीं पकड़ा कि माँ, मत मारो। क्षोभ और अपमान ने मानो उसके शरीर को सुन्न कर दिया हो। वह होंठ भींचे हुए थी—बहुत जब्त किये थी, लेकिन रोकते-रोकते भी उसकी रुलाई फूट ही पड़ी। क्या करे वह? कहाँ जाये? बुआ, तू ही दया कर दे। मैं पैसे जोड़-जोड़ कर तुम्हारी अंगूठी के दाम वापस कर दूँगी'''जिन्दगी-भर तुम्हारी गुलामी करूँगी'''।

माँ ने झाड़ू फेंक दी थी और उसका बकना और मीरा को कोसना जारी था'''माँ भी रो रही थी। मीरा की मौत माँग रही थी'''अपनी मौत माँग रही थी। बुआ अन्दर कमरे में चली गयी। मीरा उकड़ू बैठी-घुटनों में सिर दिये, सिसक रही थी।

बाहर दरवाजा खुलने की आवाज सुनाई दी।

—"मेरी साइकिल में भी ताला लगा देना प्रमोद।" पापा की आवाज़ सुनाई दी। भय्या और पापा भी आ गये थे।

—"ऐं'''मीरा? ऐसे कैसे बैठी है? क्या हुआ? रो क्यों रही है?" पापा को देखकर उसकी रुलाई और तेज हो गयी। उसने अपना सिर घुटनों के अन्दर और ज्यादा कर लिया।

—"क्या बात हो गई भाई? बताती क्यों नहीं? कहाँ है तेरी माँ'''।"

प्रमोद एक सेकंड उसके पास खड़ा रहा। फिर पापा के पीछे-पीछे भीतर चला गया। पापा अन्दर माँ से बात कर रहे थे। माँ और बुआजी की तेज-तेज आवाजें सुनाई देने लगीं। फिर उसने सुना, पापा उसे आवाज दे रहे थे, अन्दर बुला रहे थे। नहीं, वह नहीं जायेगी उनके सामने। ऐसी ही बैठी रहेगी। जन्म ज़िन्दगी यहीं बैठी रहेगी, मुँह छिपाये।

थोड़ी देर बाद प्रमोद बाहर आया।

—"चल अन्दर। पापा बुला रहे हैं।"

उसने कोई जवाब नही दिया।

—"चलती है कि नही या लगाऊँ दो हाथ। चल भीतर। हमे सब कुछ मालूम हो गया है।" प्रमोद ने बाँह पकड़ ली।

—"छोड दो मुझे, छोड़ दो।" मीरा ने हाथ झटक दिया। इसे क्या हक है मेरे ऊपर गुस्सा दिखाने का। अपने कारनामे भूल गया'''। मीरा यह सोच ही रही थी कि प्रमोद ने गद्द से उसकी पीठ पर हाथ मारा और उसकी बाँह पकड़, लगभग घसीटता हुआ उसे कमरे के भीतर ले आया और खड़ा कर दिया।

माँ-पापा, बुआ फिर सबके सामने एक शर्मनाक पेशी। यह अग्नि-परीक्षा क्या यूँ ही अनवरत चलती रहेगी। समय किस क़दर खिचता चला जा रहा था। शर्म से डूबा यह क्षण कितना लम्बा हो रहा था।

पापा का चेहरा उतरा हुआ था। थकी आवाज़। नजरें मीरा के चेहरे पर गड़ी हुई।

—"देखो मीरा। तुमने अपनी बुआ की अंगूठी पहनी ही क्यूँ? फिर पहनी थी तो तुम्हें ध्यान रखना चाहिए था। बोलो कहाँ रह गयी अंगूठी?"

—"पापा'''पता नही पापा। मैंने जान—बूझ कर कही नही गिराई। मुझे माफ कर दो'''।" दोनों हाथ जोड़ कर मीरा सिसकने लगी। उसकी आवाज भर्रा गयी थी। उसके पैर काँपने लगे। दीवार के सहारे उसने सर टिका दिया।

—"तुमने ही बहुत सर चढ़ा रखी है भय्या। वरना इतनी बड़ी लड़की और इतनी लापरवाह? इतनी बड़ी लड़कियाँ पूरा-पूरा घर देखती है। बड़ी-बड़ी गृहस्थी चलाती हैं। हमारे वक्त तो तुमने हमे इण्टर भी रो-रो कर कराया। आज तुम्हारी अपनी लाडली कॉलिज जा रही है। दुनिया-भर के फैशन कर रही है। घूम रही है-फिर रही है। तिस पर यह हाल।"

—"क्या चाहती हो बीबी तुम। जान ले लो इसकी अगर इससे तुम्हारा कुछ बनता हो तो। दूसरी अंगूठी बनवा लो न अपने भाई साहब से कहकर।

माँ से बोले बिना न रहा गया। उसने मीरा के प्रति अपनी ननद के ईर्ष्या-भाव को हमेशा से महसूस किया था।

पापा एकदम बीच-बचाव की-सी मुद्रा में बोले—

"नही भाई, नुकसान तो हुआ ही है उपा का। फिर इस महीने में उपा जायेगी वापस। उसकी विदाई। वैसे ही इतना ख़रचा होगा। कहाँ से बनेगी अंगूठी? एक हज़ार से क्या कम लगेगा।"

—"बस यही तो बात है भय्या। भाभी को कोई मतलब नही इन सब बातों से। ख़ुद मज़े में रहती है। न सास, न ससुर। सबके बीच में रहना पड़े ससुराल में

तब मालूम हो। शादी में जो सामान दिया तुम लोगों ने उसकी जो धज्जियाँ उड़ाई वहाँ सबने कि बस। आज तक ताने सुनती हूँ। कभी खबर ली तुम लोगों ने? अबकी करवाचौथ पर भिजवा दिये दो सौ रुपये। न कपड़े, न सामान। अब यह इल्जाम और लगेगा कि मायके वालों को भरती है। मायके वालों को ज़ेवर दे आई अपने।"

—"बस करो उषा। जो कुछ भी किया। तुम्हें मालूम है सब कैसे किया गया। पिताजी क्या छोड़ गये थे; सिवा कर्ज़े के। फिर कौन हमारी रिश्वत की कमाई है? जितना हो सकता था किया। तुम इतना परेशान मत हो उषा। न हो पायेगा तो इसकी माँ का ज़ेवर बेच कर बनवा दूँगा तुम्हारी अगूठी, बस!" पापा को गुस्सा चढ़ने लगा। बुआ यह देखकर सकपका गई। बुआ ने पापा को कहीं भीतर तक आहत कर दिया था। पापा की नज़र फिर मीरा पर पड़ी जो सहमी, सिकुड़ी दीवार के सहारे खड़ी थी, एक पैर थोड़ा-सा उठाये और दीवार से टिकाये। उसके पैरों में झनझनाहट-सी हो रही थी। बिजली की लहर पूरे पैरों से होती हुई ऊपर को मानो दौड़ जाती। लेकिन पापा की आँखों से निकलती घृणा की लहर उसे फिर सुन्न करने लगी।

—"तेरे भी दिमाग बहुत खराब हो गये है। यह सब शौक अपने घर जाकर करना? जरूरत क्या थी तुझे अंगूठी पहनने की। क्या जान निकल रही थी तेरी उसके बिना?"

बुआ की खिसियाहट बढने लगी। उसे अब कुछ कहना बेहद जरूरी लगने लगा।

—"मुझे तो लगता है कही किसी को दे आई है यह। क्यो-री मीरा, कहीं किसी को प्रेजेन्ट तो नहीं कर आई तू? सोचा पराई जाय मे गोदान…।"

—"कैसी बातें करती हो बीबी! दे किसे आयेगी? अरे, लापरवाही करी, गिरा आई कहीं पर, सो भुगतेगी…।"

अपनी खिसियाहट और रोष मे परिहास का पुट लाने की कोशिश करती हुई बुआ माँ को नज़र-अन्दाज करती हुई फिर बोली—

"क्यों। उस दिन कौन छोड़ने आया था तुझे मीरा? बातें तो उससे इस तरह कर रही थी जैसे बहुत जान-पहचान हो। देखो भाभी, तुम्हे बुरा तो बहुत लगता है लेकिन तुमने छूट बहुत दे रखी है। हमे तो कभी घर से निकलने भी नही दिया मय्या ने और न कभी ऐसे सहेलियों-दोस्तो के साथ घूमने-फिरने की इजाज़त मिली। ख़ैर। हमारा तो क्या बिगड़ा। अच्छा ही रहा। अब अपनी औलाद पर नज़र रखो। आज तो अंगूठी की बात है, चली गई। कल लड़की न हाथ से निकल जाये।"

मीरा के पापा तो अपनी बहन का मुँह ताकते रह गये। इस नयी बात के

उद्‌घाटन से वह सकते में आ गये। मीरा की माँ की तरफ देखा उन्होंने। माँ का चेहरा फक् था। इससे ज्यादा अपमान और क्या हो सकता है? ननद रानी ने आज सारी कसर निकाली ली थी।

—"कौन था वह, प्रमोद की माँ? तुमने तो मुझे कभी कुछ नहीं बताया? कहाँ जाती है यह। क्यों, क्या सचमुच किसी को दे आई तू अंगूठी?"

मीरा के होश उड़ गये। उबरने की उम्मीद लग रही थी फिर किस गहराई में जा गिरी वह। बुआ किस जनम का बदला ले रही है? किसके लिए कह रही है? पापा ने इतने बड़े झूठ पर विश्वास कर लिया? तो अब याद आया। उस दिन कॉलेज में ड्रामा था। रात के नौ बज गये थे। वह प्रमोद भय्या का इन्तजार करती रही। जब सब लोग चले गये और उसे लेने के लिए कोई नहीं आया तो सुमन बहनजी ने उसे प्रदीप के साथ घर भेजा था। उन्होंने कहा था कि लड़कियों की जिम्मेदारी उनके ऊपर है और वह रात के समय उसे अकेले नहीं जाने देंगी'''।

—"पापा, बुआ ड्रामे वाले दिन की बात कह रही हैं। वह तो प्रदीप भय्या थे, राधा के और सुमन बहन जी के भाई। मुझे कॉलेज से लेने कोई नहीं आया था, इसलिए उन्हें साथ भेजा था।"

मीरा जल्दी-जल्दी अपनी सफ़ाई देती हुई रो पड़ी।

—"बुआ झूठ बोलती है पापा'''बुआ से मना कर दीजिए'''।" मीरा की आवाज़ बिखरने लगी।

—"चुप रह। वह झूठ बोलती है और तू सच बोलती है।" मीरा के पापा को लगा कि अभी उषा फिर न जाने क्या-क्या बोलने लगेगी। परत-दर-परत नंगा करेगी सबको।

—"कमबख़्त, तू पहन कर गई ही क्यूँ थी। फिर कहाँ गिरा आई—किसे दे आई, बोल!"

पापा को गुस्सा होते देखा तो प्रमोद भी शेर।

—"बोलती है कि नहीं या लगाऊँ दो हाथ।"

—"तुम जाओ प्रमोद। तुम्हें वर्माजी के पास पहुँचना है। चलो।" पापा ने सख़्त लहजे में कहा तो प्रमोद भुनभुनाता तेज-तेज पैर रखता हुआ बाहर चला गया। मीरा की हिचकियाँ तेज हो गईं। किससे दया की उम्मीद करे? पापा थे जो बचा सकते थे, वह भी गुस्सा हो गये।

उसके पापा का दिमाग भन्ना रहा था। उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था। उषा के मन में क्या-क्या भरा है। उन्हें आज मालूम हुआ। वह कहीं बहुत भीतर तक आहत हो गये थे। इस महीने उषा की विदाई भी करनी थी। यूँ ही एक बड़ा ख़र्चा था, तिस पर यह नुकसान और भरो। क्या पता, ठीक ही कहती

हो वह। लड़कपन में मीरा किसी को अँगूठी दे ही आई हो। यह उम्र ही ऐसी होती है। कहानी-उपन्यास पढ़-पढ़ कर और सिनेमा देख कर यही सब तो सीखते हैं ये लोग। उषा ठीक कह सकती है। ये सब आजकल के लड़के-लड़कियों की बातें···हम लोग क्या जानें। वर्ना ऐसे कहाँ गिर जाती अंगूठी? लेकिन मीरा से यह उम्मीद तो नहीं थी। ठीक कहती है उषा कि लड़की कहीं हाथ से न निकल जाये।

—"नहीं पापा नहीं, किसी को नहीं दी मैंने। पापा···मेरी बात मान लो, पापा···।"

बुआ ने एक नज़र अपनी भाभी पर डाली। क्या था उन आँखों में। चुनौती? नहीं साँप की तरह लहराती हँसी···माँ तड़प कर रह गयी।

उधर मीरा बिलख रही थी। पापा के पैर पकड़े हुए थी।

—"पापा···मेरा विश्वास कीजिए पापा···किसी को कुछ नहीं दिया मैंने··· अबकी बार माफ़ कर दो पा···पा···फिर कभी नहीं पहनूँगी···कभी कुछ नहीं पहनूँगी···पा···पा।"

ज़िबह किये जा रहे जानवर की तरह डकरा रही थी मीरा। उसकी जवानी के रंग-उसकी उमंगें क़हर बन कर उस पर टूट रही थीं। पापा···उसकी आखिरी उम्मीद, हरहराते विशाल समुद्र में धकेल दी गयी। मीरा के हाथों का आखिरी सहारा···और यह सहारा भी उसके उसके हाथों से फिसल रहा था।

"नहीं मीरा। तुम्हें अंगूठी लेकर आना है। जाओ, वापस लेकर आओ···।"

डूबती-उतराती मीरा को वह बर्फ़ीली सर्द आवाज भीतर तक चीरती चली गयी।

—"जब तक अंगूठी न मिले, घर वापस मत आना, जाओ···।" और अचानक एक विस्फोट मौत की घाटी के गुमसुम सन्नाटे को भेदते हुए उसके पापा अचानक अपनी पूरी ताकत के साथ चीख़ पड़े।

"जाओ···चली जाओ···।" ऐसा लगा मानो उन्हें दौरा पड़ गया हो।

पापा की अप्रत्याशित चीख़ सुन कर मीरा ही नहीं, माँ और बुआ भी काँप उठीं। बुआ उठकर दूसरे कमरे में चली गयी। मीरा का रोना एकदम बन्द हो गया। जड़ हो गयी वह। उसकी आँखें खुली जरूर थी लेकिन आस-पास, माँ पापा के चेहरे धुँधलाते जा रहे थे। दिमाग धीरे-धीरे सुन्न हो रहा था, मानो बेहोशी का इंजेक्शन दे दिया गया हो। पापा की आवाज अब अधिक डरावनी नहीं लग रही थी। शेष रही चेतना की किसी अनजानी सतह पर, नन्हीं-सी ख़ूबसूरत आशा की परी अपने पंख फैलाये उड़ती हुई उसे दिखाई देने लगी थी। हँसती हुई उसके समाने हथेली फैलाए, हथेली पर लाल दप-दप करती अगूठी···"हम तुम्हारी परीक्षा ले रहे थे मीरा रानी···लो, यही है तुम्हारी अंगूठी···बचपन में

खेला हुआ एक ड्रामा…हाँ, ड्रामा ही तो…लेकिन यह ड्रामा कब ख़त्म होगा ? बहुत हो गया उसे नींद-सी आ रही थी।

और मीरा ने महसूस किया था कि उसके पापा ने उसका हाथ पकड़ कर उसे दरवाज़े से बाहर कर दिया है। एकदम ख़ामोश, नीम बेहोशी की हालत में मुब्तिला मीरा की नजर अपनी माँ पर पड़ी या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता, जो होंठ भींचे खड़ी थी और अपने पल्लू से आँखें पोंछ रही थी। दिमाग के साथ-साथ मीरा के कान भी सुन्न हो गये थे। जोर-से बन्द हुए दरवाज़े को वह फटी-फटी आँखों से कुछ देर तक देखती रही और फिर धीरे-धीरे दरवाज़े के सहारे, बाहर देहरी पर ही बैठ गई थी।

# नंदनी का पर्स

●

अशोक शुक्ल

बाजार बाजा हो रहा है। लड़कियों और औरतों की भीड़। मोटरों के हॉर्न। साइकिल रिक्शों की घंटियाँ। पेट्रोल वाहनों की घरघराहटें। लोगों की चिल्लाहटें। फेरी वालों की आवाजें लड़कियों-औरतों का बतियाना।

इस माहौल में उसे साइकिल खींचना रोज के मुकाबले कठिन लगता है। पैडल पाँवों के प्रति दुष्टतापूर्ण रवैया अपनाते हैं। हाथों का ब्रेक के प्रति लगाव अपेक्षाकृत अधिक हो रहा है।

ट्रैफ़िक के सिपाहियों की सीटियाँ वाहनों के शोर में अपनी अलग पहचान बनाने में प्रयासरत हैं। राखी की दूकानों पर औरतें प्रसन्न नजर आ रही हैं। औरतों की प्रसन्नता का राज उनका दड़बेनुमा घरों से बाहर निकलना है, जो कि उनकी जिन्दगी के रोजमर्रे का हिस्सा नहीं है।

उसे बहुत-सी परेशानियाँ हैं। इनमें माँ है। पत्नी है। बच्चे हैं। बहन नन्दनी है। घर है। लकड़ियाँ हैं। साइकिल का टूटा पैडल है। चप्पल की उखड़ गई पट्टी है। मुन्ने की 'बाल भारती' है। पत्नी का रजस्राव है। मिश्राजी की उधारी है। ऑफ़िस की फाइल है। किराने की दूकान है। तीन-चार जगहों से फट चुकी पतलून है। ब्लेड के अभाव में चार-पाँच दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी-मूँछें हैं। महीनों से तेल न मिल पाने के कारण चटर-पटर चूँ-चूँ कर रही साइकिल है। साइकिल को खींचती हुई दर्द कर रही जाँघें भी उसकी परेशानी में शामिल हैं।

पैदल टहलते हुए दो खाते-पीते बड़े आदमी साइकिल की सीट, अंडकोष की रगड़, नपुंसकता, मकरध्वज रसायन, शिलाजीत वटी, जिन्दगी के मजे के बारे में बतियाते हैं। वह जब इनके पास से गुजरा तो उसके कानों में ये बातें पड़ीं और इस तरह से गुजर गईं कि नपुंसकता जैसे शब्द से इसका कोई लेना-देना न हो।

राखी बाजार से गुजरने के बाद उसकी साइकिल के चक्के लगातार घूमने के लिए पहले के मुकाबले अधिक आजाद हो गये। साइकिल के ब्रेक को कष्ट में पड़ने के कम मौके आने लगे।

वह इस समय अपनी बहन नदनी के बारे में सोचने लगा। अपनी एकमात्र युवा अविवाहित चौबीस वर्षीय बहन।

घर का अंधियारा रोज की तरह उसके इन्तजार मे खामोशी से पसरा हुआ था। परछी मे साइकिल टिकाने की खडखडाहट की प्रतिक्रिया स्वरूप उसकी उदास और थकी हुई पत्नी ने कमरे से परछी मे झांका। वह पत्नी के कुछ कहने का इंतजार किये बगैर ही कमीज की मैली बाँहो से चेहरे का चिपचिपा बरसाती पसीना पोंछने लगा। "नदनी सो गई क्या ?" सब्जी-रोटी खाकर हाथ धोते हुए उसने पत्नी से पूछा। रास्ते में वह नदनी के बारे में सोच रहा था, यही कारण था इस प्रश्न के एकाएक उसके मुंह से निकलने का। अन्यथा इस समय इस प्रश्न की कोई तुक नही थी।

पत्नी के चेहरे पर आये हुए घृणा के भाव देखकर उसे महसूस हो गया कि नंदनी के बारे में आगे बात करने का सीधा मतलब यह है कि पत्नी के मुंह से नंदनी के लिए भैंस, घोड़ी, कुतिया या अन्य पर्यायवाची शब्द निकलवाना।

वह चुपचाप हाथ धोकर बिस्तर पर लेट गया। पत्नी जब ख़र्राटे लेने लगी तब उसका ध्यान अन्दर के कमरे में सो रही नंदनी की बर्राहट पर गया। वह धीमे से उठा और नन्दनी की खाट के पास पहुँच गया।

उसने ध्यान से नंदनी को देखा। नदनी के बाल काफ़ी दिनों से तेल साबुन के सम्पर्क में न आने से सूखे और मैले नजर आ रहे थे। आँख के नीचे काले गड्ढे झांक रहे थे। मैली-कुचैली साड़ी उसके बदन को ढांकने का भार सम्भाल रही थी। जो कि तीन-चार जगहो से फट जाने के बाद भी थिगड़ो के सहारे अभी तक साड़ी की संज्ञा पाने का गौरव प्राप्त कर रही थी। उसके हाथों की हरकत और चूड़ियों की खनखनाहट का कोई सम्बन्ध नही था, न ही वह गले में कुछ पहने हुई थी। उसके पैर गन्दे और मैले थे। उनमें जगह-जगह गहरी बिवाइयां फटी थी। इनके बीच में ढेर-सा काला मैल घर कर चुका था। नाख़ून बेतरतीब बढ़े थे। चेहरे पर सूखे हुए पसीने की तह थी। उसकी खाट के नीचे प्लास्टिक की लाल कटी-फटी चप्पलें थी। उसके सिरहाने पर जगह-जगह से फटा हुआ बदरंग लेडीज पर्स था। जिसके बन्द होने के बावजूद अन्दर के काग़ज बाहर झांक रहे थे। नंदनी की खाट पर सिर्फ़ चादर बिछी हुई थी। उसके ओढ़ने की चादर अस्त-व्यस्त हो गयी थी। उसके मुंह से लार चू रही थी। उम्र से कहीं अधिक दिखने वाली नंदनी का चेहरा इस समय किसी सोये हुए बच्चे की नीद की याद दिला रहा था। उसके थके हुए चेहरे पर मुस्कराहट-सी उभर रही थी।

सोती हुई नदनी के चेहरे की मुस्कराहट की घटना को देखकर उसने अनुमान किया कि वह इस समय कोई सुन्दर सपना देख रही है।

उसने नंदनी के पर्स को सिरहाने से उठा लिया। यह उसकी काफ़ी पुरानी आदत है। बहन के जीवन के राज उसे अक्सर उसके पर्स में मिल जाया करते हैं।

पर्स के कागजों में ऑफिसों के पते थे। शिक्षिका, नर्स, प्रशिक्षण, लिपिक आदि पदों के आवेदन पत्र थे। 'चाहिये हैं' कालम की अख़बारी कतरनें थीं।

नदनी के नीद मे मुस्कराने के पीछे इन आवेदन पत्रों के भविष्य से सम्बन्धित आशाप्रद स्वप्न हो सकते हैं। यह उसका अनुमान था।

तब नदनी इच्छाओं के विस्तृत आकाश में उड़ा करती थी। सड़क पर दौड़ती तो दौड़ती ही जाती। उसे लगता प्रकृति का सारा ताम-झाम उसी के लिए है। सारा आकाश। सारी धरती। सारी सड़कें। सड़क से गुज़रने वाली तमाम गाड़ियाँ। तमाम साइकिल सवार। तमाम पद-यात्री। तमाम फल ठेले वाले। फेरी वाले। स्कूल जाते हुए बच्चे। घर से थोड़ी दूर से गुज़रने वाली रेल लाइन और उससे गुजरने वाली सब रेल गाडियाँ। यहाँ तक कि हथकड़ी पहने जेल, अदालत अथवा पुलिस स्टेशन जाते हुए लोग भी। आकाश से गुज़रने वाले वायुयान के प्रति भी वह उत्साहित हुआ करती थी।

नदनी को इस बात की चिन्ता कतई नहीं हुआ करती थी कि नाक से बहते जुकाम का स्राव उसके होठों तक आ गया है। सिर पर रेत और मिट्टी अपने अड्डे जमा रहे हैं। मैल कपड़ो से अपनी दोस्ती गाँठ रहा है। नाख़ून पिता के चेहरे पर खरोंचों के निशान बनाने के लिए एक बार फिर से तैयार हो चुके हैं। पहली बरसात का पानी उसके सिर पर जूँ की लामबन्द कतार लगा देगा या कि बरसात मे सड़क पर दौड़कर भीगते रहना डबल न्यूमोनिया के लिए खुला आमन्त्रण है। पिता के साथ साइकिल पर बैठकर बाजार से लौटने के बाद जब वह घर के दरवाज़े पर पिता की मजबूत बाँहों के सहारे जमीन पर पैर टिकाती तो उसके चेहरे का गर्वीला भाव युद्ध-विजेताओं को कुंठित कर सकने की तादाद का होता।

तब नंदनी जीती-जागती स्वच्छंद कविता थी। फ्रॉक की जेबें पाँच पैसे के दो-एक सिक्कों, धूल के कणों, रंगीन चूड़ी के टुकड़ों और काँच की गोलियों से भरी रहती। पिता रिटायर साईकिल खड़खड़ाते हुए जब स्कूल से लौटकर घर के दरवाज़े पर उतरता तब नंदनी केरियर में फँसी पुस्तकें अपने नन्हे-नन्हे हाथों से निकालने की असफल कोशिश करती। वह उसे अपने कंधे पर बैठा लेता और उसके हाथों मे पुस्तकें थमा देता। नदनी अपने हाथों में भैया की किताब लिए बड़ी शान से घर में दाखिल होती।

फुर्सत और आराम के क्षणों मे उसकी खुली हुई छाती बहन का बिस्तर थी।

उसकी नाक के छेद बहन की अंगुलियों के लिए गहराई नापने के यंत्र थे। उसके सिर और छाती के बालों से नंदनी अपनी कलाई की ताकत नापा करती।

तमाम आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद पिता अपने एकमात्र पुत्र रविशंकर को आगे पढ़ाने में प्रयासरत थे। कॉलेज के दिनों में रविशंकर पढ़ाई के साथ-साथ सिनेमा देखता। अभिनेताओं के चित्र अपने कमरे में लगाता। दो जोड़ी कपड़ों को बदल-बदल कर पहनता। आधा घंटे तक बाल सवारता। चेहरे पर नींबू मलता। ठंड के दिनों में पुरानी फटी हुई शर्टों को आराम से ऊनी बनियान के नीचे पहन लेता। पुराने विदेशी वस्त्रों को खरीद उन्हें अपने नाप का बनवा कर अच्छे कपड़े पहनने का सुख अर्जित करता। दोस्तों के साथ घूमता। शाम को भी धूप का चश्मा चढ़ाता। मुहल्ले तथा आस-पास की जवान लड़कियों की निगरानी रखता। उनमें से एक-दो को तो पीछा करते हुए उनके घर तक छोड़ आने का दायित्व भी निभाता। दोस्तों के बीच लड़कियों की चर्चा करता। चालू कही जाने वाली लड़कियों के जवान भाइयों की बहादुरी की खिल्ली उड़ाता और ख़ुद के घर की ऐसी किसी संभावना पर कहता—"हमारे घर की लड़कियाँ अगर ऐसी हो जायें तो हम उन्हें जमीन में गाड़ दें।"

घर की माली हालत ऐसी चीज थी जो रविशंकर को कभी-कभी दुखी बना दिया करती थी।

इधर नंदनी के जवान होने की प्रक्रिया प्रारम्भ होने लगी थी। कमरे में झुक-कर झाड़ू लगाते हुए जब फ्रॉक के खुले गले से उसकी छाती दिखती तो वह परेशान हो जाता। तब वह माँ से नंदनी के फटे हुए कपड़ों के बारे में बात करता। वह महसूस करता कि नंदनी को ढीले और बदन ढकने वाले कपड़े पहनना चाहिए।

उसने महसूस किया कि उसके घर के सामने से गुजरने वाले लड़कों की संख्या बढ़ गई है। इन लड़कों की दृष्टियाँ उसके घर के दरवाजे को भेदती हुई गुजरती थीं। घर में दोस्तों का आना-जाना भी बढ़ रहा है। वह अब इस बात के लिए सचेत हो गया है कि किन लोगों को घर तक लाना है और किन लोगों को घर के बाहर से ही फुटाना है। घर आया कोई दोस्त जब बाहर के कमरे में बैठता तो वह दोस्त की नजर को ताड़ता और अन्दर वाले कमरे के दरवाजे पर लगे हुए परदे की ओर ध्यान देता। अगर परदा थोड़ा भी खुला दिखता तो वह तुरन्त ही सचेत होकर उसको पूरी तरह बन्द कर देता।

कभी-कभी खीझ कर वह यहाँ तक सोच लेता कि घर में एक समय में या तो बहन रहे या दोस्त। जब कोई दोस्त पानी की माँग करता तो वह परेशान हो जाता। दोस्त भी क्या करे, पानी कोई चाय तो नहीं है जिसके माँगने में संकोच किया जा सके। इस समय वह तुरन्त ही पानी लेने तेजी से अन्दर दौड़ पड़ता।

उसे लगता कि कहीं नंदनी ही पानी का गिलास लेकर बाहर न आ जाये।

नंदनी का हँसना। जोर से बोलना। बर्तन खड़खड़ाना। फ़िल्मी गाने गुनगुनाना। चेहरे पर पाऊडर लगाना। सिनेमा जाना। दरवाजे पर खड़े होना। बाजार जाना। धूप में बाल सुखाना। चमकीले कपड़े पहनना। अभिनेताओं की चर्चा करना। थोड़ा मटक कर चलना। सहेलियों के घर जाना। मुहल्ले के किसी बच्चे का चुंबन लेना। उसके किसी दोस्त के बारे में अपनी थोड़ी-सी भी रुचि प्रकट करना। सस्ते रूमानी उपन्यास पढ़ना। एक्स्ट्रा क्लास जाना। यहाँ तक कि उसका चटख़ारे लेकर खटाई खाना भी उसे असामान्य बना देता। जवान क्वांरी बहन और घर की इज्जत बार-बार उसके दिमाग़ में घूमती।

मरने के पहले पिता की सार्वभौमिक सत्य इच्छाओं में से कुछ इच्छायें पूरी हो गईं। ये थी पुत्र रविशंकर की नौकरी लग जाना। घर में पुत्रवधू का आ जाना और पोते को गोद में खिलाना। पुत्री नंदनी की शादी अपने जीते-जी कर देने की उनकी इच्छा चिता के साथ ही भस्म हो गई। वह नंदनी की जिम्मेदारी रविशंकर पर छोड़ गये।

नंदनी अब उस पर आश्रित हो गई थी। पिता की मृत्यु के बाद उसने धीमे-धीमे महसूस किया कि नंदनी सिनेमा देखने की ललक ज़ाहिर नहीं करती। बाजार नहीं जाती। पाऊडर नहीं लगाती। धूप में बाल नहीं सुखाती। गाने नहीं गुनगुनाती। सहेलियों के संग हँसी-ठट्ठा नहीं करती। किसी से रूठती भी नहीं है और न ही किसी से कोई फ़र्माइश करती है।

जो मिल जाये वही पहनती-खाती है। भाभी की भुन-भुन सुनती है। खाना बनाती है। झाड़ू लगाती है। उसके बच्चे को खिलाती है। कपड़े धोती है। सबके खाने के बाद खाती है। हमेशा घर में ही रहती है। उसके आगे डरी-डरी सहमी-सहमी रहती है।

अच्छे चरित्र वाली लड़कियों का जो ख़ाका उसके दिमाग़ में था, नंदनी उस पर पूरी तरह खरी उतर रही थी। इतनी शरीफ बहन पर उसे गर्व था।

अपने अच्छे चरित्र वाली बहन के लिए सजातीय योग्य वर की तलाश उसका उद्देश्य था। वह शाम को ऑफिस से घर लौटने के बाद अपने जान-पहचान के सजातीय बंधुओं के पास पहुँचता। वहाँ विवाह योग्य सजातीय वरों की चर्चा होती। उनके घर, ख़ानदान, जमीन-जायदाद, नौकरी-पेशा आदि की बातें होतीं।

उसकी डायरी विवाह योग्य वर और उनसे सम्बन्धित जानकारियों से भरने लगी। उसके बैग में जन्म कुंडलियों का जमावड़ा होने लगा। बाहर के रिश्तेदारों से बहन के सम्बन्ध में नियमित पत्राचार होने लगा। बहन की जन्म कुंडली की ढेर-सी प्रतियाँ बनाकर वह यहाँ-वहाँ भेजने लगा। कुंडली मिलान के लिए पंडितों की देहली नापने लगा। वह अक़्सर रात को थका-मादा घर लौटता।

कभी-कभी लड़कों की ख़बर मिलने पर वह अपने शहर से बाहर दूसरे गाँवों, कस्बों और शहरों में भी जाता।

इस दौरान लड़की देखने वाले उसके घर भी आते। वह, उसकी पत्नी और बहन सुबह से घर साफ करते। वह झोला लेकर बाजार जाता नमकीन, मिठाई लाता। पड़ोसियों के यहाँ से कप-प्लेट, मेज-पोश, परदे, स्टील के बर्तन आदि सामान माँग लाता। कभी-कभी पड़ोसियों की भुनभुनाहट और 'न' भी सुनता।

इस तरह के मेहमानों के आने पर उसके और उसकी पत्नी की कमर के पृष्ठभाग के बीचों-बीच दुम उग आती और वे दोनों उसे हिला-हिला कर मेहमानों के आगे-पीछे होते। जब वे हँसते तो वह भी हँसता। जब वे अमेरिका को गाली देते तो वह भी देता। जब वे रूस की ओर भौंकते तो वह भी भौंकने लगता। जब वे शराबियों-कबाबियों के लिए घृणा प्रकट करते तो वह भी करता।

जब वह 'लीजिये, लीजिये, एक बरफ़ी और लीजिये, अरे, नमकीन तो आपने लिया ही नहीं।' कह रहा होता तब परदे के पीछे से उसके बच्चे मिठाई की प्लेटों को देखते। पत्नी बच्चों का हाथ खींचती और उन्हें अन्दर वाले कमरे में ढकेल देती।

कमरे में चाय की तश्तरी लेकर नंदनी के आते ही एक क्षण को चुप्पी-सी छा जाती। सबकी निगाहें नंदनी को भेदने लगतीं। नंदनी इस समय पत्नी या पड़ोसिन की नई साड़ी पहने होती। उसके चेहरे पर दूसरों द्वारा थोपे हुए सौन्दर्य प्रसाधन होते।

वे लोग नंदनी से तरह-तरह के सवाल पूछते। पत्नी उन्हें चादरों और मेज-पोशों की कढ़ाई दिखलाकर यह बतलाती कि ये सब नंदनी द्वारा की हुई हैं। वह नंदनी के सीधे-सादे शर्मीले होने की बात करती।

नंदनी के अन्दर के कमरे में जाते ही वे फुसफसाते'''संकल्प। लेन-देन। स्कूटर। दस हज़ार। अच्छा स्वागत। लड़के की पढ़ाई का ख़र्चा। लड़के की बहन की शादी का ख़र्चा। फिर वे हः हः हः करते। वह हैसियत-हैसियत करता।

वे बात को लड़के के मामा-चाचा-ताऊ-जीजा-जिज्जी पर छोड़ देते। चलते-चलते पत्र लिखकर सूचित करने की बात करते। वह जीभ बाहर निकालते हुए पालतू झबरे कुत्ते की तरह दुम हिलाते हुए उन्हें दरवाजे तक छोड़ आता।

उनके जाते ही वह, उनकी पत्नी और बहन जूठी प्लेटें उठाते। बच्चे उन प्लेटों में बची हुई मिठाई को ललचाई नजरों से देखते। पत्नी यह कहते हुए बरफी का टुकड़ा प्लेट में उठाकर बच्चे को थमा देती—"अरे इसे तो उन्होंने हाथ तक नहीं लगाया।"

ऐसे ही एक दृश्य के बाद नंदनी बिफर पड़ी। सारे गुस्से, अपमान का

जमावड़ा एक साथ फूट पड़ा। वह चीख़ कर बोली—"भैया अब मैं यह नाटक बर्दाश्त नही करूँगी। नही करनी मुझे शादी।"

अगर कही साल-भर पहले नंदनी इस तरह बोली होती तो वह दो-चार झापड़ मारता और बाल पकड़कर खीचते हुए एकाध गाली दे देता। चिल्ला कर यह भी कहता—"हरामज़ादी, यह सब तेरे भले के लिए ही तो कर रहा हूँ। और तुझे गुर्राहट सूझ रही है।"

आज अपनी सीधी-सादी बहन के चिल्लाने पर उसकी आँखें फैल कर रह गईं। झापड़ मारने को उठा हाथ वापस खिंच गया। "आज पिताजी होते तो यह सब न होता।" वह पराजित-सा बोला।

"यही होता—यही होता," कहती हुई नंदनी रोने लगी। देर तक नंदनी की सिसकियां हवा मे तैरती रहीं। वह और उसकी पत्नी दूसरे कमरे में ख़ामोश बैठ रहे।

इस घटना के बाद भी यही क्रम चलता रहा। नदनी अनिच्छा से इस नाटक में शामिल होती रही।

इधर कुछ दिनो से वह अपने में कुछ बदलाव महसूस करने लगा। बिना कुडली मिलान के विवाह होना। किसी लड़की का लड़के के साथ भाग जाना। दो प्रेमी-प्रेमिकाओ द्वारा अदालत मे शादी कर लेना। अतंर्जातीय विवाह हो जाना। किसी लडके का लड़की के साथ प्रेम करना। पहले जहाँ ये तमाम घटनाएं उसमें घृणा का भाव कर देती थी और इस बात के लिए चिन्तित कर देती थी कि यह समाज कही पाताल की ओर न खिसक जाये। लेकिन अब वह ऐसी घटनाओ के प्रति प्रसन्नता और उत्साह का भाव रखने लगा। अख़बार में छपी ऐसी घटनाओं को वह ज़ोर-ज़ोर से पढता और पत्नी को सुनाता। नंदनी भी इस समय पत्नी के आस-पास बैठी हुई होती। घर आये हुए मित्रों से वह ऐसी घटनाओं पर चर्चा छेड़ता और फिर इसके पक्ष में अपने तर्क रखता। नंदनी के किसी लड़के के साथ प्रेम-विवाह कर लेने की कल्पना उसे सुखद लगती।

फिर वह समय आया जब उसे नंदनी के पर्स में लाल-पीली-नीली-हरी आदि अनेक रगो की बिंदियाँ दिखाई दी। सुगंधित रूमाल दिखे। सौन्दर्य प्रसाधन के और भी अनेक सामान दिखे।

उसे घर मे दोस्तों का आना अच्छा लगने लगा। बहन का दोस्तों को चाय पिलाना, उनके बारे में बातें करना भी उसे अच्छा लगने लगा।

यह वह समय था जब नंदनी नहाती तो नहाती ही रहती। गुनगुनाती तो गुनगुनाती ही रहती। खिलखिलाती तो देर तक खिलखिलाती रहती।

इस समय मुहल्ले वाले नंदनी के आवश्यकता से अधिक जवानी प्रदर्शन की फ़ुसफुसाहट कर अपना दायित्व निर्वाह कर रहे थे। उन्हें नदनी का बनना-ठनना,

इठलाना अखरने लगा था। वह, खुद नंदनी द्वारा अपना वर ढूँढ लेने की कल्पना कर अपने को दुखी महसूस नही कर रहा था।

उसे अधिक इंतज़ार नही करना पड़ा। जल्दी ही उसे नंदनी के पर्स में घनश्याम नाम के किसी लड़के के प्रेम-पत्र मिलने लगे। इन प्रेम-पत्रों मे घनश्याम द्वारा नंदनी से शीघ्र विवाह कर लेने का वादा भी उसे पढने को मिला। और तो और नंदनी के पर्स मे गर्भ निरोधक गोलियों के पैकेट भी मिले।

नंदनी इस समय पूरी तरह व्यक्तिगत जिन्दगी जी रही थी। वह नंदनी के किसी कार्य में दख़ल नही दे रहा था। उसमे यह साहस भी पैदा नही हो रहा था कि वह नंदनी से उसकी व्यक्तिगत जिन्दगी के बारे मे उत्सुकता ज़ाहिर करे। वह मन-ही-मन नंदनी और घनश्याम की शादी की घटना की कल्पना कर अपने अन्दर शांति महसूस कर रहा था।

कुछ ही दिनों बाद उसे नंदनी बेहद उदास और गुस्से से भरी हुई दिखी। इस समय उसे नंदनी के पर्स में घनश्याम का एक पत्र मिला जिसमें उसने अपनी मजबूरियां जाहिर करते हुए लिखा था कि हम इस जन्म मे न मिल सके तो क्या हुआ, अगले जन्म में जरूर मिलेंगे।

फिर नंदनी गुमसुम रहने लगी। वह प्लास्टिक की टूटी चप्पलें, मैली-कुचैली साड़ी और रूखे बालों वाली वेश-भूषा मे सुबह से ही घर से निकल जाती और क्या करती है? शाम को थकी-हारी घर लौट आती। चाहते हुए भी वह कभी नंदनी से यह पूछने का साहस नही जुटा पाया कि वह दिन-भर कहाँ रहती है?

आज नंदनी के पर्स में नौकरी के लिए आवेदन पत्रो के पुलिन्दे देखकर उसे नंदनी के दिन-भर घर से बाहर रहने और सूखे पसीने तथा चेहरे पर धूल चिपटे रहने का कारण समझ में आ गया।

थकान के कारण गहरी नींद में सोई हुई नंदनी ने ओढ़ी हुई चादर को अस्त-व्यस्त कर दिया था। उसने चादर को सलीके से नंदनी को उढ़ा दिया। उसकी आँखें नंदनी के धूल भरे चेहरे पर ठहर गई। उसने नंदनी के प्रति गहरी आत्मीयता महसूस की। यह आत्मीयता उसके सूखे पपड़ियाये होंठों को नंदनी के झलकते हुए माथे तक ले गई।

इसके बाद वह अपने बिस्तर पर पहुँच गया। यहाँ वह जब तक जागता रहा नंदनी के बारे में सोचता रहा।

दूसरे दिन जब रोज की तरह नंदनी पर्स लेकर घर से बाहर निकलने लगी तो उसने अप्रत्याशित रूप मे उसे रोका।

—"क्या बात है भैया?"

—"तुम नौकरी करना चाहती हो क्या?"

—"हाँ, भैया।"

—"तो मुझे क्यों नहीं बताया। मैं भी कोशिश करता।"

नंदनी चुप रही लेकिन उसके चेहरे पर आया सुखद आश्चर्य उसे दिख गया।

फिर वह देर तक नदनी से नौकरियों के बारे में बतियाता रहा।

नंदनी जब जाने लगी तो उसने कुछ रुपये उसके हाथ पर रख दिये। बाद में वह नदनी को जाता हुआ देखता रहा। उसकी चाल मे उसे उत्साह दिखाई दे रहा था।

# चयन-मंडल

## असमी

**वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य** : जन्म—अक्तूबर, 1924, असम के पूर्वी अंचल के ढेकिया खोवा ग्राम के निकट।

शिक्षा—बी० एस-सी०, एम० ए०। 'असमिया साहित्य में परिहास और व्यंग्य' शोध-प्रबन्ध पर गुवाहाटी विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट। प्रख्यात पत्रकार एवं मूर्द्धन्य लेखक।

सम्प्रति—गुवाहाटी विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के प्रोफ़ेसर।

प्रकाशित रचनाएँ—लगभग 20 उपन्यास, 2 कहानी-संग्रह तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 100 कहानियाँ एवं लगभग 150 कविताएं। रूपक, यात्रावृत्त और निबन्ध भी। 'इयारूइंगम' उपन्यास 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' (1961) एवं 'मृत्युंजय' 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' (1979) से सम्मानित।

पता—खारगुली, गोहाटी-871004 (असम)

## उड़िया

**डॉ० सीताकांत महापात्र** : जन्म—1937, महांगा (उड़ीसा) में। मातृभाषा उड़िया किन्तु संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, अंग्रेजी एवं फ्रेंच के अधिकारी जानकार।

सम्प्रति—आयुक्त, आदिवासी विकास (उड़ीसा सरकार)। अनेक साहित्य संस्थानों से सम्बद्ध। साहित्य अकादमी पुरस्कार, कुमारन् आसन अवार्ड सोवियत लैण्ड नेहरू

पुरस्कार और राज्य साहित्य अकादमी पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक बार विदेश यात्रा।

प्रकाशित रचनाएं—उड़िया में 12 एवं अंग्रेज़ी में 25। आदिवासी कविताओं की 7 चयनिकाओं का स-पादन। रचनाएँ अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में अनूदित। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय काव्य-चयनिकाओं मे कविताएँ।

पता—क्वार्टर नं० 1, टाइप-8 यूनिट-1, भुवनेश्वर (उड़ीसा)

## उर्दू

**राज नारायण 'राज'** : जन्म-ज़ोरालाई (बलूचिस्तान) 1930। प्रारम्भिक शिक्षा—कोइटा मे पाई। 1950 मे दिल्ली विश्वविद्यालय से एम० ए० उर्दू में विशिष्टता के साथ किया। शुरू में कहानी-लेखन किया बाद मे शायरी करने लगे। आलोचनात्मक लेख भी प्रकाशित हुए। आपने कुल मिलाकर 9 पुस्तको का लेखन, सम्पादन, अनुवाद किया है, जिनमे कविताओं के दो संग्रह 'चाँदनी आसाढ़ की' (1967) और 'सब्ज़त लफ़्ज़ों की' (1977) शामिल हैं। शुरू से ही पत्रकारिता से जुड़े रहे हैं, विभिन्न सरकारी पदों पर काम किया है। 1981 मे सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग की पत्रिका 'आजकल' (उर्दू) के सम्पादक। अपने लेखन और अनुवाद के लिए उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल उर्दू अकादमियों के पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं।

पता--29/30, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-110008

## कन्नड़

**बी० आर० नारायण** : जन्म—1928, बंगलोर में।

शिक्षा—दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए०। मातृभाषा कन्नड़। व्यवसाय—सरकारी नौकरी।

प्रकाशित रचनाएँ—कन्नड के अधिकतर शीर्ष लेखकों का हिन्दी पाठकों से परिचय करवाने मे सक्रिय भूमिका।

28 पुस्तकों का कन्नड़ से हिन्दी अनुवाद। गिरीश कर्नाड के नाटक 'ययाति' के हिन्दी अनुवाद पर 1981 में भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता का 5000 रु० का पुरस्कार। ये पुरस्कार भी।

पता—15ए/25, डब्ल्यू० ई० ए०, करोल बाग, नयी दिल्ली-5

## कश्मीरी

**हरिकृष्ण कौल :** जन्म—22 जुलाई, 1934, श्रीनगर में। पिता—पं० वासुदेव कौल। कश्मीर विश्वविद्यालय से एम० फिल०।

प्रकाशित रचनाएं—कश्मीरी में पहला कहानी-संग्रह 'पतझ लारान पवंच' (1972) में। अन्य रचनाएँ—'हालस छू रोतुल' (कहानी-संग्रह) और 'नाटुक करिव बंद' (नाटक)। कश्मीरी के साथ-साथ हिन्दी में भी लेखन। हिन्दी में अब तक तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित—'इस हम्माम में', 'टोकरी भर धूप' और 'अरथी'।

सम्प्रति—गवर्नमेंट कॉलेज फ़ॉर वीमेन्स, श्रीनगर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष।

पता—काठलेश्वर, ज़ैन्दार मुहल्ला, श्रीनगर-190001

## गुजराती

**गुलाबदास ब्रोकर :** जन्म—20 सितम्बर, 1909, पोरबन्दर (सौराष्ट्र) में। शिक्षा—पोरबन्दर और बम्बई में; एलफिन्स्टन कॉलेज बम्बई से स्नातक। अवज्ञा आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण 1932 में 16 महीने के लिए जेल-यात्रा। अनेक साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध। अनेक बार विदेश-यात्राएँ।

प्रकाशित रचनाएं—11 कथा-संग्रह, 1 एकांकी-संग्रह, 1 नाटक, 2 निबन्ध-संग्रह, 1 कविता-संग्रह और 1 जीवनी।

एकांकी एवं गुजराती नाट्य का सम्पादन। अनेक कहानियाँ जर्मन, इटैलियन, स्विस, मराठी, बांग्ला, तेलुगु आदि में अनुदित। हिन्दी में दो कथा-संग्रह प्रकाशित, एक नाटक 'धूम-रेखा' भी। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

मुख्य व्यसन अध्ययन एवं मित्रों के साथ लम्बी सैरों के दौरान साहित्य की वर्तमान समस्याओं पर बात-चीत।

पता—26, स्वामी विवेकानन्द रोड, विले पार्ले (पश्चिमी), बम्बई-400056

## तमिल

ना० पार्थसारथी : (परिचय पृष्ठ 154 पर)

## तेलुगु

**ववती पांडुरंग राव** : जन्म—15 नवम्बर, 1934, मद्रास में। उत्कल विश्वविद्यालय से वैशिष्ट्य के साथ बी० ए०। मातृभाषा तेलुगु—अंग्रेजी, हिन्दी और तमिल से भी परिचय। प्रसिद्ध लेखक एवं जाने-माने पत्रकार।

सम्प्रति—न्यूज टाइम्स (अंग्रेजी-दैनिक) में परिशिष्ट सम्पादक।

प्रकाशित रचनाएँ—5 कथा-संग्रह। अनेक रचनाओं का अनुवाद। आकाशवाणी के श्रोताओं के लिए एक परिचित नाम।

पता—प्लाट नं० 188, वसावी नगर, सिकन्दराबाद-500003

## पंजाबी

**करतार सिंह दुग्गल** : जन्म—1 मार्च, 1917। शिक्षा—अंग्रेजी में एम० ए०। पंजाबी, उर्दू और हिन्दी के जाने-माने लेखक।

आकाशवाणी मे केन्द्र निदेशक और नेशनल बुक ट्रस्ट के निदेशक पद पर कार्य कर चुके हैं।

कई पुस्तकें विभिन्न विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रमो मे निर्धारित। अनेक कृतियाँ ससार की लगभग सभी भाषाओ में अनूदित। 'कम वैक माई मास्टर' कहानी 'विश्व की महानतम कहानियाँ'—मे सकलित। कहानी-सकलन 'इक छिट्ट चानण दी' पर अकादमी पुरस्कार (1965)।

प्रतिनिधि के रूप मे अनेक बार विदेश यात्रा । 1976 में नाटक के लिए 'गालिब पुरस्कार'। 1982 मे सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार।

पता—पी-7, हौजखास इन्क्लेव, नई दिल्ली-110016

## बांग्ला

**नवनीता देव सेन** : जन्म—13 जनवरी, 1938, कलकत्ता में। शिक्षा—1958 में जादवपुर विश्वविद्यालय से एम० ए०। 1963 मे इण्डियाना विश्वविद्यालय अमेरिका से डॉक्ट्रेट की उपाधि। अनेक देश-विदेश के विश्वविद्यालयों से फ़ैलोशिप प्राप्त की।

सम्प्रति—जादवपुर विश्वविद्यालय मे तुलनात्मक साहित्य की रीडर।

प्रकाशित रचनाएँ—7, 2 काव्य-रचनाएँ प्रथमप्रत्यय, स्वागतादेवदूत। 1 उपन्यास अभिअनुपम। 1 लघुकथा-सग्रह।
पता—भोलावासा 72, हिन्दुस्तान पार्क, कलकत्ता-700029

## मराठी

**चन्द्रकांत महादेव बांदिवडेकर** : जन्म—5 नवम्बर, 1932, को रत्नगीर में।

शिक्षा—बम्बई विश्वविद्यालय से एम. ए., पी-एच. डी.।

सम्प्रति—रीडर, हिन्दी विभाग, पुणे विश्वविद्यालय। हिन्दी और मराठी के अग्रणी समीक्षक।

प्रकाशित रचनाएँ—4 समीक्षा-ग्रंथ हिन्दी में और 2 मराठी मे। 7 महत्त्वपूर्ण संकलनो का सम्पादन। 3 अनुवाद—एक भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत भी। हिन्दी और मराठी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में साहित्य और संस्कृत से सम्बन्धित 200 लेख।

पता—4, शाकुंतल साहित्य सहवास, बांद्रा (पूर्व), बम्बई-51

## सिन्धी

**मोतीलाल जोतवाणी** : जन्म—1936, सक्खर, सिन्ध (अब पाकिस्तान) में। शिक्षा—एम० ए०, पी-एच० डी०। दिल्ली, पंजाब तथा हार्वर्ड (अमरीका) विश्वविद्यालयो में अध्ययन-अध्यापन। सिन्धी, हिन्दी और अंग्रेजी मे लेखन। भारतीय साहित्य में चर्चित अनुसंधाता, कवि और कथाकार। सिन्धी में प्रकाशित नौ कृतियों में कहानी-संग्रह 'परम्पराहीन' (1970) और दो लघु उपन्यास 'नारंगी ट्रैफ़िक लाइट ते' (1974) तथा 'इहे रिश्ता नाता' को शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार का सिन्धी कथा-साहित्य : 1983 का पुरस्कार मिला।

सम्प्रति—दिल्ली विश्वविद्यालय के देशबन्धु कॉलिज मे सिन्धी विभागाध्यक्ष।

पता—बी-14, दयानन्द कॉलोनी, लाजपत नगर, नयी दिल्ली-110024

## मलयालम

**वी० डी० कृष्णन् नम्पियार** : जन्म—1941, केरल के तिरुवल्ली शहर मे।

शिक्षा—1961 मे केरल विश्वविद्यालय से हिन्दी मे बी० ए० (सर्वप्रथम)। काशी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए०। केरल के विभिन्न कॉलेजों मे अध्यापन कार्य।

सम्प्रति—तुंचन स्मारक कॉलेज, तिरूर में हिन्दी

अध्यापक। हिन्दी और मलयालम के बीच आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण योगदान।

प्रकाशित रचनाएँ—हिन्दी की सैकड़ों कहानियों का अनुवाद मलयालम में और मलयालम की 25-30 कहानियों का अनुवाद हिन्दी में। अनूदित कृतियां 15। केरल साहित्य मण्डल के उपाध्यक्ष।

पता—इन्दिरा निवास, 16/187, चक्कूमूरि, पो० आ० तिरूर-676105

## हिन्दी

बटरोही : जन्म—25 अप्रैल, 1946, अल्मोड़ा (उत्तर प्रदेश) के एक गाँव में।

शिक्षा—आरम्भिक शिक्षा गाँव में। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० फिल्०। कई पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभागों में तथा उत्तर प्रदेश के कुछ राजकीय विद्यालयों में कार्य।

सम्प्रति—कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल के हिन्दी विभाग में रीडर।

प्रकाशित रचनाएँ—कहानी-संग्रह 'दिवास्वप्न', 'सड़क का भूगोल'। उपन्यास 'बर्फ़', 'महर ठाकुर का गाँव'। शोध-प्रबन्ध 'प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार और उनका युग' तथा 2 आलोचना पुस्तकें, 3 सम्पादित ग्रन्थ। बाल साहित्य, कहानी-संकलनों के रूप में लगभग एक दर्जन पुस्तकें।

पता—एस० आर० काटेज, तल्लीताल, नैनीताल-2